कथाकार प्रेमचन्द और गबन

गगासागर चौबे

A Critical Study of Premchand's Gaban

KATHAKAR PREMCHAND AUR GABAN

BY

GANGA SAGAR CHAUBE, M. A.

● UDAI PRAKASHAN VARANASI ●

Price Rs. 5/

प्रथम संस्करण

जनवरी १९६४

लेखक

गंगासागर चौबे

प्रकाशक—

हिन्दी प्रकाशन वाराणसी

आवरण

कांतिबाबू

मुद्रक

भोला प्रिंटिंग वर्क्स

पियरी कलाँ वाराणसी

मूल्य

पाँच रुपये

श्रद्धेय प० रमाकान्त चौबे

को

जिनकी स्नेह-छाया में

लिखने-पढ़ने के योग्य

बन सका और

जिनका कर्मठ व्यक्तित्व

मेरे कर्ममय जीवन

का प्रेरणा स्रोत है।

सादर

लेखक की आगामी कृतियाँ—

- सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा
- साहित्य और मनोविज्ञान
- जीवन और अनुभूति

भूमिका

'गबन' के पूर्व प्रेमचन्द जी के प्रेमा 'सेवासदन' 'वरदान' प्रेमाश्रम 'रंगभूमि' 'कायाकल्प' निर्मला और प्रतिज्ञा उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे जिनके माध्यम से सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं की झाँकी तो वे हिन्दी जगत के सम्मुख प्रस्तुत कर चुके थे पर सभी समस्याओं के मूल में सक्रिय आर्थिक विषमता और उससे उत्पन्न मध्यवर्गीय कुण्ठा का लेखा जोखा लेना तो अभी शेष ही था जो 'गबन' के साथ ही सम्भव हो सका। इस प्रकार प्रेमचन्द के कथा साहित्य में गबन ने एक नये क्षितिज का उद्घाटन किया। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में प्रेमचन्द जी ने उपन्यास के अपेक्षा इस अपनी मनोवैज्ञानिक प्रतिभा का चमत्कार अधिक दिखलाया है।

अँग्रेज प्रभुओं की कृपा से भारतवर्ष में जिस मध्य वर्ग का उदय हुआ गबन उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने उसकी दर्दनाक कहानी कही है। प्रेमचन्दजी के जीवन काल में मध्यवर्गीय भारतीय समाज की जो अवस्था रही है उसमें आज भी बहुत परिवर्तन नहीं हो पाया है। कुल मर्यादा के अहंम से पीड़ित तथा आत्मप्रवञ्चना के रोग से ग्रस्त 'गबन' उपन्यास का केन्द्र चरित्र 'रमानाथ' अपनी एक साधारण सी भूल को आरम्भ में न संभाल पाने के कारण किस प्रकार समस्याओं के ताने बाने में मकड़ी की तरह उलझ जाता है जिसे उसने अपनी मानसिक दुर्बलताओं के कारण स्वयं बुना है। प्रेमचन्दजी भारतीय समाज की नाड़ी पहचानते थे और उसमें उनकी पैठ इतनी सटीक थी कि एक पात्र के रूप में वे उस प्रकार के समाज का सजीव चित्र उपस्थित कर देते थे। रमानाथ जिसका ज्वलन्त उदाहरण है। जहाँ तक परिस्थिति के प्रतिकूलता में उत्पन्न प्रतिक्रिया के चित्रण का प्रश्न है प्रेमचन्द जी समस्त हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते।

इस उपन्यास की मुख्य समस्या आभूषण-प्रेम की समस्या है जो भारतीय समाज के लिए अभिशाप बन गई है। मुख्यतः मध्य वर्ग जिसकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त खोखली होती है। आभूषण प्रेम के दुष्परिणामों से इतना पीड़ित है कि इसका अस्तित्व ही कभी-कभी सन्देहास्पद हो जाता है, समाज के लिए आभूषण-प्रेम सचमुच बहुत

बुरा मर्ज है। "वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए, बाल-बच्चों का पेट काट कर गहनों की भेंट कर दिया जाता है। बच्चों को दूध न मिले न सही, घी की गन्ध उनकी नाक तक न पहुँचे न सही, मेवों और फलों के दर्शन उन्हें न हों कोई परवाह नहीं पर देवी जी गहने जरूर पहिनेंगी और स्वामी जी गहने जरूर बनवायेंगे।" दस-दस बीस-बीस रुपया पाने वाले क्लर्कों को देखता हूँ जो सड़ी हुई कोठरियों में पशुओं की भाँति जीवन काटते हैं जिन्हें सबेरे का जलपान मयस्सर नहीं होता उन पर भी गहनों की सनक सवार रहती है। इस आभूषण प्रेम की समस्या को लेकर प्रेमचन्दजी ने समाज में पाई जाने वाली सभी प्रकार की स्त्रियों का अत्यन्त सजीव चित्र खींचा है और यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि किसी न किसी प्रकार का आभूषण प्रेम सभी वय की स्त्रियों में होता है। चाहे वे बालिकाएँ हों अथवा वृद्धाएँ, नववधुएँ हों अथवा अधिकाधिक धन की परितोषिता पत्नियाँ, अनुकूल पति की पत्नियाँ हों अथवा अनमेल विवाह के कुपरिणाम से ग्रस्त वृद्ध पुरुष की युवती पत्नियाँ, इस आभूषण प्रेम के कारण ही स्वयं दुःखी रहती हैं और सारे परिवार को दुःख में डाल देती हैं। जिस दिन उनका आभूषण प्रेम समाप्त हो जाता है वे वास्तव में देवियाँ बन जाती हैं और अपने मनोबल के प्रताप से गिरे हुए पुरुषों का भी उद्धार करने में समर्थ सिद्ध होती हैं। जालपा जिस समय बालिका थी उसके मन में माता पिता की असावधानी के कारण नकली हार के प्रति अनुराग जगा जो यौवन-काल तक असली हार तक विकसित होता गया जिससे वह यौवन बसन्त की रंगीनियों में भी मुरझाई रही। रमानाथ वय और रूप दोनों ही दृष्टियों से जालपा के योग्य पति था पर जालपा के आभूषण प्रेम ने दोनों का जीवन दुःख पूर्ण बना दिया। जालपा ने जिस दिन से आभूषण प्रेम को तिलांजलि दी वह एक साधारण रमणी से ऊपर उठकर देवी बन गई और अपने पैरों पर खड़ी होकर उसने भाग्य को अपने अनुकूल बना लिया तथा अपने भटके एवं पथभ्रष्ट पति का भी उसने सुधार कर लिया। रामेश्वरी भी आभूषण से प्रेम रखती थी और उसने भी अपने यौवन कालीन दिनों में आभूषण बनवा रखे थे पर बढ़ती हुई आर्थिक कठिनाइयों के कारण बाद को उन्हें बेचने पड़े। आभूषण के अभाव में रामेश्वरी अपने पति दयानाथ के साथ सुखी थी क्योंकि पति-पत्नी के बीच आभूषण प्रेम की कोई समस्या नहीं थी। रोगी एवं वृद्ध ऐडवोकेट हाईकोर्ट इन्द्रभूषण की युवती पत्नी रतन भी आभूषण-प्रेम की शिकार है जिसके कारण वह रमानाथ के सम्पर्क में अत्यधिक आ गई थी। अर्थाभाव के न होने के कारण पारिवारिक कलह का प्रश्न तो रतन के आभूषण प्रेम के कारण नहीं उठा पर रमानाथ के प्रति उसके मन में जो मृदुता का

संचार हो गया था, उसके मूल में उसका आभूषण-प्रेम ही था। आभूषण-प्रेम के समाप्त होते ही हम देखते हैं कि रतन का दृष्टिकोण इतना उदार हो गया है कि वह जालपा को अपने सहायतार्थ हठ करके ले जाती है और उसके दुःख से स्वयं इतनी दुःखी हो जाती है कि जैसे जालपा उसकी सगी-बहन ही ठहरी। यहाँ तक की देवीदीन की बूढ़ी पत्नी जग्गो को भी गहने बनवाने का कुछ कम शौक नहीं है। वह चरस और गाँजा पीने से विरत होने के लिए देवीदीन को इसलिए उपदेश देती है कि उसकी मेहनत की कमाई वह बैठे-बैठे फूँक दे रहा है। उसके लिए पैसे का सदुपयोग तो दो एक लाल गहने बनवा लेना ही है। भारतीय समाज की इस कुप्रथा एवं उसकी मानसिक दुर्बलता का अत्यन्त सफल यथार्थवादी चित्र 'गबन' में प्रस्तुत किया गया है जो उपन्यासकार का उद्देश्य जान पड़ता है। परिवार सम्बन्धी अनेक समस्यायें गबन में आये पात्रों के माध्यम से उठाई जा सकती थी पर उपन्यासकार ने उधर से अपनी आँखें फेर ली है। अनमेल विवाह स्वयं में एक बहुत बड़ी समस्या है, जिससे समाज में न जाने कितने पापाचारों को प्रोत्साहन मिलता है। रतन रूप यौवन के भार से भरी एक युवती है जिसके परिचय की परिधि भी काफी लम्बी है। सभी प्रकार के नर नारियों से उसका परिचय है और वह दुनिया की सभी रंगीनियों को जानती-समझती भी है, पर क्या उसके मन एक अच्छे साथी की आकांक्षा नहीं है जिसके हाथों में हाथ लेकर वह पार्कों में आधुनिक समाज को मात दे सके। उसके पास आधुनिक युग की सबसे बड़ी शक्ति पैसा है, रूप है जवानी है तथा टहलने के लिए मोटर-कार और आधुनिक साज-सज्जाओं से युक्त रहने के लिए बंगला है पर क्या उसने इसे ही अपने जीवन की पूर्णता समझ ली है? ये सभी वस्तुयें किसी भी स्त्री के जीवन का लक्ष्य नहीं बन सकतीं क्योंकि इनसे तो केवल सामाजिक अहम् एवं बाह्य सुख की इच्छाओं को ही तृप्ति मिल सकती है, जिसे ही हम जीवन का एक मात्र लक्ष्य नहीं स्वीकार कर सकते। इसके अलावा भी नारी जीवन की कुछ दैहिक इच्छायें भी होती हैं जिन्हें वह स्वभावतः तृप्ति देना चाहती है। इस शारीरिक सुख की तृप्ति न तो धन-वैभव से हो। इसके लिए तो मन चाहे साथी की ही आवश्यकता है। प्रत्येक स्त्री माता बनना चाहती है। वृद्धपुरुष के साथ रहकर रतन की यो दैहिक इच्छा पूरी नहीं हो सकती क्योंकि न तो वह उसे मातृत्व प्रदान करने में ही सहायक हो सकता है और न तो रतन की शारीरिक सुख को ही तृप्त कर सकता है। लगता है रतन तन ने वैयक्तिक इच्छाओं को मूल्य रूप में चुकाकर युग के सभी भौतिक साधन खरीदे हैं जिससे उसने अपने जीवन के अभावों के साथ समझौता कर लिया है। वह जानती है कि एक साधारण परिवार को

स्त्री को जो इतना धन-वैभव मिला है उसका एक मात्र श्रेय उसके वृद्ध पति को ही है। जिसने रुपये की शक्ति से युवती रतन की इच्छाओं को खरीद लिया है तथा उसके आभूषण प्रेम को तृप्ति देकर स्वयं को श्रद्धा का पात्र बना लिया है। रतन भी स्वीकार करती है कि वे बेचारे उसकी सारी इच्छाओं को पूरी करने के लिए लालायित रहते हैं और यदि उनका वश चले तो वे रतन को आभूषणों से लाद दें पर रतन इसे जानने कारण ही उनके लिए अधिक उतावली नहीं होती। जिस उतावलेपन ने जालपा के रमा-जीवन पति तथा परिवार की सुख-शान्ति के साथ ऐसा खिलवाड़ किया कि वे तबाह हो गए। इस दृष्टि से आर्थिक समस्या आभूषण-प्रेम की समस्या से अधिक महत्वपूर्ण जान पड़ती है जिसने मानवीय भावों तक को दबा रखा है। रतन भी आभूषणों से प्रेम करती है पर अर्थाभाव के न होने के कारण उसका आभूषण प्रेम किसी भी प्रकार के सामाजिक अथवा आर्थिक कष्ट का सृजन नहीं करता। देवीदीन की वृद्धा पत्नी भी आभूषणों से अनुराग रखती है पर उन्हें खरीदने के लिए उसके पास पैसे हैं जिससे किसी भी प्रकार के पारिवारिक कलह की सृष्टि नहीं हो पाती। रमानाथ धनहीन है और जालपा पूर्णतः उस पर आश्रित है जिससे वह रमानाथ की बातोंपर ही विश्वास करने के कारण वास्तविक वस्तु-स्थिति से अपरिचित रहती है। यदि वह रतन की भांति मालकिन होती तो कभी भी उसका वह आभूषण प्रेम पारिवारिक संकट का कारण न बन पाता क्योंकि हम देखते हैं कि जिस समय उसे वास्तविक स्थिति का पता लग जाता है वह अपने इस आभूषण प्रेम को सर्प के केंचुल की भांति उतारकर निर्मल बन जाती है।

वस्तुतः मध्यवर्ग की प्रमुख समस्या अर्थ की समस्या है जिसके अभाव में जीवनी शक्तियों का जीवन गतिशील ही नहीं हो सकता। उसको अर्थ की आवश्यकता है जिसमें से पुरुष के लिये तो वह उसकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और पुरुष की संग्राहक वृत्ति को तुष्टि प्रदान करता है। पुरुष के पास शक्ति है व्यवस्था है वह पारिवारिक अर्थ-व्यवस्था का सर्वेसर्वा है जिससे उसमें आभूषण प्रेम जैसी किसी दुष्प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते पर स्त्रियों की एकमात्र सम्पत्ति उनका आभूषण ही है। क्योंकि हिन्दू धर्म शास्त्र ने अथवा हिन्दू-विवाह-पद्धति ने स्त्रियों को सभी सम्पत्तियों से वञ्चित रखा है और उसने यह स्पष्ट घोषित कर दिया है कि स्त्रियों का एक मात्र स्वामित्व उनके आभूषणों पर ही है। यही कारण है कि उनका सारा अर्थानुराग आभूषणों में केन्द्रीभूत हो गया है। क्योंकि गाढ़े दिनों में यही आभूषण उनकी सहायता करता है। क्या रामेश्वरी ने आवश्यकता पड़ने पर अपने गहने नहीं बेचे क्या जालपा ने अपने

गहनों को बेच कर गबन के रुपए नहीं चुकाये और यदि रतन ने वकील साहब के रुपयों को आभूषणों में परिवर्तित कर लिया होता तो क्या उसे अन्त में दर-दर की खाक छाननी पड़ती ? बैंक के बीस हजार रुपयों पर मणिभूषण का अधिकार हो सकता है, कार तथा बंगले को वह बेच सकता है पर यदि स्त्री धन के रूप में रतन के पास आभूषण होते तो उसे भी बेचकर क्या वह रतन का कंगाल बना सकता था ? इस प्रकार आभूषण प्रेम की समस्या वहीं विकट है जहाँ स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार नहीं मिला है। सम्पूर्ण भारतीय जातियों में भी स्त्रियों की आर्थिक स्थिति समान नहीं। अत: आभूषण प्रेम की समस्या हम सम्पूर्ण भारतीय समाज के साथ भी नहीं जोड़ सकते जिससे यह भारत के विशिष्ट वर्ग अथवा समाज की समस्या हो सकती है। विदेशों में इस प्रकार की समस्याओं के दर्शन इसलिए नहीं मिलते कि वहाँ नारियों को आर्थिक अधिकार प्राप्त है। मध्यवर्ग की सबसे बड़ी समस्या है अर्थाभाव की समस्या जिसके कारण वह न तो अपनी आवश्यकताओं को ही पूरी कर पाता है और न तो अपने सामाजिक स्तर की ही रक्षा करके थोथ स्वाभिमान एवं मर्यादा को ही अक्षुण्ण बना पाता है जिससे स्वभावत: उसकी पूर्ति करने के लिए उसे झूठ बोलने पड़ते हैं दीने मारनी पड़ती है और आवश्यकता पड़ने पर जेल के दरवाजे भी झांकने पड़ते हैं। जिसका जीवन्त उदाहरण 'गबन' का नायक रमानाथ है। मानव के गतिशील जीवन में काम-भावना की प्रधानता देने वालों को प्रेमचन्द जी न 'गबन' के माध्यम से निमन्त्रित किया है कि वे आकर रतन का दर्शन कर लें जिसने काम-भावना को अन्न-गंगा की लहरों में डुबो दिया है। वृद्ध पति की पत्नी होकर भी रतन का मन पर-पुरुष के प्रति चंचल नहीं होता और न तो जालपा अपन युवक पति को छोड़कर किसी धनिक व्यक्ति की ओर ही आकर्षित जान पड़ती है क्योंकि "गबन' की सभी नारियाँ काम भावना से प्रेरित न होकर अन्न भावना से प्रेरित होती हैं, चाहे वह रतन हो अथवा जालपा या रुपयों पर अस्मत बेचने वाली जोहरा।

इस उपन्यास की कथा ऐसे दो स्थानों को घेर कर चलती है जिनमें पर्याप्त दूरी है, पर उपन्यासकार ने कथावस्तु का निर्माण ऐसे ढंग से किया है पर उसमें ऐसे कौशल का परिचय दिया है कि उसमें कहीं से भी शिथिलता नहीं आने पाई है। पूरे उपन्यास की कथा रमानाथ और जालपा को ही घेर कर चलती है जो उसके प्रमुख पात्र हैं। उपन्यास के पूर्वार्द्ध के भी प्रमुख पात्र रमानाथ और जालपा हैं और उत्तरार्द्ध के भी उनकी समस्याओं को उभाड़ने तथा परिस्थितियों में रंग भरने के निमित्त हैं।

उपन्यासकार ने अन्य पात्रों की व्यवस्था की है। चाहे वे इलाहाबाद में रहने वाले दयानाथ, रामेश्वरी, रमेश बाबू, रतन तथा इन्दुभूषण एडवोकेट-हाईकोर्ट हों अथवा कलकत्ता में रहनेवाले देवीदीन, जग्गो, पुलिस अफसर, जोहरा तथा दिनेश के असहाय परिवार वाले हों। ये सभी पात्र माला की मणियों की भाँति बिखर जायें और उनका उस रूप में पहिचानना भी कठिन हो जाय कि वे कभी कथामाला के मणि-भाग थे यदि रतन और जालपा का कथासूत्र निकाल दिया जाय तो ऐसे कथावस्तु के निर्माण में उपन्यासकार के लिए असफल होने की अत्यधिक सम्भावनाएँ होती हैं पर "गबन" की कथावस्तु अत्यन्त चुस्त एवं गठित है। यदि उसमें से अपवाद स्वरूप उपन्यास का वह अंश निकाल दिया जाय जिसमें वकीलों के माध्यम से न्यायालय में खड़े होकर उपन्यासकार ने भाषण देना आरम्भ कर दिया है।

इस उपन्यास की लोकप्रियता इसी से स्पष्ट है कि अनेक विश्वविद्यालयों ने इसे अपने पाठ्यक्रम में स्थान दिया है। अतः एक विस्तृत समीक्षा की अत्यन्त आवश्यकता थी जिससे छात्रों को समुचित लाभ पहुँचता। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि मेरे ही एक मित्र चौबे जी ने इस दिशा में काम किया है जिससे उसे देखने का लोभ मैं संवरण न कर सका। इस समीक्षा पुस्तक को पढ़ लेने पर मुझे ऐसा लगा कि छात्रों की कठिनाइयाँ बहुत कुछ हल हो जायेंगी। जितने भी सम्भावित प्रश्न परीक्षा की दृष्टि से इस उपन्यास पर किये जा सकते हैं लेखक ने उन सभी सम्भावित प्रश्नों को उठाया है और पुस्तक की सीमा में उनका समाधान देने का प्रयत्न किया है। लेखक को प्रेस-प्रपंच का ज्ञान नहीं था जिससे भूलें रह गई हैं, पर वे ऐसी हैं कि पाठक उन्हें सरलता पूर्वक सुधार कर पढ़ सकते हैं। अपनी इस प्रथम कृति में भी चौबे जी ने जिस सफलता का परिचय दिया है उससे मेरी सम्भावनाएँ बढ़ गई हैं। मैं उनके भावी यश के निमित्त जिज्ञासु हूँ।

हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी।

त्रिभुवन सिंह
११.१.६४

अपनी ओर से

प्रेमचन्दजी हिन्दी-साहित्य के युग प्रवर्तक कथाकार हैं। उनकी रचनाओं की विशेषता एवं लोकप्रियता हिन्दी जगत को स्पष्ट है। रचनात्मक-कौशल की दृष्टि से सफल अनुवर्णित कृति है। प्रेमचन्द-साहित्य पर प्रतिनिधि-आलोचना ग्रन्थों के रहते पुस्तक का क्या महत्व है? मैं नहीं जानता। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उपन्यास कला की दृष्टि से सुलझी शैली में विस्तारपूर्वक इस रचना पर स्पष्ट रूप से विचार हो सके जो प्रेमचन्द-साहित्य के अध्येताओं और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हो—इसी मूल प्रेरणा से यह पुस्तक आपके सामने है।

साहित्य के प्रति मेरी स्वाभाविक रुचि है—हिन्दरंगी पुस्तकालय का वातावरण और आदरणीय भाई ठाकुर प्रसाद जी का सान्निध्य साहित्य के प्रति अनुराग उत्पन्न करने एवं साहित्यिक रुचि विकास का मूल प्रेरक है। आज जीवन में श्री सम्पूर्णानन्द श्रीवास्तव श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र पं० कमलापति त्रिपाठी पं० सुधाकर पाण्डेय डा० नामवर सिंह आदि साहित्य के विद्वानों के सामीप्य, आशीर्वाद एवं अध्यापन से लाभ उठाकर अपने विचारों को पुष्ट करने की प्रेरणा पाता रहा हूँ—अतः इन सबके प्रति श्रद्धानत हूँ।

उन लेखकों एवं कृतियों का ऋणी हूँ जिनसे मुझे प्रेरणा और सहायता मिली है। अपने मित्रों का आभारी हूँ जिनसे सदैव कुछ पाता रहता हूँ। भाई श्री गोविन्द सिंह के परामर्श अनुज रत्नाकर पाण्डेय श्री मार्कण्डेय उपाध्याय श्री जगदीशचन्द्र मिश्र और श्री कमलाप्रसाद जी आदि के सहयोग के निमित्त धन्यवाद देकर अपने प्रति उनकी आत्मीयता की सहज भावना को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता। दूर बैठे मित्रों में श्री राजकुमार मेहता और श्री मानसी सिंह का स्मरण करता हूँ जिन्हें इस प्रयास से प्रसन्नता होगी। पुस्तक को प्रकाश में लाने का सारा श्रेय श्री लक्ष्मण प्रसाद शर्मा को है। इन्होंने तथा श्री उमेश कुमार शर्मा ने जिस उत्साह और निष्ठा से पुस्तक का प्रकाशन किया है इसके लिए धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

पुस्तक की त्रुटियों के सम्बन्ध में क्या कहूँ ? समयाभाव के कारण मुद्रण में शीघ्रता करनी पड़ी, फलतः मुद्रण की असावधानी एवं ठीक से न देखे जाने के कारण कहीं-कहीं शब्दों का क्रम इधर-उधर हो गया है। इन स्वाभाविक त्रुटियों के लिए सुविज्ञ पाठकों से क्षमा चाहूँगा।

मोला प्रिंटिंग प्रेस के प्रबन्धक एवं कर्मचारियों को धन्यवाद देना नहीं भूल सकता जिन्होंने पूरी सहृदयता एवं तत्परता के साथ इसका मुद्रण किया है।

परमस्नेही मित्र डा० त्रिभुवन सिंह जी ने अपने व्यस्त कार्यक्रमों के बीच भूमिका लिखकर मुझे कृतार्थ किया है अतः उनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा पुनीत कर्तव्य है।

इस प्रकार अपने गुरुजनों, शुभेच्छुओं, तथा साथियों के प्रति आभार प्रगट करते हुए आकांक्षा करता हूँ कि वे सदैव मेरे जीवन की मंगल-साधना में आशीर्वाद और सहयोग देते रहेंगे।

वसन्त पंचमी 'निराला दिवस'
ईश्वरगंगी, वाराणसी

विनम्र—
गंगासागर चौबे



अनुक्रम

प्रेमचंद : एक युग

प्रेमचन्द का नाम अपने में स्वयं एक युग का बोध कराता है। हिन्दी-कथा साहित्य में प्रेमचन्द ही एक अकेले ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने समूचे युग का नेतृत्व किया और कथा-साहित्य के लिए युग प्रवर्तक का काम किया। इसका कारण था जीवन के प्रति महान आस्था का होना। प्रेमचन्द जी जीवन के सत्य में विश्वास करते थे—जीवन का यथार्थ सत्य ही उनके साहित्य का सत्य था। प्रेमचन्द जी ने जीवन के सत्य, युग के यथार्थ को साहित्य के माध्यम से रखने का प्रयास किया।

प्रेमचन्द जी भारतीय जन जीवन के प्रतिनिधि लेखक और अपने को विचारधारा तथा भावनाओं के संदेश वाहक थे। जीवन की यथा एवं सामाजिक स्पन्दन ही उनके साहित्य की मूल प्रेरणा है। उन साहित्य को समाज के धरातल पर जीवन-विश्लेषण को प्रेरणा दी।

प्रेमचन्द जी मानवतावादी कलाकार थे—मानवता, सत्यता एवं को जीवन का सम्बल मानते थे—यही कारण था कि जनजीवन के सुख-दु के प्रति, उनकी भावनाओं के प्रति उन्हें सच्ची सहानुभूति थी और साहि में उनके साथ न्याय करने में समर्थ हो सके। प्रेमचन्द जी ने अपने साहि में भारतीय जनजीवन के संघर्ष एवं समस्याओं को विविध रूप में चित्रि किया और साहित्य में मानवतावाद की प्रतिष्ठा की।

प्रेमचन्द का युग भारतीय जीवन का परतन्त्रता एवं शोषण का युग था उस युग की अपनी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परि स्थितियाँ थी। दैनिक जीवनसंघर्ष, शोषण एवं उत्पीड़न में युग की आत्म घुट रही थी—समाज की चेतना कुंठित हो गयी थी—दमन, अत्याचा एवं शोषण के दबाव में जीवन मौत की साँस ले रहा था। |

प्रेमचन्द जी ने जीवन से लड़ते हुए, पिसते हुए संघर्षशील जन समाज को अपने साहित्य का मूल आधार बनाया। उस युग की आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण सन् १९२६ ई० में 'हिन्दुस्तान' में निम्न शब्दों में उल्लिखित है, जिसका संकेत डा० महेन्द्र भटनागर ने अपनी पुस्तक 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' में किया है—"कुशल मजदूरों को छोड़कर हिन्दुस्तान के मजदूरों को इतनी पगार मिलती है कि मुश्किल से उनका पेट भर सकता है और तन ढका रह सकता है।" दूसरे स्थान पर पुनः इस बात का संकेत है, "हिन्दुस्तान के लोगों का एक बहुत बड़ा हिस्सा अब भी ऐसी गरीबी का दिन काट रहा है कि इस तरह की चीज़ परिश्रम के देशों में है ही नहीं। जिन्दगी और मौत के कगार पर उनके दिन कट रहे हैं।"

जीवन का यह तत्कालीन आर्थिक चित्र था, जिसका अनुभव स्वयं प्रेमचन्द जी अपने जीवन में कर चुके थे। प्रेमचन्द का एक आत्म-संस्मरण उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है "जाड़ों के दिन थे। पास एक कौड़ी न

गया थी। दो दिन एक एक पैसे खाकर काटे थे। मेरे महाजन ने उधार देने से इन्कार कर दिया था। संकोचवश मैं उससे माँग न सका था। चिराग जल चुके थे। मैं एक बुकसेलर की दुकान पर एक किताब बेचने गया। एक चक्रवर्ती गणित कुंजी दो साल हुए खरीदी थी, अबतक उसे बड़े जतन से रखे हुए था, पर आज चारों ओर से निराश होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रुपये की थी लेकिन एक रुपये पर सौदा ठीक हुआ।"

यह दशा थी तत्कालीन कृषक एवं निम्नवर्ग के जीवन की। समाज के सामान्य मध्यवर्गीय परिवारों एवं व्यक्तियों की स्थिति भी इसी से मिलती-जुलती थी। मध्यवर्गीय समाज का मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक धरातल तेजी से परिवर्तित हो रहा था। आर्थिक बोझ, पारिवारिक मर्यादा, टूटते हुए परिवार, अभावग्रस्त जीवन, नयी शिक्षा, इन सबने जीवन को नये मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था।

इस सम्बन्ध में डा० इन्द्रनाथ मदान अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द एक विवेचन' में लिखते हैं—"मध्यवर्ग जीवन के प्राचीन और नवीन आदर्शों के संघर्ष के बीच से गुजर रहा था। पूँजीवादी या पाश्चात्य सभ्यता के आघात ने जीवन के मध्यकालीन और आधुनिक दृष्टिकोण के बीच एक गहरी खाई खोद दी थी। प्रेमचन्द जी की प्रारम्भिक कृतियों का सम्बन्ध विशेष रूप से मध्यवर्गीय समाज के इसी संघर्ष से है। वह सुधार करने के लिए कटिबद्ध था। सामाजिक मामलों में मध्यवर्ग ने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का अधिक उपयोग आरम्भ किया।"

एक ओर तो समाज का निम्नवर्ग एवं मध्यमवर्ग अपनी विविध प्रकार की समस्याओं से उलझा लड़ रहा था किन्तु दूसरी ओर देश में जन जागृति की भी लहर आ चुकी थी। भारतीय राजनीतिक जीवन में महात्मा गाँधी के आगमन से पूरे देश में एक नयी लहर फैल चुकी थी—स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना, राष्ट्रप्रेम एवं सुधार का होसला का प्रचार एवं प्रसार बढ़ा। पूरा देश एक नयी अनुभूति से ओतप्रोत हो उठा—इस अनुभूति ने देश को स्वतन्त्र करने का संकल्प किया।

इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जीवन से जुड़ते हुए संघर्षरत दमित व्यक्तियों एवं जन-जागृति को अपने साहित्य का विषय बनाया। युग-जीवन की सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संघर्ष एवं समस्याएँ उनके साहित्य में साकार हो उठीं। तद्युगीन जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसका विश्लेषण एवं चित्रण प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं में न किया हो।

प्रेमचन्दजी की दृष्टि व्यापक थी। जीवन के विभिन्न स्तर एवं पक्षों का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में प्रेमचन्द जी की लेखनी सर्वथा सक्षम एवं सफल रही—कथानक निर्माण एवं चरित्रांकन दोनों ही में प्रेमचन्द जी को अपूर्व सफलता मिली।

मानव जीवन के दैन्य एवं कारुणिक पक्ष की ओर प्रेमचन्द जी की विशेष रुचि थी—कृषकों के पीड़ित एवं उपेक्षित संघर्ष शील जीवन को प्रेमचन्दजी ने भली-भाँति देखा था। उनके अन्तर एवं बाह्य जीवन का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रेमचन्द जी ने किया।

कुल मिलाकर वरदान, प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम, निर्मला, कायाकल्प, रंगभूमि कर्मभूमि एवं गोदान द्वारा विविध सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द जी पूरे समाज का कायाकल्प चाहते थे। यथार्थ के धरातल पर आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा ही उनका मूल लक्ष्य था।

प्रेमचन्द जी ने जन-जीवन को नववाणी दी और जीवन की विरासत को अपने साहित्य में साकार किया। युग जीवन को साहित्य के साथ जोड़कर एक नयी परम्परा का सूत्रपात किया। युग-जीवन की अभिव्यक्ति ने ही उन्हें युग-प्रवर्तक के रूप में लाकर खड़ा किया। जीवन की यथार्थवादी परख, अन्तर्बाह्य पक्षों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही प्रेमचन्दजी की परम्परा के रूप में आगे चलकर विकसित हुई।

प्रेमचन्द और उनके युग के संबंध में डा० रामरतन भटनागर की निम्न पंक्तियाँ प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने वाली हैं।

"आज वे नहीं हैं। सुनते हैं उनका युग समाप्त हो गया। परराष्ट्रनीति और राजनीति कहाँ से कहाँ आ गई है। नई रोशनी में प्रेमचन्द के बताये हुए समस्याओं के हल कितने फीके-फीके पड़ गये हैं, परन्तु समस्याएँ अब भी वही हैं। उन्हें बूझने के लिये हमें प्रेमचन्द को छोड़कर कहीं नहीं जाना पड़ेगा—

गाँधी के जन-नेतृत्व से सम्पूर्ण समाज प्रभावित हुआ—दासता से मुक्ति के लिए सरकार-विरोधी मोर्चे और संगठन बने, जन आन्दोलन में दृढ़ता आने लगी।

जहाँ तक समसामयिक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है—समाज की आर्थिक नींव कमजोर थी। एक ओर रूढ़िग्रस्त संस्कारों, जातिगत भेद, अशिक्षा एवं भाग्यवादिता से निर्देशित जीवन था, दूसरी ओर जन-जागृति एवं शिक्षा तथा सुधार आन्दोलनों के फलस्वरूप नया जीवन जाने की तीव्र इच्छा। इस प्रकार भारतीय जन-जीवन की धारा दो समानान्तर मार्गों से आगे बढ़ रही थी।

जीवन की कुप्रथाओं के प्रति प्रेमचन्द की दृष्टि जागृत थी। विवाह, वैधव्य, वेश्या जीवन, जातिगत विभेद आदि विविध पहलुओं पर उन्होंने, विभिन्न रचनाओं में विविध परिवेश में उनपर विचार किया। इन समस्याओं के मूल उद्घाटन के पीछे उनका उद्देश्य जीवन एवं समाज का सही रूप में मूल्यांकन करना था। समाज को स्वस्थ रखने के लिए कुप्रथाओं एवं मानवता विरोधी कृत्यों को बन्द करना चाहते थे।

प्रेमचन्द की रचनाओं ने पुनर्जागरण में योग दिया। विविध वर्गों के जन-आन्दोलनों को बल मिला। इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जन-नेतृत्व के महान दायित्व को सँभाला।

इस सम्बन्ध में डा० त्रिभुवन सिंह जी अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' में लिखते हैं—

"युग की परिस्थितियों ने प्रेमचन्द जी को उत्पन्न किया था। वे परिस्थितियों की ही देन थे। देश के अन्दर पड़ती हुई सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक और नैतिक विषमताओं की मार को प्रेमचन्द जी का सहिष्णु हृदय सह नहीं पाया और वह अति आकुल होकर सहानुभूति के स्वरों में बोल उठा जिससे तत्कालीन जीवन और युग का यथार्थ चित्र उनकी रचनाओं में उतर आया है। वर्तमान परिस्थितियों से समाज को निकालना उन्होंने अपना पवित्र कर्तव्य समझा।"

इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जीवन से लड़ते हुए संघर्षरत दमित व्यक्तियों एवं जन-जागृति को अपने साहित्य का विषय बनाया। युग-जीवन की सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संघर्ष एवं समस्याएँ उनके साहित्य में साकार हो उठीं। तद्युगीन जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसका विश्लेषण एवं चित्रण प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं में न किया हो।

प्रेमचन्दजी की दृष्टि व्यापक थी। जीवन के विभिन्न स्तर एवं पक्षों का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में प्रेमचन्द जी की लेखनी सर्वथा सक्षम एवं सफल रही—कथानक निर्माण एवं चरित्रांकन दोनों ही में प्रेमचन्द जी को अपूर्व सफलता मिली।

मानव जीवन के दैन्य एवं कारुणिक पक्ष की ओर प्रेमचन्द जी की विशेष रुचि थी—कृषकों के पीड़ित एवं उपेक्षित संघर्ष शील जीवन को प्रेमचन्दजी ने भली-भाँति देखा था। उनके अन्तर एवं बाह्य जीवन का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रेमचन्द जी ने किया।

कुल मिलाकर वरदान, प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम, निर्मला, कायाकल्प, रंगभूमि कर्मभूमि एवं गोदान द्वारा विविध सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द जी पूरे समाज का कायाकल्प चाहते थे। यथार्थ के धरातल पर आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा ही उनका मूल लक्ष्य था।

प्रेमचन्द जी ने जन-जीवन को नववाणी दी और जीवन की विराटता को अपने साहित्य में स्वीकार किया। युग जीवन का साहित्य के साथ आबद्ध एक नयी परम्परा का सूत्रपात किया। युग-जीवन की अभिव्यक्ति ने ही उनको युग-प्रवर्तक के रूप खड़ा कर दिया। जीवन की यथार्थवादी परख, अन्तर्बाह्य पक्षों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही प्रेमचन्दजी की परम्परा के रूप में आगे चलकर विकसित हुई।

प्रेमचन्द और उनके युग के संबंध में डा० रामरतन भटनागर की निम्न पंक्तियाँ प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने वाली हैं।

"आज वे नहीं हैं। सुनते हैं उनका युग समाप्त हो गया। परराष्ट्रनीति और राजनीति कहीं से कहीं आगई है। नई राजनीति में प्रेमचन्द के बताये हुए समस्याओं के हल कितने फीके-पड़ गये हैं, परन्तु समस्यायें अब भी वहीं हैं। उन्हें सुलझाने के लिये हमें प्रेमचन्द को छोड़कर कहीं नहीं जाना पड़ेगा

गाँधी के जन-नेतृत्व से सम्पूर्ण समाज प्रभावित हुआ—दासता से मुक्ति के लिए सरकार विरोधी मोर्चे और संगठन बने, जन-आन्दोलन में दृढ़ता आने लगी।

जहाँ तक समसामयिक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है—समाज की आर्थिक नींव कमजोर थी। एक ओर रूढ़िग्रस्त संस्कारों, जातिगत भेद, अशिक्षा एवं साम्प्रदायिकता से निर्देशित जीवन था, दूसरी ओर जन-जागृति एवं शिक्षा तथा सुधार आन्दोलनों के फलस्वरूप नया जीवन जीने की तीव्र इच्छा। इस प्रकार भारतीय जन-जीवन की धारा दो समानान्तर मार्गों से आगे बढ़ रही थी।

जीवन की कुप्रथाओं के प्रति प्रेमचन्द की दृष्टि जागृत थी। शिक्षा वैमनस्य, वेश्या जीवन, जातिगत विभेद आदि विविध पहलुओं पर उन्होंने, विभिन्न रचनाओं में विविध परिवेश में उनपर विचार किया। इन समस्याओं के मूल उद्घाटन के पीछे उनका उद्देश्य जीवन एवं समाज का सही रूप में मूल्यांकन करना था। समाज को स्वस्थ रखने के लिए कुप्रथाओं एवं मानवता विरोधी तत्वों को नष्ट करना चाहते थे।

प्रेमचन्द की रचनाओं ने पुनर्जागरण में योग दिया। विविध वर्गों के जन-आन्दोलनों को बल मिला। इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जन-नेतृत्व के महान दायित्व को सँभाला।

इस सम्बन्ध में डा० त्रिभुवन सिंह जी अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' में लिखते हैं—

"युग की परिस्थितियों ने प्रेमचन्द जी को उत्पन्न किया था। वे परिस्थितियों की ही देन थे। देश के अन्दर पनपती हुई सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक और नैतिक विषमताओं की मार को प्रेमचन्द जी का सहिष्णु हृदय सह नहीं पाया और वह अति आकुल होकर सहानुभूति के स्वरों में बोल उठा जिससे तत्कालीन जीवन और युग का यथार्थ चित्र उनकी रचनाओं में उतर आया है। वर्तमान परिस्थितियों से समाज को निकालना उन्होंने अपना पवित्र कर्तव्य समझा।"

मनम

इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जीवन से लड़ते हुए संघर्षरत दमित व्यक्तियों एवं जन-जागृति को अपने साहित्य का विषय बनाया। युग-जीवन की सम्पूर्ण सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक संघर्ष एवं समस्याएँ उनके साहित्य में साकार हो उठीं। तद्युगीन जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसका विश्लेषण एवं चित्रण प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं में न किया हो।

प्रेमचन्दजी की दृष्टि व्यापक थी। जीवन के विभिन्न स्तर एवं पक्षों का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में प्रेमचन्द जी की लेखनी सर्वथा सक्षम एवं सफल रही—कथानक निर्माण एवं परिशोधन दोनों ही में प्रेमचन्द जी को अपूर्व सफलता मिली।

मानव जीवन के दैन्य एवं कारुणिक पक्ष की ओर प्रेमचन्द जी की विशेष रुचि थी—कृषकों के पीड़ित एवं उपेक्षित संघर्षशील जीवन को प्रेमचन्दजी ने भली-भाँति देखा था। उनके अन्तर एवं बाह्य जीवन का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रेमचन्द जी ने किया।

कुल मिलाकर वरदान, प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम, निर्मला, कायाकल्प, रंगभूमि कर्मभूमि एवं गोदान द्वारा विविध सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द जी पूरे समाज का कायाकल्प चाहते थे। यथार्थ के धरातल पर आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा ही उनका मूल लक्ष्य था।

प्रेमचन्द जी ने जन-जीवन को नववाणी दी और जीवन की विशालता को अपने साहित्य में साकार किया। युग-जीवन का साहित्य के साथ तादात्म्य एक नयी परम्परा का सूत्रपात किया। युग-जीवन की अभिव्यक्ति ने ही उनको युग-प्रवर्तक के रूप लाकर खड़ा किया। जीवन की यथार्थवादी परख, अन्तर्बाह्य पक्षों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही प्रेमचन्दजी की परम्परा के रूप में आगे चलकर विकसित हुई।

प्रेमचन्द और उनके युग के संबंध में डा० रामरतन भटनागर की निम्न पंक्तियाँ प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने वाली हैं।

'आज वे नहीं हैं। सुनते हैं उनका युग समाप्त हो गया। परराष्ट्रनीति और राजनीति कहीं से कहीं आ गई है। नई रोशनी में प्रेमचन्द के बताये हुए समस्याओं के हल कितने फीके-पड़ गये हैं, परन्तु समस्याएँ अब भी वही हैं। उन्हें पढ़ने के लिये हमें प्रेमचन्द को छोड़कर कहीं नहीं जाना पड़ेगा

नये साहित्य में समाजवाद का बोलबाला है। परन्तु अभी इस साहित्य ने प्रेमचन्दजी द्वारा उपस्थित की हुई (और अब भी बनी हुई) परिस्थितियों को समाजवादी दृष्टिकोण से नहीं परखा है। जब वह परखेगा तो किसी को प्रेमचन्द के प्रगतिशील होने में संदेह नहीं रहेगा।"

प्रेमचन्दजी की रचनाओं का गौरव इसीमें है कि आज उनकी रचनाओं की तुलना विश्वविख्यात उपन्यासकारों जैसे विक्टरह्यूगो, टाल्सटाय, गोर्की आदि से की जाती है।

'प्रेमचन्द एक युग' के संदर्भ में विचार करते हुए श्री जितेन्द्रनाथ पाठक के विचारों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिन्होंने प्रेमचन्द जी के ऐतिहासिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर स्पष्टरूप से विचार किया है—

"प्रेमचन्द ने भारत की गतिशील वास्तविकता को वाणी दी। उन्होंने अपने समस्त कृतियों में देश और समाज का वर्तमान परिस्थितियों में विकासमान जन शक्तियों का साथ दिया और उनका निर्देशन किया। यदि कल देश का इतिहास लुप्त हो जाय तो प्रेमचन्द का साहित्य आज की जनता की दशा और उसकी संघर्षशील जीवन शक्तियों का इतिहास प्रस्तुत करेगा।"

•

जीवन परिचय एवं संस्मरण

प्रेमचन्द जी का जन्म सन् १८८० ई में काशी के एक निर्धन ग्रामीण कृषक परिवार में हुआ था। आप के बचपन का नाम धनपतराय था। आप के पिता कृषि से पारिवारिक आर्थिक बोझ न सम्भाल सकने के कारण डाकखाने में चालीस रुपये मासिक के क्लर्क हो गये थे। बाल्यकाल में ही माता की स्नेह छाया ऊपर से उठ गयी थी और विमाता का कटु व्यवहार मिला था। सोलह वर्ष की आयु में पिता का भी देहान्त हो गया। इस प्रकार अभाव एवं दुःख के बोझ से बोझिल उनका जीवन प्रारम्भ हुआ।

बाल्यकाल के प्रारम्भिक सुखों से प्रेमचन्द जी वंचित रहे। माँ की मृत्यु के पश्चात प्रेमचन्द जी के पिता ने दूसरी शादी कर ली। विमाता के हृदय में बालक प्रेमचन्द के लिए कोई स्थान नहीं था। विमाता के कटु व्यवहार का प्रेमचन्द जी के जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ा—विमाता के कारण प्रेमचन्द जी के बाल-जीवन का स्वाभाविक विकास रुक गया और उनका मानसिक

बरावस नये परिवेश में सोचने लगा। प्रेमचन्द जी ने अपनी विमाता के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा है कि "वे इस बात का कोई भी ख्याल नहीं रखती कि प्रेमचन्द उनके पुत्र नहीं तो पुत्र स्थानीय हैं, इसलिये उनके सामने दूसरों से हँसी मजाक दायरे के अन्दर ही करना चाहिए, किन्तु वे इसका ख्याल नहीं रखती थीं। मुझे तेरह सालों में ही उन बातों का ज्ञान हो गया था जो बच्चों के लिए घातक है।" इस उद्धरण से यह बात स्पष्ट होती है कि केवल पैसा और प्यार के सुख से ही वह वंचित नहीं हुये अपितु उनके मानसिक जीवन पर विमाता का कितना बुरा प्रभाव पड़ा था।

प्रेमचन्द जी के पिता का नाम अजायबराय था—डाकखाने के सामान्य क्लर्क, पारिवारिक बोझ, कभी भी सुख की साँस नहीं ले सके। बेटे के लिये चाह कर भी सुख न दे सके। प्रेमचन्द जी को अपने पिता से असंतोष नहीं था। वे घर की वास्तविकता एवं पिता के बोझ को अच्छी तरह समझते थे। प्रेमचन्द जी ने पिता की आर्थिक अवस्था का जिक्र करते हुये लिखा है कि "औंधरा के पुल का चमरौधा जूता हमने बहुत दिनों तक पहना है। जब तक मेरे पिता जी जीवित रहे, तब तक उन्होंने मेरे लिये बारह आने से ज्यादा का जूता कभी नहीं खरीदा।"

प्रेमचन्द जी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। १३ वर्ष की अवस्था में मिशन स्कूल में भर्ती हुये। प्रारम्भ में किसी प्रकार पिता जी से प्राप्त पाँच रुपये में पूरे महीने का खर्च चलाते रहे। बाद में स्वयं ट्यूशन करने लगे और किसी प्रकार १९०४ में मेट्रिक्यूलेट की परीक्षा पास कर लिया। पुनः १८ रुपये मासिक पर अध्यापक नियुक्त हो गये और इण्टर तथा बी० ए० की परीक्षाएँ स्वतः अध्ययन से पास किया। अपनी शिक्षा के बल पर ही प्रेमचन्द जी कई वर्षों तक अध्यापक के पद पर काम करते करते, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सबइन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त हो गये। किन्तु स्वतन्त्र एवं स्वाभिमानी प्रवृत्ति के कारण स्थायी रूप से इस पेशे में न रह सके।

प्रेमचन्द जी का वैवाहिक जीवन भी सुखी नहीं था। प्रेमचन्द जी का प्रथम विवाह पन्द्रह वर्ष की अवस्था में हो गया था। कठिनाइयों के

बावजूद भी शादी से इनकार नहीं कर सके किन्तु पत्नी के दर्शन के बाद उसके मनमें अतीव ग्लानि उत्पन्न हुई। पत्नी के रूप एवं व्यवहारसे सन्तुष्ट नहीं हुये। फलतः वैवाहिक जीवन सुखी एवं सन्तोषप्रद नहीं बन सका। अपने विवाह के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि "मेरा विवाह बस्ती जिले के मेंहदावल तहसील में रामपुर गाँव में ठीक हुआ। वे भी अपने घर के जमींदार थे। कुछ पूरब की रीति रिवाज ऐसा है कि सब ...के घर में लोगों ने बुलाया तब सैकड़ों स्त्रियाँ घर में थीं। हँसी मज़ाक का बाज़ार गरम था। पुरुषों के नाते तो मैं ही एक था। मुझे हँसी मज़ाक अच्छा भी लगता था। सब हँसी मज़ाक करती थीं, मैं अकेला उनसे परेशान था। खैर किसी तरह उनसे उबरा। मेरी स्त्री की विदाई का समय आया। कई रोज़ का अरसा हो गया था। ऊँट गाड़ी से आना पड़ा। जब हम ऊँट गाड़ी से उतरे तो मेरी स्त्री ने मेरा हाथ पकड़ कर चलना शुरू किया। मैं इसके लिये तैयार नहीं था। मुझे झिझक मालूम हो रही थी। उम्र में वे मुझसे ज़्यादा थीं। जब मैंने उनकी सूरत देखी, तो मेरा खून सूख गया।"

"वह बदसूरत तो थी ही उसके साथ-साथ ज़बान की भी मीठी न थी। यह इन्सान को और भी दूर कर देता है।"

फलतः पूर्व विवाह से असन्तुष्ट एवं दुःखी होने के कारण मानसिक व्यथा की प्रतिक्रिया में १९०५ में प्रेमचन्द जी ने शिवरानी नामक बाल-विधवा को अपनी जीवनसंगिनी बनाया। उस समय विधवा विवाह की अनुमति समाज से नहीं मिल पाती थी। अतः प्रेमचन्द जी ने यह कार्य नैतिक साहस के साथ समाज को चुनौती देकर किया। शादी के सम्बन्ध में संस्मरण के रूप में शिवरानी देवी ने लिखा है कि "मेरी शादी के सम्बन्ध में आपकी चाची वगैरह किसी की राय नहीं थी, मगर यह आप की ज़िद्द थी। आप समाज का बन्धन तोड़ना चाहते थे। यहाँ तक कि अपने घरवालों को भी खबर नहीं दी।"

शिवरानी ने प्रेमचन्द जी के जीवन को भर दिया। पिछले जीवन के जिन कटु एवं अभावग्रस्त अनुभवों ने उन्हें थका दिया था उसमें विश्राम, शान्ति एवं नयी अनुभूतियों की चेतना आयी। शिवरानी के

के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि—"वह एक निर्भीक, साहसी, दृढ़ विश्वसनीय, भूल स्वीकार करनेवाली और अत्यधिक प्रोत्साहन देनेवाली स्त्री हैं। उसकी रुचि साहित्यिक है और वह कभी-कभी कहानियाँ लिखती है। उसने असहयोग आन्दोलनों में भाग लिया और जेल गई। जो कुछ वह नहीं थे सकती उसकी आशा न करता हुआ मैं उससे प्रसन्न हूँ। वह टूट भले ही जाय पर आप उसे झुका नहीं सकते।"

प्रेमचन्द जी का साहित्यिक जीवन बचपन से ही प्रारम्भ हो चुका था। पढ़ने लिखने की ओर स्वाभाविक अभिरुचि थी। प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि जब वे छोटे थे तो एक मित्र के यहाँ पढ़ने जाते थे और तिलस्म, होशरुबा पढ़ते थे। प्रेमचन्द जी लिखते हैं—"वहीं मुझे लिखने का भी शौक हुआ। मैं लिखता फाड़ता, लिखता फाड़ता। कभी-कभी मेरे पिता जी हुक्का पीते मेरी कोठरी में आ जाते थे। जो कुछ मैं लिखकर रखता थे पढ़ लेते और पूछते— 'नवाब कुछ लिख रहे हो ?" मैं शर्माकर गड़ जाता। मगर इस विषय में पिता जी को कोई दिलचस्पी न थी।"

प्रारम्भिक दिनों में प्रेमचंदजी ने खूब पढ़ा। इन रचनाओं के पढ़ने से प्रेमचंद की कल्पना एवं सूझ परिपक्व होने लगी। बाद में उन्होंने विविध पत्रों में लिखना शुरू किया। प्रारम्भिक दिनों में लेखन का कार्य उर्दू में प्रारम्भ किया। प्रेमचन्द जी ने इसका उल्लेख अपने एक पत्र में किया है।

"मैंने उर्दू साप्ताहिकों और मासिकों में लिखना प्रारम्भ किया। लिखना मेरे लिये शौक की चीज थी। मैं सरकारी नौकर था और फुरसत के समय ही लिखता था। उपन्यास के लिये मेरे हृदय में शान्त न होने वाली भूख थी और बिना भले बुरे के ज्ञान के जो कुछ भी मुझे मिलता था, उसे ही मैं निगल जाता था। मेरा प्रथम लेख सन् १९०१ में छपा और प्रथम पुस्तक सन् १९०३ में। लिखने से मेरे अहम् की तुष्टि के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। पहले मैंने सामाजिक घटनाओं पर लिखा। उसके बाद वर्तमान तथा अतीत के वीरों के रेखाचित्र पेश किये। सन् १९०७ ई० में मैंने उर्दू में कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया और निरन्तर मिलने वाली सफलता से उत्साहित हुआ। सन् १९१४ में मेरी कहानियों का अनुवाद हुआ और वे हिन्दी के पत्रों में प्रकाशित हुईं। इसके पश्चात् मैंने हिन्दी को

अपनाया और 'सरस्वती' में लिखना प्रारम्भ किया। इसके बाद मेरा 'सेवा सदन' निकला और मैंने नौकरी छोड़कर स्वतंत्र रूप से साहित्यिक जीवन बिताने का निश्चय किया।"

उपरोक्त सन्दर्भ में प्रेमचन्दजी के व्यक्तित्व पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। प्रेमचन्दजी का व्यक्तित्व एक श्रमिक एवं संघपरत परिस्थितियों से जूझने वाले व्यक्ति का जीवन था। उनका कहना था—"मैं मजदूर हूँ, मजदूरी किये बिना मुझे भोजन करने का अधिकार नहीं।"

जीवन के प्रति ईमानदारी, सादगी, राष्ट्रभक्ति एवं समाज के सुधार तथा कायाकल्प की बलवती इच्छा उनके व्यक्तित्व की प्रधान विशेषताएँ थीं। मनुष्यता एवं उदारता उनमें कूट-कूट कर भरी थी।

स्वतंत्रता की उनको प्रबल आकांक्षा थी—स्वतंत्रता के संबंध में १९३२ में 'विशाल भारत' में प्रेमचन्द जी ने लिखा कि "मेरी अभिलाषाएँ बहुत सीमित हैं। इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतंत्रता संग्राम में सफल हों। मैं दौलत और शोहरत का इच्छुक नहीं हूँ खाने को मिल जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हविस नहीं है। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो चार उच्च कोटि की रचनाएँ छोड़ जाऊँ, लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतंत्रता प्राप्ति ही हो।"

प्रेमचंद जी के व्यक्तित्व के संबंध में उनके सुपुत्र अमृतराय जी का संस्मरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है—"प्रेमचंद बहुत सीधे सादे, बेलौस मुरव्वती व्यक्ति थे। जो लोग भी उनके सम्पर्क में आये उनको प्रेमचंद का यही रूप देखने को मिला होगा। घर में भी उनका यही रूप था। घर के बाहर और घर के भीतर—अपने बाहर और भीतर—कहीं भी उसमें कोई दुरंगापन नहीं था। सब जगह वह एक था, शीशे के नीचे पानी की तरह साफ, पारदर्शक। यही उस आदमी की सबसे बड़ी महानता थी कि वह किसी तरह से महान नहीं था, कपड़े-लत्ते में, न तौर तरीके में न बातचीत में, न रहन-सहन में। हर ओर से वह आदमी एक साधारण निम्नवर्ग का आदमी था, खास चरकोंदार गृहस्थ वातावरण में रमा हुआ। क्या तो उसकी हुलिया थी—घुटनों से जरा ही नीचे तक पहुँचने वाली मिल की धोती, उसके ऊपर गाढ़े का कुर्ता और पैर में बंददार जूता। यानी कुल

मिलाकर आप इसे दहकान ही कहते गवइयाँ मुरूब, जो अभी-अभी गाँव से चला आरहा है, जिसे कपड़ा पहनने की भी तमीज नहीं, जिसे यह भी मालूम नहीं कि धोती-कुर्ते पर चप्पल या पम्प शू पहना जाता है। आप शायद इन्हें प्रेमचंद कहकर पहचानने से भी इन्कार कर देते। लेकिन तब भी वही प्रेमचंद था क्योंकि वह हिन्दुस्तानी है। मुझे अच्छी तरह याद है कि बरसों इन्होंने सस्त के खयाल से फिरमिच का जूता पहना और ताकि रग रोगन की झंझट न रहे रोज-रोज उसपर सफेदी पोतने की मुसीबत से नजात मिल, इसलिय वह फिरमिच का जूता ब्राउन रंग का होता था, जिसे आज तो शायद रिक्शा वाला भी न पहनता और शौक से तो नहीं ही पहनता और मुझे उनके दोनों पैरों की कानी उंगली की अच्छी तरह याद है जो जूते को चीरकर बाहर निकली रहती थी। सादगी इससे आगे नहीं जा सकती। अपने ऊपर कम से कम खर्च यह उनकी जिन्दगी का साधारण नियम था। घर के बाकी लोग भी कोई मखमल नहीं पहनते थे मगर उनसे सभी अच्छे थे। यों तो प्यार कभी इतने पैसे ही नहीं हुये कि कोई बड़ी ऐशो-इशरत से रहता और मसल भी मशहूर है कि खुदा गंजे का नाखून नहीं देता। लेकिन जहाँ तक मैं समझता उस आदमी का ऐशो-इशरत की भूख या हविस थी भी नहीं"

प्रेमचंदजी के जीवन एवं कृतित्व के संबंध में और भी संस्मरण हैं जिनका उल्लेख करना संभव नहीं लेकिन उनसे इतनी बातें अवश्य स्पष्ट हैं कि वे सादगी ईमानदारी एवं लगन के प्रतीक थे। जीवन सादा था, सत्य के प्रति आस्था और समरस जीवन में विश्वास करते थे। जहाँ भी रहे आत्म विश्वास के साथ कर्मरत रहे।

प्रेमचंद तो युग नायक महात्मा गाँधी एवं उनके द्वारा संचालित स्वतंत्रता आन्दोलन के पक्के समर्थक थे। गाँधीजी के व्यक्तित्व एवं व्यावहारिक कार्यक्रमों से बहुत प्रभावित थे। प्रेमचंद-साहित्य में सुधार आन्दोलन एवं जनजागृति का संदेश महात्माजी के ही प्रभाव के कारण था। प्रेमचंदजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही गाँधीवाद से प्रभावित था। 'प्रेमचंद घर में' नामक पुस्तक में शिवरानी प्रेमचंद जी ने प्रेमचंदजी से एक बात का प्रसंग दिया है जो उनके जीवन पर गाँधीवाद के प्रभाव को स्पष्ट करने वाली है। बात इस प्रकार है—

शिवरानी—तो आप भी क्या महात्मागाँधी के तरफदार हो गये ?

प्रेमचंद—अरे तरफदार होने को तुम कहती हो, मैं उनका चेला हो गया। चेला तो उसी समय से हुआ, जब वह गोरखपुर में आये थे।

शिवरानी—चेले तब हुये थे, दर्शन अब कर पाये।

प्रेमचंद—चेला होने के मानी, किसी की पूजा करना नहीं होता, बल्कि उन गुणों का अपनाना है।

शिवरानी—तो आपने अपना लिये ?

प्रेमचंद—मैंने अपना लिये। अपनाने को कहती हो, उसी के बाद तो मैंने प्रेमाश्रम लिखा है। सन् २२ में छपा है।

शिवरानी—वह तो पहले से ही लिखा जा रहा था ?

प्रेमचंद—इसके मानी यह है कि मैं महात्मागाँधी को बिना देखे ही उनका चेला हो चुका था।

शिवरानी—तो इसमें महात्मा गाँधी की कौन खास बात हुई ?

प्रेमचंद—बात यह हुई है कि जो बात वह करना चाहते हैं, उसे मैं पहले ही कर देता हूँ। इसके मानी यह है कि मैं उनका बना बनाया कुदरती चेला हूँ।

शिवरानी—यह कोई बात नहीं है और न कोई दलील है।

प्रेमचंद—दलील की कोई बात नहीं। इसके माने हैं कि दुनिया में मैं महात्मागाँधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका उद्देश्य भी यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों, वह इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिये आन्दोलन मचा रहे हैं। मैं लिखकर उनको उत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गाँधी हिन्दू मुसलमानों की एकता चाहते हैं, तो मैं भी हिन्दी और उर्दू को मिलाकर के हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।"

कथाकार प्रेमचंद के साहित्य लेखन का क्रम निर्बाध रूप से आजीवन चलता रहा। उनकी विशिष्ट कृतियों का रचना-क्रम इस प्रकार रहा है। सेवासदन (१९१६), प्रेमाश्रम (१९२२) रंगभूमि (१९२५) गबन (१९३१) कर्म

भूमि (१९३२), निर्मला (१९२३) कायाकल्प (१९२८), गोदान (१९३६)। उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने भारतीय जीवन की समस्याओं पर लिखित, कहानियों का भी संकलन प्रकाशित करवाया जिसमें मानसरोवर (आठ भाग) विशिष्ट कहानी संकलन है।

प्रेमचंदजी ने हिन्दी पत्रकारिता के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'जमाना' (उर्दू पत्र) 'मर्यादा' 'माधुरी' 'हंस' एवं 'जागरण' आदि पत्रों का महत्वपूर्ण संपादन, निर्देशन एवं संचालन करते रहे। 'हंस' के माध्यम से जन-जागृति एवं जन आन्दोलन को सक्रिय बनाने में प्रेमचंदजी सदैव सचेष्ट रहे। प्रेमचंद जो पत्रों एवं उनके द्वारा पड़ने वाले प्रभाव को अच्छी तरह समझते थे, उनके पत्रों के पीछे उनका एक मन्तव्य था और इनके प्रकाशन व्यवस्था के निमित्त उन्हें संघर्षों को झेलना पड़ा। पत्रकारिता जीवन के कटु अनुभव के संबंध में उन्होंने सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्रजी का एक पत्र में लिखा था कि 'धन का अभाव है, 'हंस' में कई हजार का घाटा उठा चुका हूँ लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। कोशिश कर रहा हूँ कि सर्वसाधारण के अनुकूल पत्र हो। इसमें भी हजारों का घाटा ही होगा। पर करूँ क्या? यहाँ तो जीवन ही एक लम्बा घाटा है। यह कुछ चल जाय तो प्रेस के लिये काम की कमी की शिकायत न रहेगी। अभी तो मुझे ही पिसना पड़ेगा।"

जीवन एवं आजीविका के लिये प्रेमचंद जी को अनेक व्यवसायों की ओर झुकना पड़ा—गैर सरकारी और राजकीय विद्यालयों में अध्यापन स्वतंत्र लेखन, पत्रों का संपादन तथा प्रेस संचालन उनकी आजीविकाके विविध क्षेत्र थे। इतना ही नहीं 'जागरण' पत्र जब घाटे में चल रहा था और कर्ज का बोझ कुछ बढ़ गया तो १९३४ में 'चलचित्र जगत' (बम्बई) की भी यात्रा करनी पड़ी। यहाँ उन्होंने फिल्म के लिये कुछ कहानियाँ लिखीं किन्तु यहाँ का जीवन उन्हें पसन्द नहीं आया, उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल वातावरण नहीं मिला। फलतः चिन्ता एवं बोझ से दबे हुये बम्बई से वापस आ गये।

बम्बई से उन्होंने एक पत्र में लिखा—'मैं जिन इरादों से आया था। उनमें एक भी पूरा होता नजर नहीं आता। ये प्रोड्यूसर जिस ढंग की

कहानियाँ बनाते हैं उस लोक से जी भर नहीं हट सकते। 'बसगरटी' का 'ये इण्टरटेनमेण्ट वेल्यू' कहते हैं। अद्भुत ही में इनका विश्वास है। राजा रानी, उनके मन्त्रियों के षड्यन्त्र, नकली लड़ाई धोखेबाजी यही उनके मुख्य-साधन हैं। यह लक्ष पूरा करना ही है। कर्जदार हो गया था, कर्ज पटा दूँगा, मगर और कोई लाभ नहीं। यहाँ तो जान पड़ता है जीवन नष्ट कर रहा हूँ।"

इस प्रकार जीवन-संघर्ष की लम्बी यात्रा को समाप्त कर ८ अक्टूबर १९३६ को उन्होंने अपने जीवन का अंतिम अध्याय समाप्त कर दिया।

पूर्ववर्त्ती उपन्यास और प्रेमचद

हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचंदजी युग प्रवर्तक के रूप में आये। उपन्यास को दिशा ा एक नया मोड़ दिया और उपन्यास साहित्य ा मूल्यांकन नयी दृष्टि से किया।

प्रेमचंदजी के पूर्व हिन्दी में उपन्यास लिखे ा चुके थे। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती उपन्यास लेखकों से श्री निवासदास, देवकीनंदन खत्री, पं० ालकृष्ण भट्ट, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री धाकृष्ण दास और पं० किशोरीलाल गोस्वामी नाम मुख्य हैं।

हिन्दी का सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास : निवास दास लिखित 'परीक्षा गुरु' माना जाता । प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी उपन्यास लेखन कार्य भारतेन्दु युग से प्रारम्भ हुआ। 'परीक्षा ु' से सामाजिक जीवन के चित्रण का प्रारम्भ ना जाता है। इस पुस्तक में मध्यमवर्ग के ु दोषों की व्याख्या है। उपन्यास में नैतिकता भरे हुये उद्धरणों और आदर्शों का जिक या गया है। 'परीक्षा गुरु' ने हिन्दी में सामान्य वन पर उपन्यास लिखने की परम्परा में पथ र्शन किया। इसमें औपन्यासिक तत्वों का

आभास मिलता है। इसके बाद, हिन्दी में बालकृष्ण भट्ट ने "नूतन ब्रह्मचारी" और 'सौ अजान एक सुजान' श्री राधाचरण गोस्वामी ने 'विधवा विपत्ति' और श्री गोकुल नाथ शर्मा ने 'पुष्पावती' आदि उपन्यास लिखे।

उपर्युक्त उपन्यासों में घटनाओं का कौतूहल, मनोरंजन और नैतिकता तथा आदर्शवादिता का उद्बोधन स्पष्ट रूप से मिलता है। पं० बालकृष्ण भट्ट ने उपन्यासों में नैतिक जीवन पर बल दिया गया। इन उपन्यासों की भाषा स्पष्ट और सरल है। [1]

श्री देवकीनन्दन खत्री के आगमन से 'परीक्षा गुरु' से प्रारम्भ होने वाली परम्परा और विकास में अन्तर आ गया। श्रीदेवकीनन्दन खत्री हिन्दी में 'तिलस्मी' और "ऐयारी" प्रकार के उपन्यास लेकर आये। "चन्द्रकान्ता" (१८८२) का आगमन हिन्दी उपन्यास पढ़ने लिखने वालों के लिये नई दिशा का संकेत है। यह पुस्तक २४ भागों में है और इसी प्रकार की दूसरी पुस्तक "चन्द्रकान्ता सन्तति" है। ये उपन्यास काल्पनिक और रोचक हैं। कल्पना में परिभ्रमण करने और मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री इसमें मिलती है। इनमें सामाजिक जीवन का कोई चित्र नहीं है। घटनाओं की प्रधानता है। यह पाठक को एक कल्पनालोक में विचरण कराता है।

देवकीनन्दन जी खत्री के उपन्यासों के प्रसंग में विचार करते हुये श्रीकृष्ण लाल ने लिखा है कि—"तिलस्म का भाव हिन्दी में फारसी कहानियों में आ जाता है। "अलीबाबा और चालीस चोर" की कहानी में जब अलीबाबा कहता है, 'खुल जा सिम सिम" तब एक सुरंग सी खुल जाती है और एक बन्द तहखाना दिखाई पड़ता है। और 'बन्द हो जा सिम-सिम" कहने पर उसी प्रकार बन्द हो जाता है, मानो वहाँ पृथ्वी को छोड़ कर और कुछ था ही नहीं इसी को 'तिलस्मी" कहते हैं और फारसी कहानियों में इसका प्रायः उपयोग किया जाता है। यह फारसी से उर्दू में आया और 'अमीर हमजा' ने अनेक तिलस्मी" उपन्यास लिखे जिनमें अद्भुत तिलस्मों" की सृष्टि की गई है। देवकी नन्दन खत्री ने उर्दू से लेकर हिन्दी में तिलस्मों का प्रयोग किया, परन्तु अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति से उनमें इतना कौशल और कवित्व भर दिया कि वे उर्दू और फारसी के 'तिलस्मों' से कहीं अधिक अद्भुत और आकर्षक बन गये'।

पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन उपन्यासों के बारे में लिखा है कि "इनमें अद्भुत और असाधारण की ऐसी रेलम-पेल है कि पाठक का चित्त भक्का खाकर आगे बढ़ता जाता है, उसे कथानक के गठन और चरित्र के विकास की बात याद ही नहीं रह जाती। अति प्राकृतिक, अद्भुत और असाधारण घटनाओं से आश्चर्यजनक परिस्थितियों का निर्माण 'तिलस्माती' कथानकों का प्रसिद्ध आकर्षण है। इन कथानकों में 'लखलखा' नामक एक प्रकार की मादक वस्तु के प्रयोग का प्रसंग प्रायः ही आता रहता है जिसके सूँघने से मनुष्य बेहोश हो जाता है। "तिलस्माती" उपन्यासों का वातावरण भी साहित्यिक 'लखलखा' है वह पाठक को बेहोश और अभिभूत कर देता है, वह कथानक के उद्देश्य, गठन और पात्रों के साथ उनके सम्बन्ध की और पात्रों के मनोविकास की बात सोच ही नहीं पाता। इन उपन्यासों ने हिन्दी जनता के चित्त को ऐसे ही मादक वातावरण में डाल रक्खा था। उपन्यास के वास्तविक रूप से तो उन्होंने इस जनता को परिचित ही नहीं कराया। परन्तु आधुनिक उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता मनोरंजन है उसे प्राप्त करने की दुर्दम लालसा उन्होंने अवश्य उत्पन्न कर दी।"[1]

इस युग के 'जासूसी' उपन्यासकार श्री गोपालराम जी गहमरी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने जीवन काल में लगभग १५० जासूसी उपन्यास लिखे—'खूनी कौन', 'जासूस की भूल' आदि पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों का वातावरण ऐय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों से भिन्न था। बुद्धि तत्व की प्रधानता भी क्योंकि हत्या को जानकारी और अपराधी का पता लगाने के लिए बुद्धि पक्ष की विशेष आवश्यकता पड़ती है। ये जासूसी उपन्यास हिन्दी में अंग्रेजी जासूसी उपन्यास के प्रभाव से आये थे।

प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासकारों में पं० किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान महत्वपूर्ण है। गोस्वामी जी ने लगभग ६५ उपन्यासों की रचना की। इनमें सामाजिक, विलासी, जासूसी आदि सभी प्रकार के उपन्यास हैं। तारा, चपला, तरुण तपस्विनी, रज़िया बेगम, लवंगलता, हृदयहारिणी इनके विशिष्ट उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों में प्रेम का विस्तार है समस्याओं का अभाव है और इनके उपन्यास बहुत कुछ मुसलमानी पद्धति पर लिखे गये हैं। इनके सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य' में कहा

है कि 'इनकी रचनायें साहित्य कोटि में आती हैं। इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा बहुत चरित्र चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।'

हिन्दी में गोस्वामी जी ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिख कर हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा के अग्रदूत के रूप में हमारे सम्मुख आये। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में कानन कुसुम, मल्लिका देवी प्रमुख हैं। गोस्वामी जी के इन उपन्यासों की भाषा संस्कृतनिष्ठ है और उन पर रोमांस का प्रभाव अधिक है।

उपरोक्त उपन्यासों में घटनाओं की प्रधानता थी तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का कल्पना लोक था। चरित्र विश्लेषण की ओर विशेष ध्यान नहीं था, उपदेश की प्रवृत्ति अधिक थी। भाषा एक मिश्रित स्वरूप को लेकर आगे बढ़ रही थी। हाँ, इतनी बात अवश्य थी कि इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यासों का मार्ग प्रदर्शन किया। जासूसी और ऐयारी उपन्यासों ने जनरुचि को उपन्यासों के लिए आकर्षित किया।

इन उपन्यासों के सम्बन्ध में डा० रामरतन भटनागर लिखते हैं— "चन्द्रकान्ता का संसार रोमांस का संसार है। उसमें चरित्र चित्रण नहीं, भावों का घात-प्रतिघात नहीं, मनोविकारों का विश्लेषण नहीं, पात्रों में व्यक्तित्व नहीं। केवल कथा मात्र है—कुतूहल प्रधान, मनोरञ्जक, कि किताब हाथ में ली कि खाना-पीना गया। प्रेमचंद जी ने अपने लड़कपन में उन सब तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया था जो हिन्दी के इन उपन्यासों का प्रभाव उर्दू के मौलिक माध्यम से उनकी रचनाओं पर पड़ा है। परन्तु खत्री जी की रचना शक्ति और कल्पना एवं वर्णन शक्ति अद्वितीय थी और उनके कारण बनारस शीघ्र ही उपन्यास लेखन का केन्द्र बन गया।"

इस युग में लिखे गये मौलिक उपन्यासों के अलावा हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में विविध भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं के भी अनुवाद हुए। इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास की परम्परा को विशेष रूप से प्रभावित किया। तत्कालीन भारतीय भाषाओं में बंगला भाषा अधिक समृद्ध थी बंकिमचन्द्र, रविन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त आदि विशिष्ट

उपन्यासकार थे, जिनके उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में किया गया। इस अलावा मराठी तथा अंग्रेजी के महत्वपूर्ण उपन्यासों का भी अनुवाद हुआ।

१९१८ में हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में श्री प्रेमचन्द जी का आगमन एक ऐति हासिक घटना है। वे हिन्दी उपन्यास जगत के लिए युगान्तरकारी व्यक्ति और कृतित्व लेकर आये। युग का नेतृत्व कर उपन्यास साहित्य को ए नई दिशा दी। प्रेमचन्द जी उपन्यासों का सामाजिक आधार लेकर आगे बढ़े प्रेमचन्द जी ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के कल्पना लोक के धरात पर समाज की यथार्थ समस्याओं का उद्घाटित किया। घटना प्रधा उपन्यासों के स्थान पर घटना और चरित्र का संयोजन किया गया काल्पनिकता के स्थान पर जीवन की वास्तविकताओं पर विशेष रूप। विचार किया गया।

मानव जीवन की समस्याओं और युग जीवन की अभिव्यक्ति को प्रेमच जी ने उपन्यास का आधार स्वीकार किया। उपन्यास के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने लिखा—"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। जिन्हीं भी दो आदमियों की सूरतें नहीं मिलती उसी भाँति आदमियों के चरित्र नहीं मिलते। जैसे—सब आदमियों के हाथ, पाँव आँखें, कान, नाक, मुँह होते हैं, पर इतनी समानता रहने पर भी विभिन्नता मौजूद रहती है। उसी भाँति सब आदमियों के चरित्रों में भी बहुत कुछ समानता रहते हुए भी कुछ विभिन्नतायें होती हैं। यही चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व-भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना—उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है।"

प्रेमचन्द जी का चरित्र सामाजिक व्यक्तित्व रखता है। मानव चरित्र के चित्रांकन में प्रेमचन्द जी ने समाज के विशाल पट को अपने साहित्य का धरातल बनाया। जीवन के विविध पहलुओं पर सूक्ष्म ढंग से विचार किया। तत्कालीन समाज के चित्रण में भारतीय ग्रामीण वर्ग के प्रति उनकी तीव्र ममता थी, उनका जीवन, भावनाओं एवं विचारों के प्रति विशेष रुचि रखा। ग्रामीण जीवन की विशेषताओं, कुप्रथाओं एवं जीवन के तथ्यों को ठीक इसी रूप में उपन्यासों में रखा। ग्रामीण नारी-पुरुषों का मनोविज्ञान एवं जीवन

का बड़ा ही सफल विश्लेषण किया। 'होरी' उनका समर्थ एवं अमर पात्र है जिसने पूरे कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व किया है।

प्रेमचन्द जी का साहित्य सुधारवादी दृष्टिकोण रखता है—जीवन के कुप्रथाओं, कुसंस्कारों एवं अन्धविश्वास के जीवन पर उन्होंने साहित्य के माध्यम से तीव्र आघात किया। इन पर व्यंग और चोट करके उन्होंने जीवन को गौरव प्रदान किया। भारतीय समाज का कोई ऐसा समस्यापूर्ण पक्ष नहीं था जिसपर उन्होंने न लिखा हो। साम्प्रदायिकताकी समस्या, ग्रामीण जीवन की समस्या, अछूत वग की समस्या, वेश्या जीवन एवं विधवा विवाह की समस्याओं पर विशिष्ट रूप से विचार किया। प्रत्येक उपन्यास में उनके पात्र कुप्रथाओं एवं सामाजिक समस्याओं के लड़ते हुए पाये जाते हैं।

प्रेमचंद जी को अस्वस्थ ढंग का समाजप्रिय नहीं था। स्वस्थ समाज के लिए नैतिकता एवं आदर्श जीवन का मूल्यांकन चाहते थे। जीवन एवं समाज को आदर्श सूत्रों में बाँधना चाहते थे। उनको मानव एवं मानवता दोनों ही में प्रेम तथा विश्वास था। मानवता की हत्या करके समाज को देखना नहीं चाहते थे। फलतः उनका साहित्य मानवता के मूल्यों को सवत्र स्वीकार करता है।

जीवन एवं साहित्य के संबंध में उन्होंने १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ में भाषण किया था—"हमने जिस युग को पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब नहीं था। हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी करके उसमें मनमाने तिलस्म बाँधा करते थे। कहीं किसानये अजायब की दास्तान थी कहीं दास्ताने ख्याल और थी हमारे अद्भुत रस प्रेम की तृप्ति साहित्य से जीवन का लगाव है, यह कल्पनातीत था। कहानी कहानी है, जीवन जीवन। दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं। कवियों पर व्यक्तिवाद का रंग चढ़ा हुआ था। प्रेम का आदर्श वासनाओं को तृप्त करना था और सौन्दर्य का आंखों को।"

हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण देन जो प्रेमचन्द जी ने दी यह है जीवन का ईमानदारी के साथ चित्रण। जीवन को जिस रूपमें उन्होंने देखा ठीक उसी रूप में रखने का प्रयास किया। प्रेमचन्द के पूर्व किसी

कथाकार में जीवन का इतना यथार्थ और सफल चित्रण नहीं बन सका था।

इसके अतिरिक्त उपन्यास कला की दृष्टि से प्रेमचन्द जी के उपन्यास पूर्ववर्ती उपन्यासों से सर्वथा भिन्न हैं। कथावस्तु रचना विधान एवं कौशल की दृष्टि से उनका अपना महत्व है जो पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से भिन्न है। शिल्पविधान विषयात्मक न होकर विश्लेषणात्मक है।

प्रेमचन्द के पूर्व, उपन्यास घटनाप्रधान, वर्णन प्रधान एवं नीरस अधिक थे इस कारण उसमें जीवन की सजीवता नहीं—कौतूहल का आनन्द का अवश्य था।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में मानव मन एवं व्यवहार दोनों पक्षों का विश्लेषण हुआ है। मनोवैज्ञानिक परख होने के कारण, व्यक्ति एवं वर्ग के जीवन का मनोविश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया। प्रेमचन्द जी ने आन्तरिक मनोभावों का चित्रण कर उपन्यास में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर बल दिया।

काल्पनिकता एवं मनोरंजन के स्थान पर वास्तविकता एवं उपयोगिता का मूल्यांकन प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों में किया। जीवन की स्वाभाविकता पर विचार किया।

प्रेमचन्द जी को समस्यामूलक उपन्यासकार घोषित करते हुए डा० महेन्द्र भटनागर *"समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' में लिखते हैं—प्रेमचन्द* समस्यामूलक उपन्यासकार थे। उन्होंने अपने प्रायः सभी उपन्यासों को समस्या-केन्द्रित रखा है, इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता उसमें पाये जाने वाले ऐसे विषय हैं जो विभिन्न समस्याओं की ओर सहज ही पाठक का ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। इस प्रकार उनके एक उपन्यास में यदि एक या दो समस्यायें प्रमुख होती हैं तो दूसरी ओर अन्य समस्याओं का प्रासंगिक स्पर्श भी होता है, जो पर्याप्त महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द में यह प्रवृत्ति, 'वरदान', 'प्रतिज्ञा' से लेकर *'मंगल-सूत्र'* तक पाई जाती है।"

जीवन की सामान्य समस्याओं के विश्लेषण के अतिरिक्त प्रेमचन्द जी ने राष्ट्रीय संगठनों को दृढ़ करने और राष्ट्रीयता की भावनाओं को जन-मानस में पुष्ट करने का भी महत्वपूर्ण कार्य अपनी रचनाओं द्वारा किया।

हिन्दी उपन्यासों के लिए प्रेमचन्द की महत्वपूर्ण देन है—जीवन एवं समाज के विविध समस्याओं का मनोविश्लेषण एवं विवेचन, साहित्य के लिये जीवन की यथार्थता को स्वीकार करना, राष्ट्रीय आन्दोलनों को सक्रिय बनाने में सहायता करना तथा उपन्यास में कथावस्तु एवं रचना-कौशल पर नये ढंग से विचार करना आदि हैं।



प्रेमचंद : साहित्यिक मान्यताएँ

जीवन और साहित्य के संबंध में प्रेमचन्द जी के विचार मौलिक थे। जीवन को उन्होंने नयी दृष्टि दी और साहित्य का मूल्यांकन नये ढंग से किया। प्रेमचन्द जी जीवन-साहित्य के समर्थक थे। साहित्य के आधार के संबंध में प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि "साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवारें खड़ी होती हैं, उसकी अटारियाँ, मीनार और गुम्बद बनते हैं लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को जी न चाहेगा। जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिये अनन्त है अबोध है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है इसलिये सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है। जीवन परमात्मा को अपने कामों का जवाब देह है। इसके लिये कानून है, जिनसे वह इधर उधर नहीं हो सकता।"

साहित्य को प्रेमचन्द जी जीवन की वस्तु मानते हैं। जीवन से अलग होकर साहित्य का कोई मूल्य नहीं है। प्रेमचन्द जी कहते हैं—"साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के, काव्य के—उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिये।"

साहित्य का संबंध केवल जीवन-व्याख्या से नहीं है। साहित्य के माध्यम से जीवन को नयी दिशा का बोध भी होना चाहिये। प्रेमचन्द जी ने आगे लिखा कि—"अब (पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न) साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।"

"साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्शों को उपस्थित करना है, जिसे पढ़कर हम जीवन में कदम-कदम पर आनेवाली कठिनाइयों का सामना कर सकें। अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले, तो ऐसे साहित्य से लाभ ही क्या? जीवन की आलोचना कीजिये चाहे चित्र खींचिये, आर्ट के लिए लिखिये, चाहे ईश्वर के लिये, मनोरहस्य दिखाइये, चाहे विश्वव्यापी सत्य की तलाश कीजिये, अगर उससे हमें जीवन का अच्छा मार्ग नहीं मिलता तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नहीं। साहित्य में चित्रण का नाम है न अच्छे शब्दों को चुनकर सजा देने का, अलंकारों से वाणी को शोभायमान बना देने का। ऊँचे और पवित्र विचार ही साहित्य की जान है।"

प्रेमचन्द जी साहित्य को समाज सापेक्ष स्वीकार करते हैं। साहित्य को समाज के साथ चलना चाहिये और समाज को दृष्टि देकर जीवन की आवश्यकताओं का दिशा बोध कराना चाहते हैं। उनका विश्वास था कि साहित्य से जातीय विशेषताओं का निर्माण होता है। इस संबंध में प्रेमचन्द जी लिखते हैं—"साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से आदमी की भावनाएँ अच्छी और पुरी बनती हैं। इन्हीं भावनाओं को लेकर आदमी जीता है आगे लिखते हैं—"किसी राष्ट्र की सबसे मूल्य वस्तु सम्पत्ति उसके साहित्यिक आदर्श होते हैं। व्यास, वाल्मीकि ने जिन आदर्शों की सृष्टि की वह आज भी भारत का सिर ऊँचा किये हुए है। राम अगर वाल्मीकि के साँचे में न ढलते, तो राम न रहते, सीता भी, उसी साँचे में ढलकर सीता हुई।"

साहित्यकार की ईमानदारी के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का कहना है—

"जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है, इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तगासा पेश करता है, और उसकी न्यायवृत्ति तथा सौन्दर्य वृत्ति को जाग्रत करके अपना

साहित्यकार

यत्न सफल समझता है ... पर साधारण वकीलों की तरह साहित्यकार अपने मुवक्किल की ओर से उचित अनुचित सब तरह के दावे नहीं पेश करता, अतिरंजना से काम नहीं लेता, अपनी ओर से बातें गढ़ता नहीं। वह जानता है कि इन युक्तियों से वह समाज की अदालत पर असर नहीं डाल सकता। उस अदालत का हृदय परिवर्तन तभी सम्भव है, जब आप सत्य से तनिक भी विमुख न हों, नहीं तो अदालत की धारणा आपकी ओर से खराब हो जायगी और वह आपके खिलाफ फैसला सुना देगी।"

प्रेमचन्द जी साहित्यकार के गुरुतर दायित्व को समझते थे। चुपचाप जीवन की आलोचना करके हट जाना ही उसका काम नहीं है। समाज के संचालन में उसका महत्वपूर्ण हाथ है। साहित्यकार को अपने लक्ष्य तथा कर्तव्य का सदैव ध्यान रखना चाहिये। यदि समाज प्रति वह अपने कर्तव्य से विमुख हुआ तो वह साहित्यकार नहीं रह जायेगा। साहित्यकार को समाज की वास्तविकता एवं गति शीलता पर खुली दृष्टि से विचार करना चाहिये हैं और साहित्य के उच्चतम आदर्शों को कभी नहीं भूलना चाहिए। साहित्यकारों के दायित्व के सम्बन्ध प्रेमचन्द जी का कहना है—"साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है—कम से कम उसका उद्देश्य यही होना चाहिए।

साहित्यकार का जीवन परखने की दृष्टि स्वतन्त्र रखनी चाहिये—मतवाद के पीछे नहीं चलना चाहिये—समाज में होनेवाले गतिशीलताओं पर विचार रखना चाहिए—समाज की सचाई को ईमानदारी के साथ साहित्य में रखना चाहिए—साहित्यकार को स्वतंत्र दृष्टि का बोध कराते हुए प्रेमचन्द जी लिखते हैं—

"यदि साहित्यकार ने अमीरों के याचक बनने को जीवन का सहारा बना लिया हो और उन आन्दोलनों, हलचलों और क्रान्तियों से बेखबर हो, जो समाज में हो रही हैं—अपनी ही दुनियाँ बनाकर रोता हँसता हो, तो इस दुनिया में उसके लिए जगह न होने में कोई अन्याय नहीं है।"

साहित्यकार की प्रगतिशीलता के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का कहना है—"साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है, अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अपने अन्दर एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छंदता की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नहीं देती। इसलिए वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओं से उसका दिल कुढ़ता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओं का अन्त कर डालना चाहता है जिससे दुनिया जीने और मरने के लिए इससे अधिक अच्छा स्थान हो जाये। यही वेदना और यही भाव उसके हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाये रखता है।"

प्रेमचन्द की दृष्टि में सौंदर्य बोध कराना और आनन्द की सृष्टि करना ही कला का लक्ष्य नहीं था। कला कला के लिये न मानकर कला के उपयोगवादी दृष्टि पर अधिक विचार करते थे। इस

कला और सौन्दर्य

सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का विचार है—"मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ। निस्संदेह कला का उद्देश्य सौन्दर्य की पुष्टि करना है और वह हमारे आध्यात्मिक आनन्द की कुंजी है पर ऐसा कोई रुचिगत मानसिक तथा आध्यात्मिक आनन्द नहीं, जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो मेरा पक्का मत है कि परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सभी कला उपयोगिता के सामने घुटना टेक देती है।

सौन्दर्य के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—"हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है, ऊषा और सन्ध्या की लालिमा देखी है, सुन्दर सुगंधि भरे हुए फूल देखे हैं, नाचते हुए झरने देखे हैं—यहाँ सौन्दय

है — इन दृश्यों को देखकर हमारा अन्तःकरण क्यों खिल उठता है ? इसलिए कि इनमें रंग या ध्वनि का सामञ्जस्य है। बाजों का स्वर साम्य अथवा मेल ही संगीत की मोहकता का कारण है। हमारी रचना ही तत्त्वों के समानुपात में संयोग से हुई है। इसलिए हमारी आत्मा सदा उसी साम्य की, सामञ्जस्य की खोज में रहती है। साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह हममें वफादारी, सचाई, सहानुभूति, न्याय प्रियता और समता के भावों की पुष्टि करता है। जहाँ ये भाव हैं, वहीं दृढ़ और जीवन है। जहाँ इनका अभाव है, वहीं फूट, विरोध, स्वार्थपरता है—द्वेष शत्रुता और मृत्यु है।"

आगे इसके सामाजिक मूल्य और विस्तार पर चर्चा करते हुए प्रेमचन्द जी लिखते हैं कि—'हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरों और विलासिता के (सामन्ती और पूँजीपतिक) ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था, उन्हीं की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलम्बित था और उन्हीं के सुख दुःख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अन्तःपुर और बँगलों की ओर उठती थी। झोंपड़े और खण्डहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे। उन्हें वह मनुष्यता की परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी चर्चा करता भी था तो इनका मज़ाक उड़ाने के लिए — वह भी मनुष्य है उसके भी हृदय है और उसमें भी आकांक्षाएँ हैं—यह कला की कल्पना के बाहर की बात थी।"

साहित्य के मूल स्वरूप एवं आधार पर विचार करते हुए निष्कर्ष स्वरूप एक प्रेमचन्द की इन पंक्तियों का उद्धरण देकर समाप्त करना चाहता हूँ—

'साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रगट की गई हो, जिसकी भाषा, प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों।"

भाषा वह माध्यम है जो भावनाओं को साहित्य रूप में व्यक्त करती है। भाषा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो सर्व सामान्य के लिए सरल एवं बोधगम्य हो। प्रेमचन्द भी जनता की आम भाषा चाहते थे जो

भाषा

बिल्कुल उसकी अपनी उपज हो—भाषा के सम्बन्ध में भी वह ईमानदारी चाहते थे अर्थात वह वास्तविक हो जीवन के समीप की सब भाव भाषा होनी चाहिए। वह हिन्दी उर्दू के बीच की मिलीजुली भाषा चाहते थे जो दोनों ही क्षेत्रों में सरलता पूर्वक समझी जा सके—इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—"हमारे सूबे के देहातों में रहनेवाले मुसलमान प्रायः देहातियों की भाषा ही बोलते हैं। जो बहुत से मुसलमान देहातों से आकर शहरों में आबाद हो गये हैं, वे भी अपने घरों में देहाती जबान ही बोलते हैं। बोलचाल की हिन्दी समझने में न तो साधारण मुसलमानों को ही कोई कठिनता होती है और न बोलचाल की उर्दू समझने में साधारण हिन्दुओं को ही। बोलचाल की हिन्दी और उर्दू प्रायः एक सी ही है।

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का स्पष्ट विचार था—"हमारी राष्ट्रभाषा तो वही हो सकती है, जिसका आधार सर्वमान्य बोधगम्यता हो—जिसे सब लोग सहज में समझ सकें।"

उपन्यास के सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी ने नये ढंग से विचार किया। घटनाओं एवं काल्पनिकता के विषय में विचार न करके उन्होंने उपन्यास की सर्वथा नयी परिभाषा की। उपन्यास के सम्बन्ध

उपन्यासमें

उनकी परिभाषा मौलिक है। प्रेमचन्द जी लिखते हैं—"मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

चरित्रों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—'उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा ...उपन्यास चरित्रों के विकास का ही विषय है। अगर उसमें विकास दोष है, तो वह उपन्यास कमजोर

इन दृश्यों को देखकर हमारा अन्तःकरण क्यों खिल उठता है ?
है... इसलिए कि इनमें रंग या ध्वनि का सामञ्जस्य है। बाजों का स्वर
साम्य अथवा मेल ही संगीत की मोहकता का कारण है। हमारी रचना
ही तत्वों के समानुपात में संयोग से हुई है। इसलिए हमारी आत्मा सदा
उसी साम्य की, सामञ्जस्य की खोज में रहती है। साहित्य कलाकार के
आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौंदर्य की सृष्टि
करता है, नाश नहीं। वह हममें वफादारी, सचाई, सहानुभूति, न्याय
प्रियता और समता के भावों की पुष्टि करता है। जहाँ ये भाव हैं, वहीं
दृढ़ और जीवन है। जहाँ इनका अभाव है वहां फूट, विरोध, स्वार्थपरता
है—द्वेष शत्रुता और मृत्यु है।"

आगे इसके सामाजिक मूल्य और विस्तार पर चर्चा करते हुए प्रेमचन्द
भी लिखते हैं कि—"हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक
यह कसौटी अमीरों और विलासिता के (सामन्ती और पूंजीपतिक) ढंग
की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था, उन्हीं
की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलम्बित था और उन्हीं के सुख दुःख,
आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य
था। उसकी निगाह अन्तःपुर और बंगलों की ओर उठती थी। झोंपड़े
और खण्डहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे। उन्हें वह मनुष्यता की
परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी चर्चा करता भी था तो इनका
मज़ाक उड़ाने के लिए वह भी मनुष्य है उसके भी हृदय है
और उसमें भी आकांक्षाएँ हैं—यह कला की कल्पना के बाहर की बात थी।"

साहित्य के मूल स्वरूप एवं आधार पर विचार करते हुए निष्कर्ष
स्वरूप एक प्रेमचन्द की इन पंक्तियों का उद्धरण देकर समाप्त करना
चाहता हूँ—

'साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रगट की गई हो,
जिसकी भाषा, प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो जिसमें दिल और दिमाग
पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी
अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ
व्यक्त की गई हों।"

भाषा वह माध्यम है जो भावनाओं को साहित्य रूप में व्यक्त करती है। भाषा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो सर्व सामान्य के लिए सरल एवं बोधगम्य हो। प्रेमचन्द जी जनता की आम भाषा चाहते थे जो बिल्कुल उसकी अपनी उपज हो—भाषा के सम्बन्ध में भी वह ईमानदारी चाहते थे अर्थात् वह वास्तविक हो जीवन के समीप की सब माह्य भाषा होनी चाहिए। वह हिन्दी उर्दू की मिलीजुली भाषा चाहते थे जो दोनों ही धर्मों में सरलता से समझी जा सके—इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—"हमारे देहातों में रहनेवाले मुसलमान प्राय देहातियों की भाषा ही बोलते हैं। जो बहुत से मुसलमान देहातों से आकर शहरों में आबाद हो गये हैं, व भी अपने घरों में देहाती जबान ही बोलते हैं। बोलचाल की हिन्दी समझने में न तो साधारण मुसलमानों को ही कोई कठिनता होती है और न बोलचाल की उर्दू समझने में साधारण हिन्दुओं को ही। बोलचाल की हिन्दी और उर्दू प्राय एक सी ही है।

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का स्पष्ट विचार था—"हमारी राष्ट्रभाषा तो वही हो सकती है, जिसका आधार सर्वमान्य बोधगम्यता हो—जिसे सब लोग सहज में समझ सकें।"

उपन्यास के सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी ने नये ढंग से विचार किया। उन्होंने उपन्यास को घटनाओं एवं काल्पनिकता के विषय में विचार न करके सर्वथा नयी परिभाषा दी। उपन्यास के सम्बन्ध में उनकी परिभाषा मौलिक है। प्रेमचन्द जी लिखते हैं—"मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

चरित्रों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—'उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा.. ..उपन्यास चरित्रों के विकास का ही विषय है। अगर उसमें विकास दोष है, तो वह उपन्यास कमजोर

हो जायगा। कोई चरित्र अंत में भी वैसी ही रहे जैसा वह पहले था—उसके बल-बुद्धि और भावों का विकास न हो तो वह असफल चरित्र है।

"जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद अपने अंदर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें, वही सफल उपन्यास है।"

साहित्य का धरातल जीवन है। जीवन का चित्रण या तो यथार्थ रूप में हो सकता है—या आदर्श रूप में यथार्थ रूप जीवन का स्वाभाविक, प्रकृत एवं खुला रूप है। आदर्श रूप उससे भिन्न नैतिक एवं मर्यादा में बँधा हुआ रूप है। इस प्रकार मानवके चरित्रांकन करनेवाले साहित्यकारों का दो वर्ग हो गया—यथार्थवादी और आदर्शवादी। यथार्थवादी साहित्यकार जीवन का यथा तथ्य अनुभावन करता है—जीवन की स्वाभाविकताओं एवं विषमताओं को उसके ठीक यथार्थ रूप में रखता है।

आदर्श एवं साहित्य

प्रेमचन्द जी जीवन के आदर्शवादी पक्ष पर अधिक विचार करना चाहते थे। आदर्शवाद के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—"साहित्य और कला में केवल मानव जीवन की नकल करने को बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया जाता। उसमें आदर्शों की रचना करनी पड़ती है। आदर्शवाद का ध्येय यही है कि वह सुंदर और पवित्र की रचना करके मनुष्य में जो कोमल और ऊँची भावनायें हैं, उन्हें पुष्ट करे और जीवन के संस्कारों से मन और हृदय में जो गर्द और मैल जमा रहा हो उसे साफ कर दे। किसी साहित्य की महत्ता की जाँच यही है उसमें आदर्श चरित्रों की सृष्टि हो।"

यथार्थवाद के सम्बन्ध आगे चलकर प्रेमचन्द जी का कहना है कि "यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्नरूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुये अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं। संसार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है। नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनायें सहते हैं, मुसीबतें

झेलते हैं, अपमानित होते हैं, उनको नेकी का फल उलटा मिलता है, बुरे आदमी चैन करते हैं, नामवर होते हैं, यशस्वी बनते हैं—उनको बदी का फल उल्टा मिलता है। (प्रकृति का नियम विचित्र है।) यथार्थवादी अनुभव की बेड़ियों में जकड़ा होता है और चूँकि संसार में बुरे चरित्रों की प्रधानता है—यहाँ तक कि उज्ज्वल से उज्ज्वल चरित्र में भी कुछ न कुछ दाग-धब्बे रहते हैं, इसलिये यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।"

आदर्श एवं यथार्थ को सापेक्षिक महत्व प्रदान करते हुये प्रेमचन्द जी ने आगे विचार किया कि—"यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहीं इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्तों की मूर्ति मात्र हों—जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।"

फलतः प्रेमचन्द जी ने आदर्श एवं यथार्थ पर पूरा विचार करके 'आदर्शोन्मुख' यथार्थवाद की प्रतिष्ठापन किया। 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की स्पष्ट व्याख्या प्रेमचन्द जी ने अपने 'उपन्यास' नामक निबन्ध में निम्न शब्दों में किया है—'इसलिए वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिये ही यथार्थ का उपयोग होना चाहिये।"

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

प्रेमचन्द जी के प्रायः सभी उपन्यास 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' का ही आदर्श सामने रखते हैं—किन्तु गोदान तक आते आते वह पूर्णतया यथार्थवादी हो गये थे। लगता था कि एक बार और अन्तिम बार वह जीवन के यथार्थ रूप में ये देखना चाहते थे।

गबन . समीक्षा

कथानक



बरसात के दिन हैं, आकाश में सुनहरी घटाएँ छायी हुई हैं। आमों के बागों में झूला पड़ा हुआ है—लड़कियाँ झूला झूल रही हैं। कोई कजली गाने लगती है, कोई बारहमासा। सबके दिल उमंगों से भरे हुए हैं। मानो साड़ियों ने प्रकृति की हरियाली से नाता जोड़ा है।

इसी समय एक बिसाती आकर झूले के पास खड़ा हो गया—लड़कियों का झूला रुक गया। बिसाती ने अपना सन्दूक खोला और चमकती-दमकती चीजें निकालकर दिखाने लगा—उसके पास कई तरह के बालक-बालिकाओं के सामान थे। एक बड़ी आँखोंवाली बालिका—जालपा ने फिरोजी रंग का चन्द्रहार पसन्द किया—मूल्य थे बीस आने। बालिका की माता ने कहा—यह महँगा है। चार दिन में इसकी चमक-दमक जाती रहेगी। बिसाती ने सिर हिलाकर कहा—बहू जी, चार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जायगा।

हार ले लिया गया। बालिका के आनन्द की सीमा न थी। उसे पहन कर वह सारे गाँव में नाचती फिरी।



मुंशी दीनदयाल प्रयाग के एक गाँव में रहते थे—वह जमींदार के मुख्तार थे। गाँव पर धाक थी। इज्जत से रहने के लिये चपरासी घोड़े, गायें सभी कुछ उनके पास थी—परन्तु वेतन के नाम पर कुल पाँच रुपये मिलते थे, जो उनके तम्बाकू के खर्च के लिये भी पर्याप्त नहीं था। जालपा उन्हीं की लड़की थी। जालपा को बहुत मानते थे—उसकी रुचि की अनुकूल वस्तुएँ सदैव प्रयाग से लौटते समय ले आते थे। एक दिन जब दीनदयाल बाहर से आये तो जालपा की माँ मानकी के लिये एक चन्द्रहार लाये—मानकी चन्द्रहार पाकर प्रसन्न हो गयी। जालपा ने पिता से उसी प्रकार के चन्द्रहार की माँग की। आश्वासनपूर्ण प्रत्युत्तर न पाकर हार के लिए उसने माँ से माँग पेश की।

मानकी ने कहा—तेरे लिए तो ससुराल से आएगा। जालपा लजाकर भाग गयी। जालपा ने गौर किया, उसकी तीन सहेलियों में, जिनकी शादियाँ हो चुकी थीं—किसी के भी चन्द्रहार नहीं आया था। इसी प्रकार सात वर्ष बीत गये—शादी के दिन समीप आने लगे।



महाशय दीनदयाल के परिचितों में एक महाशय दयानाथ थे—बड़े ही सज्जन और सहृदय। कचहरी के नौकर थे और पचास रुपये वेतन पाते थे। मध्य वर्गीय परिवार—पाँच आदमियों का पालन पोषण—परिवार चलाना मुश्किल था। किन्तु वे रिश्वत के पक्ष में नहीं थे। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि हराम की कमाई हराम में ही जाती है।

रमानाथ उनका लड़का था। रुपये के कमी के कारण उन्होंने उसकी पढ़ाई छुड़वा दी—रमानाथ दो साल से बेकार था, शतरंज खेलता, सैर सपाटे करता, दोस्तों के बदौलत शौक पूरा करता—जीवन में लगन का अभाव था। दीनदयाल इसी नवयुवक से जालपा की शादी करना चाहते थे। दयानाथ इस बोझ के लिए तैयार न थे। किन्तु रमानाथ की माँ—जागेश्वरी के हठ के कारण यह विवाह सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ा। जागेश्वरी बरसों से पुत्र वधू के लिए तड़प रही थी। दयानाथ ने जागेश्वरी से अपनी आर्थिक लाचारियाँ प्रगट कर दीं—किन्तु जागेश्वरी ने कहा—बहू आ जायेगी तो उसकी भी आँखें खुल जायगी। जूआ पड़ा और नशा हिरन हुआ। निकम्मों को राह पर लाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय ही नहीं।



दयानाथ की सज्जनता के कारण मुंशी दीनदयाल प्रभावित हुये और कुल खर्च जो विवाह में एक हजार खर्च करते थे उनको टीके में ही दे आये। मानकी ने जब कहा तो दीनदयाल चिढ़कर बोले—भगवान मालिक है। इधर दयानाथ टीमटाम की योजना एवं शादी की आवश्यकताओं में जुट गये। मगर दयानाथ दिखावे और नुमाइश को चाहे अनावश्यक समझें, पर रमानाथ उसे परमावश्यक समझता था। रमानाथ ने मोटर ठीक किया, आतिशबाजियाँ बनवाईं, नाच ठीक किया। दयानाथ उसको

उच्छृङ्खलता देखकर चिंतित हो जाते थे, पर कुछ कह न सकते थे। क्या कहते ?



बारात आई, तरह-तरह के सजावट एवं आकर्षण के साथ पटाखे, आतिशबाजी, फुलवारियों के तख्ते, मोटर सभी कुछ था। जालपा के लिए इन चीजों में लेशमात्र भी आकर्षण न था। हाँ वह वर को एक आँख देखना चाहती थी। द्वारचार के समय उसकी सखियाँ उसे छत पर खींच कर ले गयीं और उसने रमानाथ को देखा। उसका सारा विराग, सारी उदासीनता मानों छूमन्तर हो गयी थी। द्वारचार समाप्त हुआ। रात को फिर बाजे बजने लगे। सभी लोग मण्डप में इकट्ठे हो गये। मानकी प्यास से बेहाल हो रही थी, कंठ सूख जाता था, चढ़ाव आते ही प्यास भाग गयी। गहने देखे जाने लगे, सभी ने तारीफ की। सहसा किसी ने कहा—चन्द्रहार नहीं है क्या ? मानकी ने कहा नहीं, चन्द्रहार नहीं आया। बेचारी के भाग्य में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है। समपट के पीछे जालपा खड़ी थी। अब मालूम हो गया चन्द्रहार नहीं है, तो उसके कलेजे पर चोट सी लग गयी। वह लालसा जो सात वर्ष हुए उसके हृदय में अंकुरित हुई थी, जो इस समय पुष्प और पल्लव से लदी खड़ी थी, उस पर वज्रपात हो गया। उसने निश्चय किया कि मैं कोई आभूषण न पहनूँगी। वह उसी क्षोभ में भरी बैठी थी कि उसकी तीन सखियाँ आकर खड़ी हो गयीं। एक ने कहा—चढ़ाव ऐसा ही होना चाहिये कि देखनेवाले फड़क उठें। दूसरे ने कहा—और तो सब कुछ है केवल चन्द्रहार नहीं है। पुनः एक सखी ने कहा—एक चन्द्रहार के न होने से क्या होता है बहन उसकी जगह गुलूबंद तो है।

जालपा ने वक्रोक्ति भाव से कहा—हाँ देह में एक आँख के न होने से क्या होता है ! और सब अंग होते ही हैं, आँखें हुई तो क्या, न हुई तो क्या !

तब तक बारातियों के भोजन पर आने का सन्देश लेकर मानकी आ गई। तीनों युवतियाँ चली गयीं। जालपा माता के गले में चन्द्रहार की

शोभा देखकर मन ही मन सोचने लगीं—गहनों से इनका जी अबतक नहीं भरा।



दीनदयाल ने खूब दिया—फिर भी दयानाथ दुःखसाह ही थे। जो कुछ मिला—सारा नाच-तमाशे, नेग में खर्च हो गया। सराफे का तकाजा शुरू हो गया। फिर पाँच कर सब रुपये छः महीने में अदा कर देने का वादा किया। तीसरे दिन चीज लौटा देने का वादा कराके सर्राफ लौटा। दयानाथ दुःखी और चिन्तित हो गये। जागेश्वरी ने जब खाने के लिए कहा तो दयानाथ ने कहा—तुम लोग जाकर खा लो, मुझे भूख नहीं है। गहने लौटाने की बात हो रही थी कि बहू की ओर से चन्द्रहार की माँग हो गई। दयानाथ ने जिन्दगी में बहुत कुछ किया था। जमींदारी खड़ी की थी, बेटी का ब्याह किया था, किन्तु लड़के के ब्याह ने उनको बिल्कुल तोड़ दिया था। सारे व्यर्थ के खर्चे का जिम्मेदार रमानाथ ने दयानाथ को बताया और दयानाथ ने रमा को। दयानाथ ने कहा—बहू से पर्दा रखने की जरूरत नहीं और पर्दा कितने दिन रह सकता है?

जागेश्वरी बोली—उससे तुम्हीं कहो, मुझसे तो न कहा जायगा। जालपा से गहने माँगने की बात आई मगर बहू से गहने माँगे कौन? रमानाथ के सामने कठिनाई थी। उसने जालपा के सामने झूठी और बढ़ाई के पुल बाँधे थे। रमा सोच रहा था कि इससे वह क्या समझेगी। वास्तविकता का प्रकट करना रमानाथ के लिये स्वाभिमान का प्रश्न था। बहुत से उपाय सोचे गये पर कोई रास्ता न निकला। रमानाथ बुरी तरह फँसे थे। वह पछता रहा था कि मैंने क्यों जालपा से डींगें मारी। अब अपने मुँह का सारा भार उसी पर था, उसे इसकी जरा भी शंका न थी कि एक दिन सारा भंडा फूट जायगा। इस समय वह अपने ही बनाये जाल में फँस गया था। कैसे निकले? दयानाथ ने गहना माँगने पर ही जोर दिया। रमानाथ ने कहा—मैं माँग तो नहीं सकता कहिए उठा लाऊँ? दयानाथ ने कहा—नहीं मैं ऐसा न करने दूँगा। मैंने जाल कभी नहीं किया और न कभी करूँगा। रमानाथ ने आवेश में दयानाथ को खूब खरी-खरी सुनायी और वह चुप-

प सुनते रहे। रमानाथ शांति पाने के लिये पुस्तकालय चले गये और नाथ अपने कमरे में पहुँचा। बहुत ही उद्विग्न था।

रात के दस बज गये थे खुली चाँदनी में, छत पर जालपा लेटी हुयी। चाँद को एक टक देखकर, स्वप्न लोक में विचरण करती हुयी जीवन पुरानी स्मृतियों को दुहरा रही थी। सहसा रमानाथ मुस्कराता हुआ या और चारपाई पर बैठ गया। रमानाथ ने अनुराग से उसे फूलों से गया, फूलों के शीतल कोमल स्पर्श से जालपा के कोमल शरीर में गुदगुदी होने लगा। रमा को इस समय अपने कपट व्यवहार के लिये ग्लानि रही थी। उसने सोचा—क्या जालपा से घर की दशा साफ-साफ कह मेरा कर्तव्य न था। उसे अपने ऊपर इतनी घृणा हुई कि एक बार में आया कि सारा कपट व्यवहार खोल दूँ। इस बीच जालपा रमानाथ सौन्दर्य की बखान कर रही थी। जालपा ने बाजार जाने की बात पूछी रमानाथ ने 'नहीं' का उत्तर दिया। जालपा ने चन्द्रहार न लाने की छा पर आरोप करती हुयी बोली कि—यदि तुम नहीं लाते तो तुमसे न पाऊँगी।

रात आधी बीत चुकी थी जालपा निद्रा में मग्न थी रमानाथ चिन्ता न। थोड़े देर बाद वह उठा। कमरे में आकर आलमारी से ने की संदूक लेकर पिता के पास नीचे बरामदे में पहुँचा। घबड़ा उठे। उन्हें उससे ऐसी उम्मीद न थी। उन्होंने डाँटा रमानाथ ने कहा—आप ही का तो हुक्म था। दयानाथ ने इसका कार किया, और घबड़ाहट में उस संदूकची को बड़े संदूक में डाले का आदेश दिया। पुनः रमानाथ जालपा की चारपाई तक लौट । चारपाइ पर रमा के बैठते ही चौंक पड़ी। जालपा घबड़ा कर उठी र कहा—मैं एक दुःस्वप्न देख रही थी जैसे कोई चोर गहने की संदूकची ये लिये जाता हो। रमानाथ घबड़ा उठा और चोर! चोर! चिल्ला । दयानाथ भी चिल्लाये। जालपा कमरे में गयी। आलमारी में दूकची न थी। वह मूर्छित होकर गिर पड़ी।

सबेरे दयानाथ गहने लेकर सराफ के यहाँ पहुँचे। सर्राफ के १५००) ते थ, मगर वह केवल १५००) के गहने लेकर संतुष्ट न हुआ। ५०)

बाकी रह गया। चोरी का हाल गुप्त रहा। पुलिस में खबर जाने पर भंडा फूटने का भय था। जालपा से यही कहा गया कि माल तो मिलेगा नहीं, व्यर्थ का झंझट गले ही होगा।

जालपा का आभूषण-प्रेम स्वाभाविक था। आभूषण की आकांक्षा बचपन की आकांक्षा थी। गाँव और घर में इसके महत्व को इसने खूब सुना था। यही कारण था कि बिसाती से खरीदा गया बचपन का चन्द्रहार इसके पास अब तक सुरक्षित था। महीनों गहने की चिन्ता में चारपाई पर पड़ी रही। पास पड़ोस की पड़ोसिनें समझा कर हार गयीं, दीन दयाल आके समझा गये पर जालपा ने रोग शय्या न छोड़ी। वह रमानाथ की ओर से विशेष उदास थी, जालपा समझती थी कि यह घर मेरी उपेक्षा कर रहा है जब इनके पास इतना धन है, तो फिर मेरे गहने क्यों नहीं बनवाते? वह रमा से खीची रहती और कभी-कभी दो चार भली-कड़ी भी सुना देती रमानाथ अपने में अलग परेशान था। सैर-सपाटे बन्द, सारी मस्ती गायब थी और अब नौकरी की तलाश में ठोकरें खाया करता था। इसी बीच जालपा ने अपने मैके जाने की ठान ली और न पहुँचाने पर खुद चले जाने की धमकी दी। जालपा ने कहा—मुझे घर पहुँचा दो अच्छी लौट आऊँगी। जब तुम्हारी नौकरी लग जाय तो, मुझे बुला लेना। "मद बड़े टोनहे होते हैं"—कह कर जालपा ने अपना जाना स्थगित कर दिया। रमानाथ उठकर कमरे में पत्र लिखने के लिये गया फिर भी वहाँ मन न लगा और किसी ओर बाहर चला गया।

•

रमा के परिचितों में एक रमेश बाबू थे। म्युनिसिपल बोर्ड में क्लर्क थे। अवस्था चालीस के ऊपर थी, बड़े रसिक, विनोद प्रिय व्यक्ति थे। पहली स्त्री मर जाने पर, दूसरा विवाह न किया। शतरंज की बाजी पर जमने में उसे बड़ा आनन्द आता था। वह सिनेमा जाने की तैयारी में थे कि रमानाथ आ पहुँचा। शतरंज की बाजी जम गई खेल प्रारम्भ हुआ। नौकरी की भी बात बीच में होने लगी। रमेश बाबू ने रमानाथ को म्युनिसिपेल्टिी में एक नौकरी पाने का जिक्र किया। रमानाथ तैयार हो गये। रमानाथ मात पर मात खाये जा रहा था और रात दो बजे तासरी बाजी

आरम्भ हुई। रात को रमानाथ घर न लौटा और रमेश बाबू के ही यहाँ सो गया। प्रातः नौ बजे उठा और तैयार होकर रमेश बाबू के साथ आफिस पहुँचा। बातें करते हुए वे लोग आफिस पहुँच गये।

०

रमानाथ को नौकरी मिल गई। आफिस से जब बाहर निकला तो चार बज गये थे। बादल घिर आये थे। रमानाथ के बाहर निकलते ही वर्षा होने लगी। किन्तु पानी में वह रुकना नहीं चाहता था। नौकरी का शुभ समाचार घर देने के लिये लालायित हो उठा। मन में रुपये और बचत की योजनायें बनाता हुआ घर पर पहुँचा। जालपा नौकरी पाने की खबर दी। वह सुन कर बड़ी खुश हुयी किन्तु वेतन सुन कर उसकी प्रसन्नता में थोड़ी रुकावट सी आन पड़ी। रमा ने तीस की जगह वेतन चालीस बताया था। रमानाथ ने ऊपरी आमदनी का भी जिक्र किया। जालपा ने गरीबों से पैसा न लेने और उनका काम यों ही कर देने की सलाह दी। रमानाथ ने कहा—यह पैसा गरीबों से नहीं अमीरों से प्राप्त होगा। जब रमानाथ अपनी मा को यह शुभ समाचार सुनाने जा रहा था तो जालपा ने कहा कि वेतन केवल पन्द्रह कहना, ऊपरी आमदनी की चर्चा न करना। सबसे पहले चन्द्रहार बनवाऊँगी। इतने में डाकिया एक पारसल लेकर आया। इसमें दीन दयाल द्वारा भेजा हुआ चन्द्रहार था। रमा खुश हुआ और हँस कर बोला—ईश्वर ने तुम्हारी सुन ली, चीज तो बहुत अच्छी मालूम होती है। जालपा के ऊपर इसकी प्रतिक्रिया भिन्न हुयी। माता पिता का यह अहसान उसके मन को स्वीकार न हुआ। वह किसी मूल्य पर चन्द्रहार रखने को तैयार न थी और रमानाथ को इसे लौटा देने का आग्रह किया। मां के शोक तथा विदाई के समय ही उसे न पाने का उसके मन में रोष था। रमानाथ चुप रहा। खुला हुआ पारसल फिर सिल गया और रमानाथ उसे लिये हुये चिन्तित भाव से नीचे चला।

०

रमानाथ को नौकरी मिलने पर दयानाथ अधिक प्रसन्न हुये। बोले—जगह तो अच्छी है। ईमानदारी से काम करोगे, तो किसी अच्छे पदपर पहुँच जाओगे। रमा ने अपनी वेशभूषा में परिवर्तन किया। नया सूट

बनवाया और दूसरे दिन पहन कर आफिस पहुँचा। चपरासियों ने झुककर सलाम किये। रमा ने देखा बरामदे में फटी हुई मैली दरी पर एक मियाँ साहब सन्दूक पर रजिस्टर फैलाये बैठे हैं। शोरगुल, सारा काम अव्यवस्थित रूप से हो रहा था। रमा, रमेश बाबू के यहाँ पहुँचा और टेबुल कुर्सी की व्यवस्था करने के लिये कहा। और चपरासियों से कहा कि एक-एक आदमी भेजें। बूढ़े मियाँ एक आने प्रति बिल्टी की वसूली की राय देते हुये चले गये। खाँ साहब के जाने के बाद रमानाथ ने सभी काम सँभाल लिया। उसके कार्य की चारों ओर आलोचना व प्रशंसा होने लगा। रमेश बाबू भी रमा के काम पर मुग्ध हो गये। रमा का प्रभाव और आमदनी बढ़ने लगी। सारे दफ्तर में काम की सराहना होने लगी। जालपा के हृदय में दुःख बना रहा। उसकी अभिलाषा पूरी न हुई। त्यौहार के दिन आते और निकल जाते जालपा कहीं न जाती। इधर तीन महीनों में उसने रमा से एक बार भी आभूषणों की चर्चा न की। गहने की बातें होतीं व रमानाथ का मन भय और उद्विग्नता से भर उठता। जालपा उसकी भीतरी कमजोरी को समझती थी। जालपा ने कहा—मैं उन स्त्रियों में नहीं हूँ, जो गहनों पर जान देती है। हाँ इस तरह किसी के घर आते जाते शर्म आती है। रमानाथ ने सराफ से उधार गहने लेने के लिये रास्ता निकाला। जालपा ने कहा—मेरे लिये कर्ज की जरूरत नहीं। मैं वेश्या नहीं कि तुम्हें नोच खसोट कर अपना रास्ता लूँ। बात ही बात में रमानाथ ने कंगन बनवाने का निर्णय किया। और सोचने लगा कि, जड़ाऊ कंगन इन गोरी-गोरी कलाइयों पर कितने खिलेगें।



दूसरे दिन रमानाथ रमेश बाबू के घर पहुँचा। रमेश बाबू ने जन्माष्टमी के उत्सव की प्रशंसा देते हुये घर का समाचार पूछा। रमानाथ ने कहा आप को मेरे साथ सराफे की ओर चलना होगा। रमेश ने गहनों के बारे में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। आभूषण खरीदने के बारे में रमानाथ ने कर्ज की बात की। रमेश ने कहा—कर्ज की बात बुरी है। जब तक रुपये हाथ में न हों बाजार की तरफ जाओ ही मत। कर्ज से बड़ा पाप दूसरा नहीं है। भविष्य के भरोसे पर और जो चाहे काम करो लेकिन कर्ज

कमी मत हो। हम गरीबों तथा हमारे गरीब हिन्दुस्तान की समस्या की जटिलता भी इन्हीं फैशनों के कारण है। गहने बनवाना बुरी चीज है। बच्चों के पालन पोषण और शिक्षा पर होने वाले व्यय गहना में खर्च होता है। इस प्रथा से हमारा सर्वनाश हुआ जा रहा है।

रमानाथ ने निश्चय किया कि कर्ज नहीं लेगा। रात को ६ बजे घर लौटा। दयानाथ ने देर तक बाहर न रहने और कुछ पढ़ने लिखने की प्रार्थना की। उन्होंने रिश्वत की भी शिकायत की। रमानाथ ने साफ इन्कार कर दिया। दस्तूरी को वह रिश्वत नहीं मानता था। यह कहकर दयानाथ दफ्तर चले गये। दस्तूरी की बात जब रमानाथ ने माँ से कही तो माँ ने इसका समर्थन किया। जब रमा दफ्तर की तैयारी करने लगा तो जालपा ने उसे तीन लिफाफे डाक से छोड़ने के लिये दिये। रास्ते में रमानाथ उन्हें खोलकर पढ़ने लगा। वे पत्र सहेलियों के नाम थे। जिसमें जालपा ने अपने हृदय की वेदना प्रगट की थी। और आभूषण के अभाव में होने वाले मानसिक प्रतिक्रियाओं को समझाया था। रमा ने उन पत्रों को छोड़ा नहीं। उसे जालपा पर क्रोध आ रहा था कि जालपा ने सहेलियों से क्यों दुखड़ा रोया। घर लौटने पर जब जालपा ने पत्र न छोड़ने की बात सुनी तो उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। जालपा ने कहा —अब मुझे पत्र नहीं भेजना है। कुछ ऐसी बातें लिख गई थी जिसे नहीं लिखना चाहिये था। जालपा ने रमा से क्षमा माँगी और कहा मुझसे बड़ा भारी अपराध हुआ मेरी कलम से न जाने कैसे ऐसी बातें निकल गई। रमा ने आज गहने बनवाने का निश्चय कर लिया। सराफे की ओर चला। वह इस मामले को गुप्त रखना चाहता था।



सराफे में गंगू की दूकान मशहूर थी। उसकी दूकान पर नित्य ग्राहकों का मेला लगा रहता था। गंगू ने रमा को इसलिए ही कमी न आने की शिकायत की। रमा ने हार को माँग पेश की। रमा ने तीन सौ नकद गिन कर शेष उधार कर एक कीमती हार ले लिया। गंगू ने बातें बना कर ढाई सौ रुपये का एक शीशफूल भी रमा के सिर मढ़ दिया। साढ़े छः सौ रुपये का बोझ था। किसी प्रकार घर पहुँचा। दिल काँप रहा था कि बाबू जो सुनेंगे

तो नाराज होगें। घर पहुँच कर रमा ने कपड़े बदले, खाना खाया। जब जालपा ऊपर पहुँची तो रमा चारपाई पर लेटा हुआ था। रमा ने कहा आज सराफे के यहाँ जाना व्यर्थ हो गया। हार कहीं तैयार न था। किन्तु जालपा भाँप गई। रमा ने उसे हार और शीशफूल सौंप दिये।

जालपा दोनों आभूषणों को देखकर निहाल हो गई उसने हार गले में पहना और शीशफूल जूड़े में सजाया और हर्षोन्मत्त हो उठी और बोली— तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ, ईश्वर तुम्हारी सारी कामनायें पूरी करे। जालपा को आज पहली बार अपना जीवन सफल जान पड़ा। रमा की आज्ञा लेकर जालपा माँ को हार दिखाने चली गई। उसने रात को सन्दूक भी खोली और पुराने नकली हार को तोड़ डाला और उसके दानों को नीचे गली में फेंक दिया।



उस दिन से जालपा के पति-स्नेह में सेवा भाव का उदय हुआ। प्रतिक्षण उसकी सेवा में तत्पर रहने लगी। सर्राफे में रमानाथ की धाक जम गई थी। यहाँ तक कि दलाल एक दिन उसके घर भी आ पहुँचा। दलाल ने सन्दूकची से दो चीजें निकाली। नये फैशन का जड़ाऊ कंगन और दूसरा कानों का रिंग। रमा की माँ ने कंगन खरीद लिया यद्यपि रमा न चाहता था फिर भी माँ की साध पूरी करने के लिये उसे कंगन उधार लेना पड़ा। किन्तु माँ ने उसे बहू को भेंट करते हुये कहा कि मुझे जो पहिनना था पहिन चुकी। बाहर आकर जब रमा ने दाम पूछा तो मालूम हुआ कि वह साढ़े आठ सौ का था रमा इतना बड़ा बोझ लेने को तैयार न था। परन्तु परिस्थिति ने विवश किया। जालपा खुश थी। रमा चिंतित था। जब जालपा को यह पता चला कि गहने के रुपये रमानाथ को देने हैं तो उसने गहने उतार कर वापस करने को कहा। रमा को तकाजे सहना, लज्जित होना, मुँह छिपाये रहना, चिन्ता की आग में जलना सब कुछ सहन करना मंजूर था। ऐसा काम करना न मंजूर था जिससे जालपा का दिल टूट जाय। प्रेम और परिस्थितियों के संघर्ष में प्रेम ने विजय पाई।

रमा दफ्तर की ओर चला यह इस तरह जा रहा था जैसे कोई अपने प्रिय बन्धु की दाह करके लौट रहा है।

अब जालपा एकान्तवासिनी न थी। उसे घर बैठना अच्छा न लगता। अब ईश्वर की दया से उसके पास गहने हो गये थे। सोचने लगी गहना को सन्दूकची में रखने से क्या फायदा। मुहल्ले या बिरादरी में कहीं से बुलावा आता तो वह सास के साथ अवश्य जाती। कुछ दिनों बाद वह अकेली भी आने-जाने लगी। उसके रूप-लावण्य, वस्त्राभूषण और शील विनय ने मुहल्ले की स्त्रियों में उसे शीघ्र ही सम्मान के पद पर पहुँचा दिया। मुहल्ले की स्त्रियों का नित्य कहीं न कहीं समाज होता। वह मण्डली की रानी होती– उसके आने से मुहल्ले के नारी-जीवन में जान-सी आ गयी। जालपा का स्त्रियों के बीच मलपान, पान पत्ते का खर्च बढ़ गया। रमा आदर्श पति था, जालपा की हर मुराद पूरी करता। जालपा उससे इन जमघटों की रोज चर्चा करती। उसकी स्त्री समाज में कितना आदर-सम्मान है, यह देखकर वह फूला न समाता था। एक दिन जालपा की मंडली ने सिनेमा देखा तो आये दिन सिनेमा की सैर होने लगी। घर के बाहर आने जाने से पर्दा भी खत्म हो गया। जो रमा अपनी माँ को दूसरों के साथ खुलकर बात करने पर बिगड़ता था वही रमा आज जालपा के सम्मुख नतमस्तक था। जालपा रमा के साथ सिनेमा गई। अक्सर सिनेमा और पार्क में जालपा रमा के साथ-साथ घूमने लगी।

दस ही पाँच दिन में जालपा ने नये महिला समाज में रंग जमा लिया। एक महिला का चाय का निमन्त्रण भी मिल गया और जालपा ने इच्छा न रहने पर भी उसे अस्वीकार न कर सकी। जालपा ने निमन्त्रण तो स्वीकार कर लिया पर एक अच्छी साड़ी की आवश्यकता अनुभव हो गई। जालपा के लिये एक घड़ी और जूते की जरूरत थी। गहने वाले को अभी एक पैसा भी नहीं दिया गया था। पार्टी में जाना भी आवश्यक था और उन लोगों को घर पर पार्टी देना। भी रमा समस्याओं के जाल में फँस गया। रमा सोचने लगा यही तो खाने-पहनने और जीवन में आनन्द उठाने के दिन हैं। समय बीत जाने पर ये सब चीजें किस काम की। दूसरे दिन दोनों चीजें ले आया। जालपा ने झुँझला कर कहा—मैंने तो तुमसे कहा था, इन चीजों का काम नहीं—सच बताओ कितने रुपये खर्च हुए ? रमा ने कहा—एक सौ पचीस। जालपा ने कहा ये सब फिजूल खर्च कैसे भरा होगा। रमा ने कहा—इन चीजों को रख लो फिर बिना तुमसे पूछे कुछ न लाऊँगा।

सन्ध्या समय जालपा ने नयी साड़ी, नये जूते पहना और घड़ी कलाई पर बाँधी—आइने में अपनी सूरत देखी मारे गर्व और उल्लास से उसका मुखमण्डल प्रज्वलित हो उठा। आज सुबह काशी के सबसे बड़े वकील परिवार इन्द्रभूषण एडवोकेट के पत्नी के मेहमान थी। रमा और जालपा झावमी की ओर चले। रमा ने यह कभी न सोचा था कि वह इतने बड़े आदमी का मेहमान हो सकता है। रमा ने सोचा था कि बड़ी भीड़-भाड़ होगी पर वहाँ वकील साहब और उनकी पत्नी रतन के अलावा कोई न था। दोनों को देखते ही रतन बरामदे में निकल आई और उनसे हाथ मिलाकर अन्दर ले गई, और अपनी पति से उनका परिचय कराया। रमा ने थोड़ा सा बढ़कर अपने को सँभालते हुये अपना परिचय दिया और महत्व बढ़ाने के लिये जरा-सा झूठ बोलना अनुचित न समझा।

जालपा को सन्देह हो रहा था कि रतन वकील साहब की बेटी है या पत्नी। वकील साहब साठ के लगभग मालूम होते थे। इसके प्रतिकूल रतन साँवली, सुन्दर युवती, बड़ी मिलनसार जिसे गर्व ने छूआ न था। सौन्दर्य के विशेष लक्षण से वह रानी लगती थी। चाय पार्टी शुरू हुई लोगों ने चाय पीये फल खाये—वकील साहब बहुत आग्रह करने पर दो घूँट चाय पीये। जालपा कुछ भी न खा सकी और चाय भी दो ही घूँट पीकर रह गई। जब रतन जालपा को लेकर बगीचे में आ गई तो उसके जान में जान आ गयी। इधर कमरे में रमा और वकील साहब में व्यक्तिगत बातें होने लगी। वकील साहब ने अपने स्वास्थ्य की चर्चा की।

इधर रतन ने जालपा से अपने पतिदेव की चर्चा की। रतन ने कहा—इनकी पहली स्त्री को मरे ३५ वर्ष हो गए। आज ५ वर्ष हुए बेटे का देहान्त हो गया। वकील साहब ने बड़े बेटे की मृत्यु से दुखित होकर सन्तान के लिए शादी की, उन्होंने दवा बहुत की किन्तु उनकी महत्वाकांक्षा पूरी न हो सकी। डाक्टर का कहना है कि मुझे सन्तान नहीं हो सकती लेकिन मुझे सन्तान की आशा नहीं है किन्तु मेरे पतिदेव मेरी दशा देखकर बहुत दुखी रहते हैं। रतन ने कहा कि सचमुच बड़े ही उदार और देवता हैं। रतन ने कहा—आज तुम्हारे आने से जी बहुत खुश हुआ तुम बड़ी या आपपड़ो के लिए रोज चली आया करो बहन। कहो तो मोटर भेज दिया करूँगी। न

जाने तुम्हें छोड़ने का जी नहीं चाहता। रतन ने रमानाथ के भाग्य की सराहना की। इतने में रतन की दृष्टि जालपा के कंगन पर गई रतन ने पूछा—कितने में बने क्या उसके लिए बन सकता है? रमा ने कहा—बन सकता है बनवा दूँगा। रुपये के सम्बन्ध में रमा ने कहा कोई बात नहीं जब चाहे तब दे दीजियेगा। पन्द्रह दिन का वादा तय हुआ बनवाने के लिए। जालपा ने अगले रविवार का निमन्त्रण अपने घर चाय के लिए दिया। रतन ने स्वीकार कर लिया।

रमानाथ जब घर लौटा तो रमेश बाबू बैठे उसका इन्तजार कर रहे थे। रमा ने रमेश से अगले रविवार की पार्टी के सम्बन्ध में बताया। रमेश ने कहा—पार्टी का इन्तजाम ईश्वर ने चाहा तो ऐसा होगा कि मेम साहब खुश हो जायगी। दोनों मित्रों ने पार्टी के लिए आवश्यक सामानों की सूची बनाई और आधुनिकतम सजावट की आवश्यकताओं को पूरा करने की कोशिश की। रमेश की पहुँच अच्छे घरों में थी। सजावट की अच्छी २ चीजें जुट गयीं। सारा घर जगमगा उठा। दयानाथ ने अंग्रेजों के सैकड़ों डूइंग रूम देखे थे। वे भी अपनी राय देने में नहीं चुके। उन्होंने न कहा—हम हिन्दुस्तानी हैं और इसमें हिन्दुस्तानी मत का होना आवश्यक है। वह अंग्रेजों को बड़ा बुरा समझते थे। चाय पार्टी उन्हें बुरी मालूम पड़ती थी किन्तु नये परिचय होंगे उन्हें इस बात का सन्तोष था।

मोटर दरवाजे पर आ लगी रतन बाहर निकली। रमा बाहर पहुँचकर उन्हें लिवा लाया और सबसे परिचय कराया। रतन ने सबको नमस्कार किया। रमा भीतर चलने के लिये कह रहा था कि रतन कंगन के आठ सौ रुपये देने लगी। रमा ने उसकी इमानदारी पर प्रसन्न होकर ६०० रुपये ही लिये। वह फिर कार पर बैठी चली गई। दयानाथ को इस प्रकार रतन का आना, रुपया देना—अच्छा नहीं लगा। दयानाथ के मन में रमा के बारे में भ्रम उत्पन्न हुआ। कमरे में लौटकर रमा जालपा से बोला—अभी तुम्हारी सहेली रतन आयी थी। अच्छा हुआ कमरे के भीतर नहीं आयी। अभी तक तो तैयारी भी नहीं थी। तुमने शायद ८०० रुपये बताये थे मैंने ६०० रुपये लिये। ६०० रुपये स्वीकार कर लेने से जालपा के मन पर आघात पहुँचा। क्योंकि वह झूठी सिद्ध हुई थी। ✓

चाय पार्टी में कोई खास बात न हुई, रतन के साथ उसको एक नाते
की बहन और थी। वकील साहब न आये थे उस समय दयानाथ जी
अनुपस्थित थे। आपसी परिचय हुआ। रमेश बाहर खड़े रहे। पार्टी में
शरीक न हुये जालपा ने दोनों युवतियों को अपनी सास से मिलाया। वे
युवतियाँ माँ को कुछ थोड़ी जान पड़ीं। उनकी नीति में बहू-बेटियों को
भारी व लज्जा शील होना था। दूसरे दिन रमानाथ गंगू के यहाँ गया ६२०)
पिछले हिसाब में जमाकर दिया और कहा एक अच्छा कंगन तैयार कर दो।
गंगू ने कह दिया—'हाँ बन जायगा'। गंगू को सरा रुपया वसूल होने की
आशा न थी। कंगन के लिये रमा तगादे करता और गंगू टाल
टालता रहा। एक महीना गुजर गये कंगन न बने रतन ने कहा कि
जब वह नहीं बनाता तो किसी दूसरे कारीगर को क्यों नहीं देते ? जालपा ने
इसका समर्थन किया। रमा ने कहा—दस दिन रुकिये सब ठीक हो
जायगा, रमा असमन्जस में था उसी दिन शाम को गंगू ने साफ जवाब
दिया-बिना आधे रुपये लिए कंगन न बन सकेंगे। पिछला हिसाब भी बेबाक
हो जाना चाहिए।

रमा निराश होकर घर लौट आया रमा का जालपा से सारा वृत्तान्त सही
सही कह देने का साहस न हुआ रमा ने यदि चाहा होता तो सराफों का
आधा कर्ज चुका दिया होता। किन्तु पैसे सैर सपाटे में खर्च हो गये थे,
रमा को रात भर नींद न आयी वह पश्चाताप कर रहा था कि नाहक गंगू को
रुपये दिये। वह इन्हीं चिन्ताओं में करवट बदल रहा था। जालपा जग गयी
जालपा ने पूछा—अभी तक जाग रहे हो। रमा ने कहा-सोचता हूँ कुछ दिनों
के लिए बाहर चला जाऊँ जालपा ने भी साथ चलने के लिए कहा—रमा ने
कहा—अभी कुछ निश्चय नहीं कर सका हू। तुम्हारे प्रेमपाश हो ने मुझे
बाँध रखा है नहीं तो अब तक कहीं चला गया होता। जालपा ने उदासी का
का कारण प्रेम और विश्वास की बातें करके जाननी चाही पर असफल रहा।
रमा ने कहा कोई बात नहीं अधानक सराफों के रुपये देने के लिए जालपा के
मन में आया रमा ने कहा कि आधे रुपये दिये जा चुके हैं। जालपा ने कहा –
तुमने कहीं रतन के रुपये तो नहीं दे दिये ?

रमानाथ ने सारी बातों को छिपा लिया और किसी भी वास्तविकता का
स्पष्टीकरण जालपा के सम्मुख नहीं की। जालपा को थोड़ी देर में नींद आ

जाने तुम्हें छोड़ने का जी नहीं चाहता। रतन ने रमानाथ के भाग्य की सराहना की। इतने में रतन की दृष्टि जालपा के कंगन पर गई रतन ने पूछा—कितने में बने क्या उसके लिए बन सकता है? रमा ने कहा—बन सकता है बनवा दूँगा। रुपये के सम्बन्ध में रमा ने कहा कोई बात नहीं जब चाहें तब दे दीजिएगा। पन्द्रह दिन का वादा तय हुआ बनवाने के लिए। जालपा ने अगले रविवार का निमन्त्रण अपने घर चाय के लिए दिया। रतन ने स्वीकार कर लिया।

रमानाथ जब घर लौटा तो रमेश बाबू बैठे उसका इन्तजार कर रहे थे। रमा ने रमेश से अगले रविवार की पार्टी के सम्बन्ध में बताया। रमेश ने कहा—पार्टी का इन्तजाम ईश्वर ने चाहा तो ऐसा होगा कि मेम साहब खुश हो जायगी। दोनों मित्रों ने पार्टी के लिए आवश्यक सामानों की सूची बनाई और आधुनिकतम सजावट की आवश्यकताओं को पूरा करने की कोशिश की। रमेश की पहुँच अच्छे घरों में थी। सजावट की अच्छी २ चीजें जुट गयीं। सारा घर जगमगा उठा। दयानाथ ने अंग्रेजों के सैकड़ों ड्राइंग रूम देखे थे। वे भी अपनी राय देने में नहीं चुके। उन्होंने ने कहा—हम हिन्दुस्तानी हैं और इसमें हिन्दुस्तानी मत का होना आवश्यक है। वह अंग्रेजों को बड़ा बुरा समझते थे। चाय पार्टी उन्हें बुरी मालूम पड़ती थी किन्तु नये परिचय होंगे उन्हें इस बात का सन्तोष था।

मोटर दरवाजे पर आ लगी रतन बाहर निकली। रमा बाहर पहुँचकर उन्हें लिवा लाया और सबसे परिचय कराया। रतन ने सबको नमस्कार किया। रमा भीतर चलने के लिये कह रहा था कि रतन कंगन के आठ सौ रुपये देने लगी। रमा ने उसकी ईमानदारी पर प्रसन्न होकर ६०० रुपये ही लिये। वह फिर कार पर बैठी चली गई। दयानाथ को इस प्रकार रतन का आना, रुपया देना—अच्छा नहीं लगा। दयानाथ के मन में रमा के बारे में भ्रम उत्पन्न हुआ। कमरे में लौटकर रमा जालपा से बोला—अभी तुम्हारी सहेली रतन आयी थी। अच्छा हुआ कमरे के भीतर नहीं आयी। अभी तक तो तैयारी भी नहीं थी। तुमने शायद ८०० रुपये बताये थे मैंने ६०० रुपये लिये। ६०० रुपये स्वीकार कर लेने से जालपा के मन पर आघात पहुँचा। क्योंकि वह झूठी सिद्ध हुई थी। ✓

•

चाय पार्टी में कोई खास बात न हुई, रतन के साथ उसको एक नाते की महन और थी। वकील साहब न आये थे उस समय दयानाथ भी अनुपस्थित थे। आपसी परिचय हुआ। रमेश बाहर खड़े रहे। पार्टी में शरीक न हुये जालपा ने दोनों युवतियों को अपनी सास से मिलाया। ये युवतियाँ माँ को कुछ थोड़ी जान पड़ीं। उनकी नीति में बहू-बेटियों को भारी व लज्जा शील होना था। दूसरे दिन रमानाथ गंगू के यहाँ गया ६२०) पिछले हिसाब में जमाकर दिया और कहा एक अच्छा कंगन तैयार कर दो। गंगू ने कह दिया–'हाँ बन जायगा'। गंगू को सस्ता रुपया वसूल होने की आशा न थी। कंगन के लिये रमा तगादे करता और गंगू रोज टालता रहा। एक महीना गुजर गया कंगन न बने रतन ने कहा कि अब वह नहीं बनाता तो किसी दूसरे कारीगर को क्यों नहीं देते ? जालपा ने इसका समर्थन किया। रमा ने कहा—दस दिन रुकिये सब ठीक हो जायगा, रमा असमन्जस में था उसी दिन शाम को गंगू ने साफ जवाब दिया-बिना आधे रुपये लिए कंगन न बन सकेंगे। पिछला हिसाब भी बेबाक हो जाना चाहिए।

रमा निराश होकर घर लौट आया रमा का जालपा से सारा वृत्तान्त सही सही कह देने का साहस न हुआ रमा ने यदि चाहा होता तो सराफों का आधा कर्ज चुका दिया होता। किन्तु पैसे सैर सपाटे में खर्च हो गए थे, रमा को रात भर नींद न आयी वह पश्चाताप कर रहा था कि नाहक गंगू को रुपये दिये। वह इन्हीं चिन्ताओं में करवट बदल रहा था। जालपा जग गयी जालपा ने पूछा—अभी तक जाग रहे हो। रमा ने कहा-सोचता हूँ कुछ दिनों के लिए बाहर चला जाऊँ जालपा ने भी साथ चलने के लिए कहा—रमा ने कहा—अभी कुछ निश्चय नहीं कर सका हूँ। तुम्हारे प्रेमपाश हो ने मुझे बाँध रखा है नहीं तो अब तक कहीं चला गया होता। जालपा ने उदासी का का कारण प्रेम और विश्वास की बातें करके जाननी चाही पर असफल रहा। रमा ने कहा कोइ बात नहीं अचानक सराफों के रुपये देने के लिए जालपा के मन में आया रमा ने कहा कि आधे रुपये दिये जा चुके हैं। जालपा ने कहा – तुमने कहीं रतन के रुपये तो नहीं दे दिये ?

रमानाथ ने सारी बातों को छिपा लिया और किसी भी वास्तविकता का स्पष्टीकरण जालपा के सम्मुख नहीं की। जालपा को थोड़ी देर में नींद आ

गयी, पर रमा उसी उधेड़बुन में पड़ा रहा। प्रातःकाल नाश्ता करके दफ्तर पहुँचा। कई दिनों से मिलान नहीं मिलाया था पर बाबू के हस्ताक्षर मौजूद थे। अब मिलान मिलाया तो रकम ढाई हजार निकली। कुछ इधर-उधर करने के बात सोचा पर साहस न हुआ बल्कि उसे आमदनी अच्छी हो गई थी। आज वह इतना व्यस्त था कि चिराग जलने पर घर गया।

•

नौ दिन गुजर गये रोज दफ्तर से देर से लौटता किन्तु रमा को पहले दिन जैसी आय न हुयी। इन नौ दिनों में उसने सौ रुपये जमा कर लिये। जालपा कहीं घूमने के लिए कहती तो अवकाश नहीं है कह कर टाल जाता आज सोच रहा था कि रतन को कैसे टालूँगा कि रतन याद दिलाने के लिए आ पहुँची रमा ने समझाया अभी कारीगरों का काम है, अभी एक महीने लगेंगे। रतन ने कहा कि मुझे रुपये लौटा दीजिए, मैं ऐसी धाँधली में नहीं पड़ना चाहती। रतन ने कहा—मुझे कल कंगन ला दीजिये या रुपये नहीं तो उसका नाम बता दीजिये मैं उसका पता लगा लूँगी और जेल भिजवा दूँगी।

रमा अप्रतिभ होकर जमीन की ओर ताकने लगा। वह कितनी मनहूस घड़ी थी, जब वह रतन से रुपये लिए और विपत्ति मोल ली। रमा ने कहा—कल रुपये शाम तक मिल जायेंगे कल आप अपने सब रुपये ले जाइएगा। रमा ने दोस्तों से मिलकर रुपये माँगने का आग्रह किया रमा ने जीवन में पहिली बार रुपये माँगे थे। दोस्तों के दो टूक उत्तर मिले माणिक ने तंगी का वहाना किया था और रमेश ने दोस्तों से लेन-देन न करने का नियम बनाये बैठा था। रमा ने पत्र फाड़कर फेंक दिया। एकटक उनकी ओर देख रहा था। मन की एक दशा यह भी होती है जब आँखें खुली होती हैं तब कुछ नहीं सूझता कान खुले रहते हैं पर कुछ नहीं सुनाई देता।

•

संध्या हो गयी थी, म्युनिसिपैलटी के कर्मचारी एक एक करके जा रहे थे। रमानाथ अपनी कुर्सी पर बैठा रजिस्टर लिख रहा था। उसने आज जानबूझकर देर की थी। आज की आमदनी के आठ सौ रुपये उसके पास थे। इसे वह अपने घर से जाकर रतन को देकर उसे आश्वस्त करना चाहता था। खजांची ठीक चार बजे उठा और चला गया। रमा ने चपरासी से

रुपया लाने व जमा करने के लिये कहा। चपरासी तैयार न हुआ। रमा रुपया अपने साथ लेता आया। पर आकर रतन की प्रतीक्षा करता रहा। रतन न आई। वह अस्तव्यस्त होकर घूमने चला गया। उसके जाते ही रतन आ पहुँची। रतन ने क्षुब्ध आवेश में आकर कंगन की बात चलायी। जालपा ने नाराजगी प्रगट करते हुए तथा रुपये खर्च हो जाने का भय दिखाकर रुपये रतन को वापस कर दिये। लौटकर रमा ने जब सारी बातें सुनी तो निस्तेज हो गया। जालपा पर बिगड़ने की भी शक्ति उसमें न रही। रुआँसा होकर नीचे चला गया और स्थिति पर विचार करने लगा। जालपा पर बिगड़ना अन्याय था। जब रमा ने साफ कह दिया कि ये रुपये रतन के हैं, और इसका संकेत तक न किया कि मुझसे पूछे बगैर रतन को रुपये मत देना तो जालपा का कोई अपराध नहीं। उसने सोचा—दस मिनट की अनुपस्थिति ने सारा खेल बिगाड़ दिया। समस्या है रतन से रुपये कैसे वापस लिए जायँ। उस समय साढ़े आठ बज रहे थे। रमा ने साइकिल उठायी और रतन से मिलने चला।

•

रतन के बंगलेपर आज बड़ी बहार थी। बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं, पंखे झूम झूम रहे थे और वकील साहब सिगरेट पी रहे थे। रमा के देखते ही वे उससे बातें करने को उत्सुक हुये। संकोच एवं शिष्टता के कारण रमा रतन की ओर न जा सका। रमा कुर्सी पर बैठ गया। वकील साहब ने अनिवार्य शिक्षा का प्रश्न छेड़ दिया। पाश्चात्य शिक्षा और स्त्री पुरुषों के संबंधों की विवेचना की। विधवा—विवाह के संबंध में प्रचार करने की सलाह दी। किन्तु रमा का ध्यान और मन इन बातों की ओर न था वह रतन से मिलने के लिए व्यग्र हो रहा था। वकील साहब ने कहा कि यदि आपको भी बच्चों से स्नेह हो तो आप भी वहीं जाइए। रमा तो यह चाहता ही था। झट झूले के पास जा पहुँचा। रतन उसे देखकर मुस्करायी और बोली—आइए जरा आप भी बेगार कीजिए। मैं तो इन बच्चों को झुलाते झुलाते थक गयी। रमा झोंके देने लगा। दस बज गये। रमा बातें न कर सका। रमा को बच्चों से नाममात्र को प्रेम न था, केवल इस समय वह फँस गया था। घड़ी में साढ़े नौ बज रहे थे।

रमा शर्म कर बिना बात किये वापस लौटा। सोचने लगा कि संकोच में पड़ कर कैसी बाजी खोयी। अचानक सोचने लगा रुपये अधिक थे कम से कम वैसी रुपये ही वापस मांग लाऊँ। फिर सोचा सुबह जाकर ले आऊँगा, लेकिन इतने रुपये से ही क्या होगा? वह सराफे जा पहुँचा अचानक रास्ते में चरनदास आता हुआ दिखायी दिया रमा को देखते ही बोला—रुपये कब तक मिलेंगे? काफी तकरार हुई। उसकी परवाह किये बिना ही वह घर लौट आया उसने रुपये न देने पर बड़े बाबूजी से कहने की धमकी दी। बाबू जी और जालपा दोनों ही के सामने बात खुलने पर रमा के आत्म गौरव का प्रश्न था। उसकी आँखों से आँसू तो न निकलते थे पर उसका एक एक रोआँ रो रहा था। पश्चात्ताप कर रहा था कि जालपा से अपनी असली हालत छिपा कर उसने कितनी भारी भूल की अब उसे अपने द्वारा किए गए व्यर्थ के खर्च याद आ रहे थे। आदमी जब तक स्वस्थ रहता है उसे यह ख्याल नहीं रहता कि वह क्या खा रहा है। लेकिन जब विकार उत्पन्न होता है तो उसे याद आती है कि कब मैंने पकौड़ियाँ खायी थी। विजय बहिर्मुखी होती है, पराजय अन्तर्मुखी।

जालपा ने देर से लौटने का कारण पूछा तो उसने रतन से अधिक रुपये मांग लाने की बात कही। जालपा ने कहा मुझसे ले लिये होते। जालपा ने कहा मैं दो सौ रुपये देने को कहती हूँ। रमा का चेहरा खिल उठा। कुछ-कुछ आशा बँधी। दो सौ रुपये यह दे, दो सौ रतन से ले लेगा, सौ मेरे पास है—कुल तीन सौ की कमी रह जायगी। बाकी रुपये कहीं से मिलने की आशा न थी। सोच रहा था कि यदि रतन सब रुपये दे दे तो काम बन जाय। जब वह भोजन कर के लेटा तो जालपा ने उदासी का कारण पूछा, वह टाल गया। रमा जालपा से इधर उधर की बातें करके वास्तविकता को छिपा ले गया। वे दोनों सो गये। रात को जालपा ने एक भयंकर स्वप्न देखा, वह चिल्ला पड़ी। जालपा ने कहा स्वप्न देख रही थी कि तुम्हें सिपाही पकड़ लिए जा रहा है। रमा ने भी नींद में बकना शुरु किया। जालपा को अभी तक नींद न आयी थी दोनों की नींद खुल गई। दोनों में प्रेम पूर्ण बातें होने लगी जालपा खुश थी कि उसका पति ही उसकी सहेलियों की पतियों की अपेक्षा सबसे अच्छा है।

रमा का हृदय गद् गद् हो उठा। रमा सोचने लगा कि उसने कितना बड़ा
विश्वासघात किया इतना दुराव रखने पर भी जब इसे मुझसे इतना प्रेम
है, तो अगर निष्कपट होकर रहता तो मेरा जीवन कितना आनन्द में रहता।

०

आज प्रात काल रमा ने सब लिखकर रतन के पास अपना आदमी
भेजा पत्र का उद्देश्य था कि रतन रुपये वापस कर दे। उसकी सारी आशा
रतन के रुपये पर थी, जब आदमी लौटा तो रतन ने दो सौ रुपये दे दिये थे,
मगर खत का जवाब न दिया था। रमानाथ ऊपर था कि नीचे से
आवाज आयी—'बाबूजी, सेठ ने रुपये के लिए भेजा है' दयानाथ ने उसे
डाँट दिया पर जब इन्हें मालूम हुआ कि रमानाथ ने सात सौ रुपये के
गहने उससे लिये हैं तो वे रमानाथ पर बिगड़ पड़े। रमानाथ पिता से छिपाना
चाहता था, रमा सारी दुनियाँ के सामने अलीक बन सकता था किन्तु पिता
के सामने इसके लिए मौत से कम न था। रमानाथ ने कहा—जब गिरह में
रुपये न थे तो चीजें लाये ही क्यों? नालिश कर देगा तो कितनी इज्जत
रह जायगी कोई शादी ब्याह का का अवसर होता तो एक बात भी थी
रमा को पिता की यह फटकार बहुत बुरी लगी निःसंकोच होकर कहा—
आप से रुपये माँगने जाऊँ तो कहिएगा। अपने मन में उसने कहा यह तो
आप की ही करनी का फल है आप ही के पाप का प्रायश्चित कर रहा हूँ,
रमा ऊपर चला गया "कैसे क्या होगा? यह प्रश्न उस के सामने पिशाच
की भाँति घूमता दिखाई देता था। जालपा ने पूछा कि तुम तो कुछ रुपये
दिये जाने की बात कहते थे, रमा प्यारे की झूठ बोलने की बात
कर टाल दिया।

जालपा ने कहा—आदमी सारी दुनियाँ से पर्दा रखता है लेकिन
अपनी स्त्री से पर्दा नहीं रखता तुम मुझसे पर्दा रखते हो। मैं तो भले बुरे
दोनों की ही साथी हूँ। भले तुम चाहे मेरी बात मत पूछो, लेकिन बुरे
तो मैं तुम्हारे गले पड़ूँगी ही।

रमा दफ्तर जाने लगा जालपा ने सराफे को देने के लिए दो सौ रु
दिये। तीन सौ रुपये की कमी थी वह रतन के बंगले तक पहुँचा, र
बरामदे में बैठी थी रमा ने उसे देख कर हाथ उठाया। उसने भी

उठाया। पर उसका सारा संयम टूट गया, ताँगा सामने से निकल गया वह सीधे दफ्तर लौट आया उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह किसी तरफ न न जाकर सीधे रमेश के कमरे में पहुँचा, रमेश बाबू ने पूछा—तुम कहाँ थे, खजानची साहब तुम्हें खोज रहे थे। रमा ने एक टक ताकते हुए कहा—एक बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ उसने बात बना कर रमेश से कहा कि वह रुपये लेकर घर चला गया और जेब से किसी ने तीन सौ रुपये निकाल लिये, रमेश ने कहा—मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता, सच-सच बतला या कहीं अनाप शनाप तो नहीं खर्च कर डाले। रमा ने शाम तक रुपये व्यवस्था करने की बात की। रमेश ने उस दिन का समय देकर छोड़ दिया। रमेश ने कहा—तुम्हें मैं आज छोड़ दे रहा हूँ वर्ना इस वक्त तुम्हारे हाथों में हथकड़ियाँ होती कल दस बजे तक रुपये का इन्तजाम हो जाना चाहिए।

"हथकड़ियाँ" यह शब्द तीर की भाँति रमा की छाती में लगा सिर से पाँव तक काँप उठा।



रमा शाम को दफ्तर से चला उसे रमेश बाबू पर काफी झुँझलाहट आ रही थी। वह पुनः रुपये की आशा में रतन के बंगले पर पहुँचा रतन बैठी एक जौहरी से गहने देख रही थी। रमा को देखकर वह खुश हुई। रमा ने रतन द्वारा पसंद किये गये हार की तारीफ तो की पर कहा कि दाम १२०० सौ ज्यादा है। रतन ने रमा से कहा कि वकील साहब नहीं हैं मैं हार नहीं चाहती हूँ। मेरे पास केवल ६०० रुपये हैं यदि बाकी रुपये मुझे दें तो मैं सुबह दे दूँगी जौहरी मानता नहीं आज ही चला जायगा रमा ने अकेले खाली हाथ होने की बात प्रकट की और संकेत भी कर दिया कि मैं आप से कुछ रुपये प्राप्त करने की आशा से आया था। जौहरी को मनाना चाहा पर उसने लाचारी प्रकट की तब तक वकील साहब आ गये। और उन्होंने बाकी रुपये दे दिये वकील साहब को वृद्धावस्था में एक सहारे की जरूरत थी। रतन उनका सहारा थी वह टूट न जाये इसका वह बराबर ख्याल रखते थे।

रतन का मुख इस समय बसन्त की प्राकृतिक शोभा की भाँति लग रहा

था। ऐसा गर्व, मानों में इस समय संसार की सम्पत्ति मिल गई है। हार को गले में लटकाये वह चली गई। रमा कुछ देर तक बैठा वकील साहब से यूरोप के सम्बन्ध में बातें सुनता रहा अन्त में निराश होकर चल दिया।

०

इस समय संसार में सबसे दुखी और जीवन से निराश कोई युवक था तो वह था रमा यदि इस समय जालपा से सारी बातें कह डालता तो वह अपने गहने देकर उसे बचा सकती थी। शाम को जब वह घर लौटा तो गप शप करते हुये सोचने लगा कि एक बार जैसे सम्मान की रक्षा कर सका है, वैसे ही आज भी कर सकता है। उसने धीरे से जालपा का हाथ अपनी छाती पर से हटाया उसे अब सन्दूके में से ताली का गुच्छा निकालना था अब वह झुका, तब मालूम हुआ कि वह मुस्करा रही है। उसके स्वप्निल संसार की मुस्कराहट लुटने का साहस रमा को न हुआ। उसने सोचा कि यदि पुनः चोरी का धक्का उसे लगा तो वह कितनी खिन्न होगी। मैं भी तो इसे कोई आराम न दे पाया वह चारपाई पर लेट गया जालपा की नींद टूटी तो उसने स्वप्नों की बात कहते पूछा कि तुम कहाँ गये थे। सपने में ही डूबते-डूबते अचानक उनकी नींद खुल गयी थी। देवी की वरदान वाली बात याद आ गयी जिसके लिये वह इतनी परेशान थी। रमा ने पूछा तुम क्या वरदान माँगती! तो जालपा ने कहा—कि मैं तो माँगती कि मेरा स्वामी सदा मुझसे प्रेम करता है उसका मन मुझसे कभी न फिरे।

जालपा इतनी विचार शील है रमा ने अनुमान ही न किया था वह उसे वास्तव में रमणी ही समझता था। विचारों में पड़ा-पड़ा वह सो गया सवेरे जल्दी सोकर उठा रमेश से मिलने की धुन में वह शीघ्र तैयार भी हो गया। जालपा आते हुये रमा के चेहरे पर चिन्ता मय चंचलता और हिंसा को देखकर एक क्षण के लिये बेसुध सी हो गई।

रमा रमेश के घर पहुँचा तो आठ बज गया था सन्ध्या से खाली होकर रमेश ने पूछा—क्या हुआ, रुपये का कुछ प्रबन्ध हुआ? रमेश बाबू ने पिता से कहने को कहा। रमा इस लिये तैयार न हुआ रमा लौट आया और जालपा से पत्र द्वारा समाचार देकर रुपया माँगना चाहा। पत्र लिखकर वह जालपा के पास जाना ही चाहता था कि रमेश बाबू आ पहुँचे। रमेश बाबू

गया। पर उसका सारा संयम टूट गया, ताँगा
से दफ्तर लौट आया उसका चेहरा उतरा हु
आकर सीधे रमेश के कमरे में पहुँचा, रमेश प
खानची साहब तुम्हें खोज रहे थे। रमा ने एक
बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ उसने बात बना कर
लेकर घर चला गया और जेब से किसी ने तीन
रमेश ने कहा—मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं
हा कहीं अनाप-शनाप तो नहीं खर्च कर डाले।
व्यवस्था करने की बात की। रमेश ने उस दिन क
रमेश ने कहा—तुम्हें मैं आज छोड़ दे रहा हूँ ब
में हथकड़ियाँ होंगी कल दस बजे तक रुपये
चाहिए।

"हथकड़ियाँ" यह शब्द तीर की भाँति
सिर से पाँव तक काँप उठा।

•

रमा शाम को दफ्तर से चला उसे रमेश
आ रही थी। वह पुनः रुपये की आशा में रतन
बैठी एक जौहरी से गहने देख रही थी। रमा को
रमा ने रतन द्वारा पसंद किये गये हार की दामो
दाम १२०० सौ ज्यादा हैं। रतन ने रमा से कहा कि
मैं हार नहीं चाहती हूँ। मेरे पास केवल ६०० रुप
मुझे दें तो मैं सुबह दे दूँगी जौहरी मानता नहीं
रमा ने अपेले खाली हाथ होने की बात प्रकट
दिया कि मैं आप से कुछ रुपये प्राप्त करने की आशा
को मनाना चाहा पर उसने व्यापारी प्रगट की स
गये। और उन्होंने बाकी रुपये दे दिये वकील साहब
सहारे की जरूरत थी। रतन उनका सहारा थी यह
बराबर ख्याल रखते थे।

रतन का सुख इस समय बसन्त की प्राकृतिक शो

चल दिये। उसकी स्त्री अभी तक जीवित थी। अचानक उस बूढ़े खटीक ने बुढ़िया के गहने की शौक की चर्चा की खटीक ने पूछा कलकत्ते में क्या काम करते हो भैया? रमा नाथ ने कहा कि अभी मैं घूमने आ रहा हूँ। बुड्ढे ने उसे अपने ही यहाँ रहने को कहा अपने बारे में सोचने लगा अब तक जीते हैं सब कुछ है मरने पर न जाने कौन सब लेगा? फिर हँस पड़ा। वह बहुत ही प्रसन्न चित्त था। किसी जवान को यों रमा ने हँसते न देखा था। अचानक बुड्ढे ने रमा नाथ के घर से भाग आने की बातें की और कारण बताया कि घर में बहू से गहने के लिये झगड़ा हुआ होगा। रमा देवीदीन की बातों पर "हाँ जी" भरता जाता था। रमा तीन दिन से सो नहीं पाया था उसे नींद आ रही थी बुड्ढे ने बिस्तर लगाकर उसे सुला दिया, रमा लेट रहा। देवीदीन बार बार उसे स्नेह भरी आँखों से देखता था। मानो उसका पुत्र कहीं परदेश से लौटा हो।

०

जब रमा कोठे से नीचे उतर रहा था। उस समय जालपा को जरा भी शंका न हुयी कि यह घर से भागा जा रहा था। उसे इसपर क्रोध आ रहा था कि उसने पर्दा क्यों किया? क्यों मुझसे बढ़-चढ़ कर बातें की अचानक गहनों के लिये सरकारी रुपये खर्च होने का ख्याल आते ही उसका हृदय व्यथित हो उठा। वह उसके कमरे में गयी बाहर देखा, कहीं भी रमानाथ के दर्शन न हुये। उसके हृदय में एक अज्ञात संशय अंकुरित हुआ। गले का हार और हाथ का कंगन रूमाल में बाँध कर चुंगी कचहरी चल पड़ी। दफ्तर में पहुँची वहाँ बहुत से आदमी थे। किससे पूछे? एक चपरासी की सहायता से रमेश बाबू से मिल सकी। सारी बात सुनकर जालपा रुपये पहुँचाने का वादा करके सर्राफे में आयी। आठ सौ का हार चार सौ में बेचना पड़ा। जिस हार को उसने इतने प्रेम से बनवाया था उसे आज आधे दामपर बेचकर उसे तनिक भी दुःख न हुआ। रुपये लेकर वह दफ्तर पहुँची रमेश बाबू की ओर नोटों का पुलिन्दा बढ़ा दिया। वे गिनकर बोले कि ठीक है। जालपा की सोच देखकर वे खुश हो गये। प्रसन्न मन जालपा इस आशा में घर पहुँची तो रमानाथ का पता न था। शाम आयी। रात आयी। पर रमानाथ का पता न चला। शाम को जालपा का जी घबड़ाने लगा था। वह फिर

ने रुपये की चेतावनी देकर खाली हाथ न आने को कहा। रमा जालपा को पत्र देने घर में गया जालपा कहीं जाने के लिये सिंगार कर रही थी। रमा को पत्र देने का साहस न हुआ जालपा नीचे जाने लगी तो रमा ने कातर होकर उसे गले लगा लिया। सहसा जालपा बोली कुछ रुपये दे दो। रमा ने कहा इस वक्त तो नहीं है। जालपा ने झूठ बोलने का आरोप लगाते हुये उसकी जेब में हाथ दिया और कुछ पैसों के साथ वही पत्र हाथ लगा। रमा ने छीनना चाहा सरकारी कागज होने का बहाना किया पर जालपा ने बिना पढ़े वापस करने से इनकार कर दिया। फिर रमा ने कागज छीनने की चेष्टा न की। सारा भेद खुलने से आतंकित होकर वह नीचे भागा। वह सोच रहा था कि दुनिया मेरे बारे में क्या सोचेगी? जालपा उसे कितना नीच कपटी धूर्त या गपोड़िया समझेगी। गिरफ्तारी, हथकड़ियों, और वर्दियां तथा सिपाहियों के भय ने उसे दबा लिया। आत्महत्या करने को सोचा कि अचानक जालपा के अनाथ होने का विचार उसके मन में आया। अज्ञात वास करने भाव प्रबल हो उठा। इन सब बातों को सोचते घर से काफी दूर निकल आया था। रेल की सीटी सुनकर वह चौंक पड़ा। रेलगाड़ी सामने खड़ी थी। सोचा उसमें बैठते ही सारी बाधाओं से मुक्त हो जायगा। जेब खाली था, उंगली में अँगूठी पड़ी हुई थी। उसने कुलियों के जमादार को बुलाकर अँगूठी बेचने की बात कही दस मिनट बीत गये जमादार वापस न आया। गाड़ी छूट रही थी। बिना टिकट लिये ही गाड़ी में आ पहुँचा। गाड़ी चल दी अगले स्टेशन पर पर टिकट का बाबू डिब्बे में आया रमा के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। टिकट माँगने पर उसने कहा कि अभी मैं मैंने जमादार को टिकट लाने को कहा पर वह लौटा नहीं मेरे पास और पैसे नहीं हैं। डब्बे में बैठा देहाती मजदूर समाज रमा को इस दुर्दशा पर मन ही मन खुश हो रहा था। टिकट बाबू ने किसी प्रकार की सहायता करने से इनकार कर दिया और कहा कि अगले स्टेशन पर उतरना पड़ेगा। डब्बे में बैठे एक बुड्ढे को दया आ गयी उस बुड्ढे ने दस रुपये दे दिये।

उसका नाम देवीदीन था। और जाति का खटिक था। बद्रीनाथ की यात्रा करके वह कलकत्ता लौट रहा था। रहने वाला बिहार का था लेकिन उसकी दूकान कलकत्ते में थी। उसके चार बेटे थे दो का ब्याह हो गया था, सब

चल दिये। उसकी स्त्री अभी तक जीवित थी। अचानक उस बूढ़े खटीक ने बुढ़िया के गहने के शौक की चर्चा की खटीक ने पूछा कलकत्ते में क्या काम करते हो भैया? रमा नाथ ने कहा कि अभी मैं घूमने आ रहा हूँ। बुड्ढे ने उसे अपने ही यहाँ रहने को कहा अपने बारे में सोचने लगा जब तक जीते हैं सब कुछ है मरने पर न जाने कौन सब लेगा? फिर हँस पड़ा। वह बहुत ही प्रसन्न चित्त था। किसी जवान को यों रमा ने हँसते न देखा था। अचानक बूढ़े ने रमा नाथ के घर से भाग आने की बातों को और कारण बताया कि घर में बहू से गहने के लिये झगड़ा हुआ होगा। रमा देवीदीन की बातों पर "हूँमो" भरता जाता था। रमा तीन दिन से सो नहीं पाया था उसे नींद आ रही थी बुड्ढे ने बिस्तर लगाकर उसे सुला दिया, रमा लेट रहा। देवीदीन बार बार उसे स्नेह भरी आँखों से देखता था। मानो उसका पुत्र कहीं परदेश से लौटा हो।

०

जब रमा कोठे से नीचे उतर रहा था। उस समय जालपा को जरा भी शंका न हुयी कि वह घर से भागा जा रहा था। उसे इसपर क्रोध आ रहा था कि उसने पर्दा क्यों किया? क्यों मुझसे बढ़-बढ़ कर बातें की अचानक गहनों के लिये सरकारी रुपये खर्च होने का ख्याल आते ही उसका हृदय द्रवित हो उठा। वह उसके कमरे में गयी बाहर देखा, कहीं भी रमानाथ के निशान न हुये। उसके हृदय में एक अज्ञात संशय अंकुरित हुआ। गले का हार और हाथ का कंगन रूमाल में बाँध कर चुंगी कचहरी चल पड़ी। दफ्तर में पहुँची यहाँ बहुत से आदमी थे। किससे पूछे? एक चपरासी की सहायता से रमेश बाबू से मिल सकी। सारी बात सुनकर जालपा रुपये पहुँचाने का वादा करके सराफे में आयी। आठ सौ का हार चार सौ में बेचना पड़ा। जिस हार को उसने इतने प्रेम से बनवाया था उसे आज आधे दामपर बेचकर उसे तनिक भी दुख न हुआ। रुपये लेकर वह दफ्तर पहुँची रमेश बाबू की ओर नोटों का पुलिन्दा बढ़ा दिया। वे गिनकर बोले कि ठीक है। जालपा की चाल देखकर वे खुश हो गये। प्रसन्न मन जालपा इस आशा में घर पहुँचा तो रमानाथ का पता न था। शाम आयी। रात आयी। पर रमानाथ का पता न चला। शाम को जालपा का जी घबड़ाने लगा था। वह फिर

ाने लगी कि उसका पत्र पढ़ते ही उसने क्यों न हार निकाल कर दे दिया ?
रे शर्म के मारे घर न आते हों। जालपा ने उन सभी पार्कों को छान
ा, जहाँ रमा के साथ बहुधा घूमने आया करती थी। नौ बजते-बजते वह
ारा होकर लौट आयी। उसने सोचा उसी की सब करनी का फल है।
और जालपा ने रात को खाना नहीं खाया। माँ लेट गयी पर जालपा
ी तरह बैठी रही। सारी रात गुजर गई—पहाड़ सी रात जिसका एक-एक
न एक एक वर्ष के समान कट रहा था।

•

एक सप्ताह बीत गया पर रमानाथ का पता न लगा। कोई कुछ कहता
कोई कुछ। केवल इतना ही पता चला कि ग्यारह बजे वह रेलवे स्टेशन की
ओर गये थे। मुन्शी दयानाथ ने सोचा कि रमा ने आत्म हत्या करली।
ये सारा दोष जालपा के सिर मढ़ते। जालपा पर किसी को दया न आती।
कोई उसके आँसू न पूछता। केवल रमेश बाबू उसके सद्बुद्धि की प्रशंसा
करते। तकाजों से दयानाथ परेशान हो उठे। उदासी का कारण पूछनेपर
बिगड़ उठे। जालपा ने कहा कि आप महाजनों को मेरे पास भेज दीजिये।
या तो मैं उन्हें मना लूँगी या उन्हें रुपये दे दूँगी। वह कंगन निकालकर
वापस देने जा रही थी कि रतन आ पहुँची। उसने वैसा ही कंगन खरीदने की
इच्छा पुनः पेश की। जालपा उसे ही बेचने को राजी हो गयी।
जालपा ने कंगन की डिबिया उसे देने के लिये निकाली तो उसका दिल
मसोस उठा। रतन ने चार सौ रुपये तुरन्त दे दिये। रतन जालपा को टहलने
के लिये लिया जाना चाहती थी पर जालपा ने इन्कार कर दिया। रतन चली
गई। कंगन भी छोड़ कर गयी थी। जालपा ने महाजन को भिजवाने के
लिये पाँच सौ रुपये दयानाथ को दिये। जब उन्होंने पूछा कि रुपये कहाँ से
आये तो उसने कहा कि मैंने कंगन रतन के हाथ बेच दिये। यह सुनकर
वे अवाक हो गये। रतन ने रमा के चरित्रपर सन्देह प्रगट किया—जालपा
ने इसे स्वीकार नहीं किया। जालपा ने भी वकील साहब के संबन्ध में बहुत
से प्रश्न किये।

•

एक महीना गुजर गया। प्रयाग के मान्य दैनिक पत्र में, रमानाथ को
लौट आने की नोटिस निकल रही है। पता लगाने वाले को पाँच सौ का

इनाम भी है, पर रमा का अभी तक पता न चला। जालपा दिनोंदिन चिंता और दुःख से घुली जाती। दीनदयाल की बेटी को विदाने आये। जालपा ने जाने से इन्कार कर दिया। दीनदयाल ने सुनी अफवाहों के बारे में पूछा तो जालपा ने कहा कि सब झूठ है। दयानाथ और जागेश्वरी ने जाने के लिये जालपा को बहुत समझाया पर वह किसी तरह से राजी न हुई। जालपा ने कहा – क्या वहाँ कोई दूसरी दुनिया है? और फिर मैं रोने से क्यों डरूँ? जब हँसना था, तब हँसती थी, अब रोना है तब रोऊँगी। दीनदयाल समझ गये कि वह अभिमानिनी है और अपना टेक न छोड़ेगी। चलते समय दीनदयाल ने उसे पचास रुपये का नोट देना चाहा पर वह न ली। वे चारपाई पर रखकर बाहर चले गये। उसकी आँखों में आँसू थे।

क्वार का महीना लग चुका था। मेघ के लघुतुल्य टुकड़े कभी-कभी आकाश में दौड़ते नजर आ जाते थे। जालपा छत पर बैठे उन मेघ खण्डों को देख रही थी। जालपा सोचती रमानाथ भी कहीं बैठे यही मेघ क्रीड़ा देखते होंगे। इस कल्पना में उसे विचित्र आनन्द मिलता। जालपा को अब यह शंका होती थी, ईश्वर ने मेरे पापों का दण्ड दिया है। रमानाथ दूसरों का गला दबा कर ही तो रुपये लेते थे। शृंगार को देखकर अब उसका जी जलता था। यही सारे दुःखों का मूल हैं। इन्हीं के लिये तो उसके पति को विदेश जाना पड़ा।

आखिर एक दिन उसने इन सब चीजों को जमा किया। मखमली स्लीपरें रेशमी मोजे तरह-तरह की बेलें, फीतें, कंघी आदि। सब को इकट्ठा करके बाँधी। वह सोच रही थी की इसको गंगा जी में डुबा देगी और एक नये जीवन का सूत्रपात करेगी। वह सोच रही थी यदि वह लौट आये तो कभी भी मिथ्या सत्य की उपासना न करूँगी। थोड़े में निर्वाह करूँगा, एक पैसा व्यर्थ न खर्च करूँगी, मजदूरी के अतिरिक्त एक कौड़ी भी घर में न आने दूँगी। सुबह चार बजे उठकर गंगा स्नान करने चली। पैदल ही चल पड़ी। यह भी भय लगा हुआ था कि कोई देख न ले लम्बा घूँघट निकाल लिया था कि कोई पहचान न सके। पर घाट पहुँचते-पहुँचते सबेरा हो चला था। सहसा गंगा स्नान करके मोटर से लौटती हुई रतन दिखाई दी। उसने मुँह फेरकर अपने को छिपाना

चाहा पर रतन ने पहचान लिया मोटर रोक कर साथ चलने को कहा। जब जालपा न मानी तो रतन ने उसका बेग ले लिया और मोटर में आ बैठी। बेग में ताला न लगा था। रतन ने खोलकर देखा, तो विस्मित हो उठी। रतन ने इनके लाने का कारण पूछा। जालपा ने दृढ़ता से कहा—मैं इन चीजों को गंगा में बहा दूँगी। यह रतन को कारण न बताना चाहती थी किन्तु रतन के दबाव के कारण उसने कहा ये चीजें उसके सर्वनाश का कारण हैं। इन्हें देख-देखकर मुझे दुःख होता है। जब देखने वाला ही न रहा तो इन्हें रखकर क्या करूँगी। जब तक ये चीजें मेरी आँखों से दूर न हो जायेंगी मेरा चित्त शान्त न होगा। यह मेरी विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है। रतन ने जालपा की कठोरता की निन्दा करते हुये बहुत समझाया पर जालपा न मानी। इस बीच की बातों से जालपा को यह जाहिर हुआ कि कपट पहले उसकी ओर से हुआ। गंगा तट आ पहुँचा। कार रुक गई। जालपा जब बेग को ले जाने लगी तो रतन ने रोका, पर जालपा न मानी। जालपा ने बेग उठा लिया और घाट के नीचे पहुँच कर उसे पानी में फेंक दिया। आज उसे जितना गर्व और आनन्द हुआ इतना इन चीजों को पाकर भी न हुआ था। लौटने पर रतन ने कहा तुम बड़ी निष्ठुर हो। जालपा ने कहा—यही निष्ठुरता मनपर विजय पाती है। अगर कुछ दिन पहले निष्ठुर हो जाती तो यह दिन क्यों आता।



रमानाथ को कलकत्ते आये दो महीने से ऊपर हो गये हैं। हमेशा उसे रुपये की चिन्ता घेरे रहती। भाँति भाँति की कल्पनायें करता पर घर के बाहर नहीं निकलता। अँधेरा होने पर मुहल्ले के वाचनालय में जरूर जाता। पत्र में उसने नोटिस देखी जो दयानाथ ने पत्र में छपवाया था पर उसको विश्वास न हुआ। उसी पत्र में रमानाथ को जालपा का एक छपा पत्र मिला। रमानाथ का मन चंचल हो उठा। लेकिन तुरन्त ही ख्याल आया कि यह पुलिस की शरारत होगी। जालपा का ही पत्र है इसका कोई प्रमाण उसके पास न था। लौटने पर उसे बदनामी का भय था। वह कम से कम पाँच हजार रुपये लेकर घर लौटना चाहता था। देवीदीन के मकान में दो कोठरियाँ और एक बरामदा था। बरामदे में ही दुकान थी। रात को दुकान उठाने के

बाद वही बरामदा शयनगृह बन जाता था। रमा ऊपरी हिस्से में रहता था। देवीदीन का काम चिलम पीना और दिनभर गप्पें लड़ाना था। वह बैठा-बैठा रामायण और तोता मैना के किस्से सुनाता और लतीफ छोड़ता। दूकान का सारा काम बुढ़िया करती। रमा के पहुँचने पर देवीदीन ने उससे अंग्रेजी पढ़ना शुरू कर दिया। रमा उसे बहुत प्रिय था पर जग्गो को रमानाथ अच्छा न लगता था पर उसकी धर्मनिष्ठता देखकर उसे कुछ कहती भी न थी। रमानाथ धर्मनिष्ठ ब्राह्मण बनकर उनका श्रद्धापात्र बन गया था। बुढ़िया के भाव और व्यवहार को खूब समझता था। परिस्थितियों ने उसके आत्म सम्मान का अपहरण कर लिया था।

एक दिन रमानाथ वाचनालय में पत्र पढ़ रहा था कि उसे रतन दिखाई पड़ी। रमा की छाती धक-धक करने लगी। वह आँख बचाकर बाहर निकल पड़ा। रतन से मिलने और घर का समाचार पूछने के लिये उसकी आत्मा तड़प रही थी पर मारे संकोच के सामने न आसका। जब मोटर चल दी तब उसकी जान में जान आई। उस दिन से एक सप्ताह से वह घर से न निकला। कभी-कभी चिन्तित होकर सोचता कि उसे पुलिस से सारी बातों को सच-सच बता देना चाहिये। जो कुछ होना है, हो जाय। लेकिन एक क्षण में हिम्मत टूट जाती।

इस प्रकार दो महीने बीत गये। पूस का महीना आया। रमा के पास जाड़े का कोई कपड़ा न था। रात भर किस प्रकार बिताता। रात को बार-बार खिड़की की ओर देखता कि सबेरा होने में कितनी कसर है। कम्बल के अभाव में उसे रात गुजारनी पड़ती। एक दिन शाम को वाचनालय में जा रहा था, देखा कि सेठ जी बँगले के सामने कंगलों को कम्बल दान दे रहे हैं। रमा के मन में आया एक कम्बल ले लूँ। यहाँ मुझे कौन जानता है। वह कुछ देर वहाँ खड़ा ताकता रहा फिर आगे बढ़ा। रमा के माथे पर तिलक देखकर मुनीम ने उसे ब्राह्मण समझा। बोला—पंडित जी कहाँ चले, कम्बल तो लेते जाइये। रमा ने जान छुड़ाना चाहा, इन्कार किया किन्तु मुनीम उसे कोठी में ले गया और एक कम्बल भेंट की। नौ बजे रात घर लौटा। सोच रहा था कि देवीदीन यदि कम्बल के बारे में पूछेगा तो वह क्या जवाब देगा। देवीदीन ने कम्बल देखते ही पूछा—सेठ करोड़ीमल

के यहाँ गये थे क्या महाराज ? देवीदीन ने कहा वे धर्मात्मा नहीं हैं उसे पापी कहना चाहिये। उसकी लूट की मिल है। मजदूरों के साथ जितनी निर्दयता इसके मिल में होती है और कहीं नहीं होती है। कोई नौकर एक मिनट की भी देरी करे तो तुरन्त तलब काट लेता है। अगर साल में दो चार हजार दान न करे तो पाप का धन कैसे पचे। रात को रमा कम्बल ओढ़कर लेटा तो उसे बड़ी ग्लानि हुई। रिश्वत के रुपये पर कभी भी उसे ग्लानि न आई थी। दान की पौरुष हीनता इस पाखंडियों का आचार सोचकर चिन्तित हो उठा। रह रह कर पुलिस से सारी रिपोर्ट कह देने की बातें उसके मन में आती। रमा ने निश्चय किया, कि कल निर्भीक होकर काम की खोज में निकलूँगा।

अभी रमा मुँह हाथ धो रहा था कि देवीदीन अखबार लेकर आ पहुँचा। उसने कहा कि प्रयाग की बड़ी विकट है। जब देवीदीन ने घर चिट्ठी भेजने के बारे में पूछा तो रमा ने कहा जब तक वह कहीं लग नहीं जायगा घर पत्र न लिखेगा। देवीदीन ने चिट्ठी भेजने पर जोर दिया। देवीदीन की सहानुभूति पाकर रमा बोला—मैं घर से भाग आया हूँ दादा। देवीदीन ने रमा के चेहरे को देखकर भाँप लिया। वह बोल उठा कि सरकारी रुपये तो नहीं गबन कर दिये हैं। प्रेम बड़ा विचित्र होता है। बड़े-बड़े इसमें चूक जाते हैं। गबन के हजारों मुकदमें होते हैं जिनका मूल कारण होता है गहना। देवीदीन ने सरकारी डाकखाने से रुपया गबन करने और तीन बरस तक जेल की सजा काटने का निजी अनुभव बताया। देवीदीन ने घर खत लिखकर भिजवाने को कहा। रमा ने इन्कार कर दिया। रमा ने देवीदीन के सम्मुख सारी कठिनाइ कह सुनाई। देवीदीन चिन्ता में डूब गया। देवीदीन ने कहा कि भैया, कहो, तो मैं तुम्हारे घर चला जाऊँ और तुम्हारे घर वालों को समझाऊँ। रमा की आँख मनोल्लास से चमक उठी। लगा सोचने कि जालपा देवीदीन से किस प्रकार के प्रश्न करेगी। यह कह देगी कि दादा ने सब रुपये चुका दिये हैं तो मजा आ जायगा। देवीदीन ने राह माँगी। रमा ने परेशानी का ख्याल करके मना किया पर देवीदीन तैयार हो गया। उसने रमा से भी चलने को कहा। पहले रमा ने अनाकानी की, कपड़ों की शिकायत की। देवीदीन कपड़े बनवाने को तैयार हो गया। पर रमा किसी भी शर्त पर जाने को तैयार न हुआ। देवीदीन बाजार चला गया। देवीदीन

मन

के चले जाने के बाद रमा बड़ी देर तक आनन्द कल्पनाओं में मग्न बैठा रहा। कल्पना सागर में स्वच्छन्द रूप से क्रीड़ा करने लगा। देवीदीन जब लौटा तो रमा छत पर टहल रहा था। देवीदीन ने पूछा कि क्या खाना नहीं बनाओगे? रमा बोला जल्दी ही क्या है। देवीदीन द्वारा लाये गये कीमती कपड़ों देखकर वह विस्मित हो गया। पाँच छ रुपये गज से कोई कपड़ा कम न था। रमा बोला—इतने महँगे कपड़े क्यों लाये, दादा? देवीदीन ने कहा कि देशी कपड़ों में कुछ बेसी रुपया लगा जाता है, पर रुपया तो देश ही में रह जाता है। देवीदीन बोला—जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्न जल खाते हैं, उसके लिये इतना भी न करें तो जीने का अधिकार नहीं। देवीदीन ने कहा कि इसी स्वदेशी प्रेम पर उसके बेटे निछावर हो गये। देवीदीन शहीदों की शान से बोला—इन बड़े-बड़े आदमियों के किये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है। बड़े-बड़े देश भक्तों को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता। दिखाने के लिये गाढ़े के कुर्ते और घर का सब सामान विलायती। इन्हें क्या मालूम कि गरीब किसान को एक समय सूखा चबेना भी नहीं मिलता। बाबूओं की हालत यह है कि वे बड़ी-बड़ी तलब लेगें, ओहदे के लिये लड़ाई करेगें। यह नहीं समझते कि यह सब गरीबों का शोषण करके लिया जाता है। जब स्वराज्य हो जायगा, तब इनका क्या होगा। रमा भद्र समाज पर यह आक्षेप न सुन सका। आखिर वह भी तो भद्र समाज का ही एक अंग था। रमा ने कहा—ऐसी बातें नहीं हैं। अब तो सभी काम बहुमत से होगा। अगर बहुमत कहेगा कि कर्मचारियों को वेतन कम दिये जाय तो घटा दिये जायेंगे। पूँजी बहुमत के हाथ में रहेगी। अभी दस-पाँच वर्ष न हो, लेकिन आगे चलकर बहुमत किसानों और मजदूरों का ही हो जायगा। देवीदीन की इच्छा कुछ और दिन जीकर अपना राज्य देखने के लिये प्रबल हो उठी। देवीदीन ने उससे नीचे चलने को कहा तो वह घबड़ा उठा। बोला कौन सा मुँह लेकर घर आऊँ। यह कह कर वह रोने लगा।

•

कुछ दिनों बाद जब रमा आठ बजे पुस्तकालय से लौटा रहा था। तो उसे देखा कुछ नवयुवक किसी शतरंज के नक्शे पर विचार कर रहे थे। इन

जालपा को पति के लौट आने की आशा थी। उसकी आशाओं का सूर्य फिर उदय होगा और उसकी इच्छायें फिर फूलेंगी। जालपा ने कहा पत्रों के जवाब देते रहना।

०

कलकत्ते में वकील साहब ने ठहरने का पहले ही इन्तज़ाम कर लिया था। शहर के बाहर एक बँगला था हाते में तरह-तरह के फूल पौधे लगे हुए थे। शहर से लोग हवाख़ोरी के लिए आया करते थे। पर रतन को यह जगह, काटे खाती थी, बीमार के साथ वाले भी बीमार हो जाते हैं। उदासों के लिए स्वर्ग भी उदास है।

सफ़र ने वकील साहब को और शिथिल कर दिया था दो तीन दिन बाद कुछ और सँभलने लगे। रतन भी जान से सेवा टहल करती और अपना सुख भुला दिया था। वकील साहब भी अपना दर्द छिपाते थे। उसके सामने कराहते न थे। अरुचि होने पर भी भोजन कर लेते रतन समझती अच्छे हो रहे हैं वैद्य जी भी अपने उपचार की सफलता पर प्रसन्न थे। एक दिन वकील साहब ने रतन को बाहर घूम आने को कहा, रतन ने कहा—कहाँ जाऊँगी, कहीं जाने को जी नहीं चाहता मुझे यहाँ सबसे अच्छा लगता है। वकील साहब को एकाएक रमानाथ का ख्याल आ गया उन्होंने रतन से पता लगाने को कहा रतन तैयार हो गयी क्योंकि उसने जालपा से वादा किया था। रतन को वकील साहब का अंदेशा बना रहता उनकी चेष्टा और लक्षण से कुछ न दिखाई देता था क्योंकि चेहरा दिनों दिन पीला हो जाता और आँखें मन्द रहती।

रतन के जाने के बाद वकील साहब ने चाय माँगी। डाक्टर ने चाय मना कर दिया था पर अब वह जीवन से निराश हो गए थे। जब नौकर चाय लेकर पहुँचा तो कुपित नेत्रों से बोले ले जाओ उन्हें मालूम होगा तो दुखी होगी। वकील साहब को अपनी दशा का ज्ञान हो चुका था। उन्होंने रतन के आने के पूर्व किसी वकील को बुलवाना चाहा कि मोटर का हार्न सुनाई दिया। रतन आ गयी। वकील साहब के पूछने पर रतन ने कहा कि रमा का कहीं पता न चला रतन ने उन्हें दवा पिलाया इस समय वह न जाने क्यों *भयभीत सी हो रही थी।* एक अस्पष्ट, अज्ञात, शंका उसके हृदय को दबाये हुए थी। किसी से तार देने के लिए कहा, वकील साहब ने

न

मना कर दिया। फिर अपनी वसीयत लिखवाने के लिए कहा—यह सुनकर
रतन शून्य हो गयी। मानों नीचे से धरती निकल गयी हो और ऊपर से
आकाश निकल गया हो और अब वह निराधार निस्पन्द निर्जीव-सही
है। इस समय रतन अधीर हो रही थी। अपनों की बातें उसे याद आ
रही थी। भावी आशंका से चिल्ला-चिल्ला कर रोने के लिए उसका मन
विकल हो उठा।

रतन आशपा को पत्र लिखने बैठी—"बहन, नहीं कह सकती, क्या होने
वाला है बाबूजी अब तक अपनी दशा छिपाते थे। पर आज यह बात उनके
काबू से बाहर हो गई। आज वसीयत लिखाने की चर्चा कर रहे थे। मर
जाने को जी चाहता है। विधाता बहुत निर्मम है। इस अन्धेरे, निर्जन,
काँटों से भरे जीवन-मार्ग में केवल एक टिमटिमाता हुआ दीपक मिला था।
मैं उसे आंचल में छिपाये गाती चली आती थी पर दीपक मुझसे छिना जा
रहा है। अब कौन मेरा रोना सुनेगा कौन मेरी बाँह पकड़ेगा। बाबूजी का
पता लगाने के लिये अवकाश न मिला। माता जी को प्रणाम कहना।" पत्र
लिखकर बरामदे में लौट आयी। शीतल पवन के झोंके आ रहे थे। प्रकृति
मानों रोगशय्या पर पड़ी सिसक रही थी।

•

रात के तीन बज चुके थे। सहसा वकील साहब के गले की तेज आवाज
सुनकर चौंक पड़ी। उखड़ी साँसे चल रही थी। सवेरा होने में चार घन्टे
की देर थी यह चिन्तित थी। कुछ मिनट के बाद वकील साहब की साँस
उन्होंने हाथ से रतन को हट जाने का इशारा किया और तकिये पर सिर रख
कर फिर आँखें बन्द कर ली। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर क्षीण स्वर में
कहा—रतन विदाई का समय आ गया। मेरे अपराध··· । कुछ बाद
करके भी कुछ कह न सके। रतन न नौकरों से कविराज को बुलाने का
आदेश दिया।

पन्द्रह मिनट के बाद वकील साहब ने अन्तिम शब्दों में कहा—"मैंने
तुम्हारे जीवन का सत्यनाश कर दिया। क्षमा करना।" रतन ने पति के छाती
पर हाथ रखा छाती गरम थी वह अब भी सोच रही थी कि कविराज आ
जाते तो अच्छा होता। फलतः आने के लिये यह पश्चाताप कर रही थी
सोच रही थी कि अपने पति के निमित्त कार्य नहीं किया। उसने पति के शीतल

चरणों पर सिर झुका लिया और बिलख-बिलख कर रोने लगी। टीमल (नौकर) ने उनके मुँह में गंगा जल डाल दिया। टीमल ने कहा बहूजी आइये खाट से उतार दें मालिक चले गये यह कहकर वह भूमिपर बैठ गया और दोनो हाथों पर हाथ रखकर कर रोने लगा। रतन को अभी भी कविराज का इन्तजार था। रतन के मनमें मौत का ख्याल कभी न आया था। मौत ने आखों के सामने उसे लूट लिया।

•

उसी दिन दाह क्रिया के लिये शव काशी लाया गया मणिभूषण ने दाह क्रिया की। आजकल जालपा प्राय: रतन के ही साथ रहती। रतन किसी भी बात के याद आजाने पर घन्टों रोती। कभी कृतघ्य हीनता, निष्ठुरता, अपनी शृंगार लोलुपता की चर्चा करके यह इतना रोती कि हिचकियाँ बँध जाती।

वकील साहब के मर्तीजे मणिभूषण बड़े ही मिलन सार थे। एक महीने में ही सैकड़ों मित्र बना लिये। वकील साहब के जमा किये रुपये का लेन देखना शुरू कर दिया मकान के किराये वसूल करने लगे। गाँवों की तहसीली शुरू कर दी मानो रतन से कोई मतलब ही नहीं। टीमल ने जब रतन से काय सम्हालने को कहा तब वह नाराज हो गया। मणि ने उसी दिन चोरी का इल जाम लगाकरके उसे निकाल दिया। रतन को इन बातों की खबर न थी। एक दिन मणि ने कहा कि आप मेरे साथ चले और बंगला बेच दिया जाय। रतन कुछ चौंकी लगा किसी ने झकझोर दिया। रतन कहा—देखा जायगा। मणि न वकील साहब के नामपर संस्कृत को पाठशाला खोलने की राय दी। रतन मणि भूषण की काय कुशलता से पराभूत थी शोक और मनस्ताप ने उसका मन कोमल और नम बना दिया था।

•

इधर मुन्शी दयानाथ की तबियत खराब होने के कारण जालपा ने रतन के घर जाना आना कम कर दिया दयानाथ का ज्वर था। अधिक बक झक के कारण रामेश्वरी को मृत बाधा का भ्रम हुआ। उन्हें बचने की आशा थी। एक दिन जालपा उन्हीं के कमरे में बैठी-बैठी उब गई तो समाचार पत्रों की फाइल उलटने-पलटने लगी। अचानक शतरंज का एक नकशा जिसके लिये किसी ने पुरस्कार देने की घोषणा की थी उसके सामने आ गया। तुरन्त उसे

रमानाथ के विवाद मोहरों और नक्शों वाली किताब याद आ गई। वह नक्शा उस कापी में मौजूद था। जालपा को वह नक्शा किसी पत्र में प्रकाशित करने की सूझ आगई। कोई दूसरा इसे हल नहीं कर सकता। उन्होंने हल किया है अत: जल्दी हल कर लेंगे और प्रथम पुरस्कार पाने वाले की हैसियत से पहिचाने जा सकेंगे।

इसी उधेड़-बुन में वह आज रतन से न मिल सकी। रतन दिन भर उसकी राह देखती रही। शाम होत गई तो रतन स्वयं जालपा के यहाँ चली आई। आज वह मोटर बहुत धीरे धीरे चला रही थी। जालपा ने रतन को देखते ही क्षमा माँगी। मुन्शी जी की बीमारी की बात सुनकर उसने जालपा को न चलाने के लिये रोका। रतन मुन्शीजी के कमरे की ओर चली। रतन को देखते ही बोले अब मैं भी चला।। कोई अपना नहीं होता बहूजी। संसार के नाते सब स्वार्थ के नाते हैं। रतन की सान्त्वना से और उन्हें संतोष हुआ। जालपा के साथ वह कमरे के बाहर आ गई। रतन ने महिला के बंगले में चलने और वसे ले जाने की राय का उत्तर जालपा से माँगा रतन की बात सुनकर जालपा ठिठक गई। उसने कहा कि क्या तुम मुझे ऐसी ही छोड़कर चली जाओगी? तुम एक हफ्ते बाहर थीं तो मेरे लिये पल पहाड़ बन गया था। तुम अब फिर जाने का नाम मत लेना। रतन की आँखें भर आई। उसने भी अपने न जाने का ही निश्चय किया। बंगला देखने का भी विचार त्याग दिया। जालपा ने शतरंज वाली चाल बतलाया कि किस तरह वे अखबार की सहायता से पकड़े जा सकते हैं। रतन ने कहा कि तुमने बहुत अच्छा उपाय सोच निकाला है। मेरा मन कहता है इसका अच्छा फल होगा। रतन ने रुपये देने का वादा किया। जालपा ने रात में सवाल बनाने और भेजने का भार लिया। 'प्रजामित्र' में यह सवाल ५०) इनाम के साथ प्रकाशित हुआ। रतन बाहर जारही थी कि रामेश्वरी पंखा लिये अपने को झलती हुई दिखाई पड़ गई। रतन ने आग्रह किया तो रामेश्वरी ने हाथ से चक्की पर आटा पीसने की बात कही। रतन भी जाँते पर रामेश्वरी का साथ देने के लिये माँची पर बैठ गई। जालपा ने देखा कि रतन गेहूँ पीसने में मग्न है। जालपा भी जाँतपर आकर बैठ गई और दोनों जाँतपर का गीत गाने लगा—

मोहि जोगिन बनायके कहाँ गये जोगिया।

दोनों के हृदय इस समय यौवन के स्वाभाविक आनन्द से पूर्ण थे। न शोक का भार था, न वियोग का दुःख। जैसे दो चिड़ियाँ प्रभात की अपूर्व शोभा से चहक रही हों।

०

रमा की चाय की दूकान तो खुल गई परन्तु दिन भर बन्द रहती थी, केवल रात का ही खुलती थी। रात का कभी अधिकतर देवीदीन की ही दूकान पर बैठता चार पाँच रुपये रोज की आमदनी होने लगी। चाय इतनी स्वादिष्ट होती थी कि जो एक बार यहाँ चाय पी लेता वह दूसरी दूकानपर न जाता। धीरे-धीरे मेज भी आगई, दो दैनिक पत्र भी आने लगे। दूकान चल निकली इन तीन चार घटों में छः सात रुपये की आमदनी में से तीन चार बच जाते। इन तीन-चार महीनों की तपस्या ने रमा की लालसा को और भी बढ़ा दिया। रुपये आते ही सैर सपाटे की धुन सवार हो गई। सिनेमा की ओर रुचि बढ़ गई और व्यवहार की अच्छी से अच्छी चीजें लाता। देवीदीन के लिये एक सुन्दर रेशमी चादर लाया। देवीदीन अब ठाट से रहता। बुढ़िया अपने सिर पर बोझ न लाती और यदि कभी लाती भी तो रमानाथ नाराज हो जाता।

एक दिन वह ड्रामा देखने के लिये टिकट सुरक्षित कराने चल पड़ा। रमा जब कहीं बाहर निकलता तो पुलिस की कल्पना आते ही उसका मन काँप उठता। उसे विश्वास था कि पुलिस का एक एक चौकीदार उसकी हुलिया पहचानता है और उसके चेहरे पर निगाह पड़ते ही पहचान लेगा। यह भी जानता था कि पुलिस वाले सादे लिबास में भी घूमते हैं। इन्हीं बातों को सोचता हुआ रमा जल्दी-जल्दी सिनेमा की ओर चला जा रहा था। थोड़ी दूर चला कि तीन कान्स्टेबुल दिखाई दिये। रमा ने सड़क छोड़ दी और पटरी पर चलने लगा। दुर्भाग्य की बात, तीनों कान्स्टेबुल भी सड़क छोड़ कर पटरी पर आ गये। रमा का कलेजा धक-धक करने लगा। पुलिस द्वारा अपनी ओर देखे जानेपर रमा के पैरों में थर-थराहट हो गई। यह सोचने लगा कि शायद सब मन में मेरा हुलिया मिला रहे हैं। इस कल्पना से रमा के ऊपर भयंकर आतंक छा गया। जब सिपाहियों का दल समीप आ गया तो उसका चेहरा भय से विवर्ण हो गया, और आँखें कुछ ऐसी सशंक हो गई कि वह अपने को राह चलते आदमियों की ओट में छिपाने की चेष्टा

करने लगा। पुलिस वालों, को मजो मारने क्यों सूझी? एक ने पुकारा ओ पगड़ी जरा इधर आना और उसका नाम पूछा। रमानाथ ने सोना-चोरी छिपानी चाही और नाम हीरालाल तथा घर शाहजहाँपुर बता दिया। मुहल्ले का नाम पूछे जाने पर उसकी यादद्दास्त काम न आई। पुलिस से शिकायत करने पर उत्तर मिला तुम्हारा तो नाम और पता सब दर्ज है। कान्स्टेबुल ने रमानाथ को थाने पर चलने को कहा रमानाथ की ओर से वारन्ट की माँग होने पर थाने पर दिखाने को कहा और पकड़ लिया। मदारियों के तमाशे की तरह भीड़ इकट्ठी हो गई। देवीदीन इस समय अफीम लेकर लौट रहा था। देवीदीन आगे बढ़कर बोला—यह पंडित तो हमारे मेहमान हैं इन्हें कहाँ पकड़े लिये जाते हो। देवीदीन नाम पूछने पर वह सिटपिटा गया। सिपाहियों ने भमको देकर उसका नाम और पता सब कुछ जान लिया। फिर रमानाथ से व्यंग के स्वर में पूछा कि कौन सा सही है हीरालाल या रमानाथ? भीड़ में काना-फूसी चल पड़ी। इतना अपमानित कभी न हुआ था।

•

पुलिस स्टेशन के दफ्तर में दरोगा, नायब दरोगा, इन्सपेक्टर, और डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बैठे किसी मामले पर बात कर रहे थे। रमानाथ मीटिंग के बाद पेश किया गया। रमा ने सारी बातें कह दी, दरोगा ने मामला संगीन बतलाते हुए शराब मुहब्बत और परायी स्त्री के चक्कर में पड़ने की बात जानना चाही। जब दरोगा ने पत्नी के लिए जेवर बनाने की बात चलायी तो रमा झेंप गया अपरायी मुस्कराहट उसके मुँह पर रो पड़ी एकाएक देवीदीन आकर खड़ा हो गया। देवीदीन ने पाँच गिन्नियाँ निकालकर सामने रख दी। दरोगा, नाराज हो गया, और पचास गिन्नी की माँग की। देवीदीन बाहर निकाल दिया गया और रमानाथ हिरासत में दे दिया गया देवीदीन के होठ आवेश से काँप रहे थे। उसके चेहरे पर इतनी पक्का रमा ने कहीं नहीं देखी थी, जैसे कोई चिड़िया अपने घोंसले में कौए को देखकर विह्वल हो गयी हो। देवीदीन ने दो घंटे की मोहलत चाही। रमा ने मना किया। देवीदीन ने कहा कि जब बात रुपयों पर आयी है तो, देवीदीन पीछे न हटेगा। दरोगा जो से मोहलत माँग कर वह चला गया। इसी बीच दराज से एक मिसिल निकाल कर दरोगा ने कहा कि एक काम करो तो देवीदीन का रुपया ही बच जाय और तुम भी मुक्त हो सकते हो किसी मामले में गवाही देनी थी।

रमानाथ झूठी गवाही देने के लिए तैयार न था दरोगा रमा को लेकर डिप्टी के यहाँ पहुँचा डिप्टी ने संदिग्ध भाव से उसकी होशियारी स्वीकार करली। पुलिस ने इलाहाबाद फोन मिलाया वहाँ से उत्तर मिला कि उसपर कोई मुकदमा नहीं है। म्युनिसिपलटी से नम्बर मिलाया गया तो व्यक्ति का पता लग गया और उत्तर मिला कि वह गलत जोड़ करने और हिसाब न मिलने पर भाग गया है, गबन नहीं किया है। पुलिस चकरा उठी कि अब क्या होगा? अचानक दरोगा जी को सूझ आयी कि उसे इसका पता ही न दिया जाय। पर वालों को तो मालूम हो ही जायगा पर उसको भी न मिलने दिया जाय। इधर देवीदीन लौटा तो रमा को न पाकर घबरा गया। वह चिन्तित हो उठा कि बुढ़िया को क्या उत्तर देगा? देवीदीन दरोगा से दो बात करने के लिये रुका रहा दरोगा ने आते ही रुपये लाने के बारे में व्यंग किया तो उसने कहा *कि पलंगे कमरे में। दरोगा ने व्यंग में कहा कि खोद कर ही निकाले होंगे?* देवीदीन ने कहा कि अभी खोदने की जरूरत नहीं पड़ी और आप की कृपा से हजार पाँच सौ अभी भी मिल जायेंगे। दरोगा जी ने आभारी प्रगट की तो देवीदीन ने थाने से निकल जाने को नीचता बतलायी। दोनों की बात आगे बढ़ती ही जा रही थी और बातों लग गयी कौन किसको गिराता है। रमा ने देवीदीन को शहादत पर मुक्ति वाली बात बतायी। रमा ने कहा नहीं दादा बिलकुल सच मुकदमा है। देवीदीन ने उपेक्षा से कहा—मुखबिर बन गये हो इसमें तो जो पुलिस सिखायेगी वही तुम्हें कहना पड़ेगा। दरोगा ने सफाई देनी चाही। रमा भी उसके विरुद्ध हो चला गया। रमा ने कहा कि सच फसाद देख लिया है उसका कोई गुनाह नहीं है। देवीदीन ने रमा को रुपये देना चाहा तो रमा ने कहा कोई जरूरत नहीं। दारोगा ने कहा—आज से तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा। देवीदीन ने कम्पन स्वर में कहा 'हुजूर इतना जानता हूँ इनकी दावत हागी नौकर मिलेंगे, मोटर मिलेगी, यह सब देख चुका हूँ। यह कहकर देवीदीन तेजी से बाहर निकल पड़ा।

•

स्मरण में उल्लास, शान्ति और बल है। जो कभी एकान्त में बैठकर, किसी की स्मृति, किसी के वियोग में सिसक और विलख कर नहीं रोया वह जीवन के ऐसे सुख से वंचित है। कुछ दिन के पश्चात एक नवीन जीवन एक नवीन उत्साह का अनुभव होता है। जालपा के पास 'प्रजा मित्र'

कार्यालय का पत्र पहुँचा,- उसे पढ़ कर वह रो पड़ी। आज उनका पता पाते ही उनका मन उल्लसित हो उठा। अचानक रमेश बाबू कमरे में आये और दयानाथ से कहा कि रमानाथ का पता चल गया, कलकत्ते में हैं। जालपा ने कहा कि आपसे उनसे पहले यह सूचना उसको प्राप्त है। इसी बीच रतन भी आ पहुँची। जालपा ने सब आने की बात कही, पहले तो रतन को विश्वास ही न हुआ। जालपा को शीघ्र जाने की सलाह दी। जालपा ने रतन को भी चलने को कहा। रतन ने मणि भूषण की नियत खराब होने से जाने में असमर्थता प्रगट की। दयानाथ ने गोपी के साथ जालपा को भेजने का निश्चय किया। रात के नौ बजे जालपा जाने को तैयार हो गयी। सास ससुर के चरणों में गिर कर आशीर्वाद लिया फिर मोटर में आकर बैठ गयी। रतन स्टेशन तक साथ गयी। रतन ने कलकत्ते की सब चीज़ों का परिचय कराया। रुपये की जरूरत होने पर उसे तार देने की भी चेतावनी दी और बहुत सी सारी बातें रतन ने उसे समझाया। गाड़ी आ गयी। रतन ने गोपी को चेतावनी दी कि सो मत जाना। जालपा ने विदा लेते हुये आशीर्वाद माँगा। रतन ने सुख-दुख में साथ रहने का वादा किया। जालपा हंस पड़ी। गाड़ी चल दी।



देवीदीन ने चाय की दुकान बन्द कर दी। दिन भर अदालत की खाक छानता। तीन दिन तक देवीदीन ने न कुछ खाया और न सोया। जग्गो ने पानी रखते हुए भिक्षम खाने के लिये पूछी तो उसने उसका भाव समझ कर मना कर दिया। बुढ़िया आज सेवा रत थी। वह चाहती थी कि देवीदीन प्रसन्न होकर सारा वृत्तान्त कह दे। बुढ़िया पंखा झलने लगी। बुढ़िया के पूछने पर देवीदीन ने कहा कि आज भैया की गवाही खतम हो गई और अभी दीवानी में भी बयान देना होगा। इसके बाद उन्हें अच्छी नौकरी न मिल जायेगी। १५ बेगुनाहों को फँसा दिया, अब एक भी न बचेगा। इसी के बयान से मुकदमा साबित हो गया। किसने कम किया किसने नहीं किया, इसका हाल दैव जाने, पर मारे सब जायेंगे। घर से भी सरकारी रुपया खाकर भागा था। हमें धोखा हुआ। सहसा दो आदमी आकर खड़े हो गये—एक रमानाथ का भाई गोपी था दूसरा "प्रजा मित्र" का चपरासी। देवीदीन ने उसे बैठाया। उसका चेहरा रमानाथ से मिलता जुलता था।

घर से आने की बात पूछने पर गोपी ने कहा—आज ही आया हूँ, भाभी के साथ धर्मशाले में ठहरा हुआ हूँ। जग्गो ने ऊपरवाला कमरा साफ करवा दिया। देवीदीन जाकर स्वयं लिवा लाया। पहले तो साग भाजी की दूकान देखकर जालपा झिझकी, पर बुढ़िया के स्नेह ने उसे मोहित कर लिया। जालपा ऊपर गई, उसे लगा मानों अपना ही घर हो। जालपा को रमा की गिरफ्तारी की सूचना दी। देवीदीन ने सरकारी गवाही की सूचना दी। जालपा ने रमा के सम्बन्ध की प्रयागवाली सारी सूचनायें देवीदीन को बता दीं। जालपा अब इस चिन्ता में डूब गई कि रमा को इस दलदल में से कैसे निकाले ? उनकी अकीर्ति होगी बेगुनाहों का खून होगा, हत्या सिर आयेगी, अपने स्वार्थ के लिए यह नीचता आदि बातें उसको त्रस्त कर रही थी। शहादत हो जाने के कारण उनकी छूटने की भी उम्मीद न थी। जालपा खत देना चाहती थी। बंगले पर रमा के पास पत्र पहुँचाने का निर्णय हुआ। अँधेरा होते देवीदीन के साथ जालपा, रमानाथ का बँगला देखने चली। एक पत्र लिखकर जेब में रख लिया। रास्ते में जब जालपा ने देवीदीन से रमा के सम्बन्ध में घर का विचार जानना चाहा तो देवीदीन ने नकारात्मक उत्तर दिया। जालपा शंकित हो गई कि वे पत्र पढ़कर भी न बदलें। जब वे दोनों बँगले तक पहुँचे तो वहाँ कोई आदमी न था। फाटक पर ताला पड़ा हुआ था। जब देवीदीन ने पासवाले एक खटिक से पता लगाया तो पता चला कि वे सब चले गये और १५, २० दिन में आयेंगे। खटिक ने कहा—पढ़े लिखे आदमी भी ऐसे दगाबाज होते हैं दादा! सरासर झूठी गवाही दी। न जाने इसके बाल बच्चे हैं या नहीं। भगवान को भी नहीं डरा। रमा की यह निन्दा सुन कर जालपा का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। लौटते समय जालपा के पूछने पर देवीदीन ने कहा कि आने की खबर देने को कह आया हूँ।

•

एक महीना गुजर गया। गोपीनाथ घर लौट गया। जालपा जानती थी कि रमानाथ नहीं है फिर भी दो तीन बार बँगले तक हो आई थी। एक दिन शाम को उसने खिड़की के बाहर देखा कि पुलिस के अफसरों के साथ रमानाथ भी आ रहा है। दोनों की आँखें मिलीं। देवीदीन के आवाज लगाने पर भी मोटर न रुकी। देवीदीन ने जालपा से कहा कि कल ही मुकदमा

पेश होगा। जालपा ने देवीदीन से अपना पत्र पहुँचाने के लिये कहा। देवीदीन ने यह सन्देह प्रकट किया कि रमानाथ बयान बदलने पर राजी न होगा और बयान बदल भी देगा तो पुलिस उसे दूसरे अपराध में अपराधी बनाकर मुकदमा चलायेगी। जालपा ने कहा कि मैं उन्हें पुलिस से नहीं, अपयश से बचाना चाहती हूँ। यदि वह बयान न बदलेंगे तो मैं अदालत में सारा कच्चा चिट्ठा खोल दूँगी। देवीदीन और जालपा जाने को राजी हो गये।



अब रमानाथ नई जिन्दगी गुजार रहा था। रहने के लिए सुन्दर बँगला, सेवा के लिए नौकर, सवारी के लिए मोटर भोजन के लिये बावर्ची आदि की सुन्दर व्यवस्था थी। उसके जीवन में विलासिता आ गई थी। इस भोग विलास में अगर रमा को कुछ अभाव थी तो यह कि जालपा भी यहाँ होती।

एक महीने देहात की सैर करने के बाद रमा पुलिस के सहयोगियों के साथ अपने बँगले पर आ रहा था। रास्ते में देवीदीन की मकान की ओर से गुजर रहा था कि ऊपर के कमरे में जालपा दिखाई पड़ी। रमानाथ के चाहने पर भी मोटर न रुकी और वह बँगले पर पहुँचा। रमानाथ जालपा के बारे में चिन्तित था। वह शराब के नशे में था कि अचानक वृक्षों की ओट में किसी स्त्री की छाया दिखाई पड़ी। रमानाथ का दिल धड़कने लगा कि कहीं षड्यन्त्रकारियों ने उसका प्राण लेने की तो नहीं ठानी है। छाया बढ़ती रही और वह पीछे हटता गया। द्वार के पास आकर कोई चीज फेंक वह छाया अंधकार में विलीन हो गई। रमा ने उठाया तो वह लिफाफा था। रमा के मन से भय और कौतूहल का भाव उत्पन्न हुआ। लिफाफे को जेब में छिपाये वह कमरे में आया। दोनों ओर के द्वार बन्द कर लिये और हाथ में लेकर देखने लगा। पत्र जालपा का था। पत्र द्वारा उसे नई स्फूर्ति एवं आत्मविश्वास मिला। वह बयान बदलने के बारे में सोचने लगा। रमानाथ बाहर आया, जालपा को ढूँढ़ा पर वह चली गई थी। आधी रात हो गई थी रमानाथ से रहा नहीं गया वह देवीदीन के घर पहुँचा। अब जीने पर चढ़ने लगा तो जालपा देखते ही पहिचान गई वह दो कदम पीछे हट गई। देवीदीन वहाँ न होता तो वह दो कदम और आगे

हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर भर न भूलेगा। तोम पुलिस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है कि तुम राजद्रोह का बात कर रहा था।" रमानाथ इस प्रकार की आतंक की बातें सुनकर दब सा गया। उसका चेहरा फीका पड़ने लगा। अपनी दुर्बलता पर उसे इतनी ग्लानि हुई थी वह रो पड़ा। रमानाथ काँपती आवाज में बोला—भेज दीजिए जेल। मर ही जाऊँगा न ? फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जायगा। अंत में डिप्टी ने इंसपेक्टर की ओर संकेत करते हुये कहा—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार है, लेकिन जब यह हमारे खिलाफ गवाही देगा, हमारा जड़ खोदेगा, तो हम भी अपनी कारवाई करेगा। जरूर से करेगा। कभी छोड़ नहीं सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और बैरिस्टर मोटर से उतरे।

०

रतन पत्रों में तो जालपा को डाढ़स देती किन्तु अपने विषय में कोई समाचार न लिखती। जब तक वकील साहब जीवित थे। रतन हर प्रकार से पूर्णरूप से सुखी थी। संपन्नता के कारण उसने मानसिक अशांति का भी अनुभव नहीं किया, सैर सपाटा हँसी खेल, इसी प्रकार उसका जीवन बीत रहा था।

और अब रतन की तकदीर ने पलटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कंकाल उसे खड़ा घूर रहा था। वकील साहब की मृत्यु के पश्चात् रतन ने घर गृहस्थी से विरक्त रहने लगी थी। अवसर पाकर मणिभूषण ने उसकी सारी सम्पत्ति हड़प ली। एक दिन मणिभूषण ने कहा—आज बंगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया। आपको मेरे साथ चलना होगा। रतन ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिरोध किया और कहा कि मैंने तो अभी बंगला बेचने का निश्चय नहीं किया था। मैं अभी यहीं रहना चाहती हूँ। रतन के इन्कार करने पर मणि ने कहा कि अपने कुल की मर्यादा-रक्षा के लिये मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा। रतन ने जब सम्पत्ति बेचने से इन्कार कर दिया और कहा कि आपको बेचने का कोई अधिकार नहीं है तो मणिभूषण ने उत्तर दिया कि सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। चाचाजी

पड़ी होती। उसकी आँखों में कभी इतना नशा न था। अंगों में कभी इतनी चपलता न थी, कपोल इतने कभी न दमके थे। हृदय में कभी इतना मृदु कंपन न हुआ था। आज उसकी तपस्या सफल हुई।



जालपा और रमा ने मिलन के पश्चात एक दूसरे से अपने जीवन की करुण कहानी बताई। जालपा ने अपने को इन सारी विपत्तियों का दोषी ठहराया। जालपा ने रमा को शिक्षा दी कि पुरुषार्थ का धन ही असली धन है। आत्मा को कलुषित करके कुछ भी प्राप्त करना ठीक नहीं। जालपा ने रमानाथ को गवाही से इन्कार करने को कहा। रमानाथ ने अपनी परिस्थितियों को बतलाया। वह नहीं चाहता था कि वह किसी प्रकार कोई नयी सफाई दे। जालपा ने कहा तुम्हें यह सब करना हो तो मैं वापस जाती हूँ। रमा अपनी दुर्गति न करना चाहता था उसने कहा कि मैं स्वयं ही सब कुछ ठीक कर दूँगा।



रमा मुँह अँधेरे अपने बगले पर पहुँचा। किसी को कानों-कान खबर न हुई। कपड़े पहन कर दारोगा के पास पहुँचा। उसने दारोगा से कहा कि आप लोगों ने मुझे धोखा दिया है और उल्लू बनाया है। मैं अब पुलिस की तरफ से शहादत नहीं देना चाहता। बेगुनाहों का खून अपनी गर्दन पर न लूँगा। मैंने गबन नहीं किया है म्युनिसिपैलिटी ने मुझपर कोई मुकदमा नहीं चलाया है। दारोगा ने कहा—अच्छा साहब, पुलिस ने धोखा ही दिया, लेकिन उसकी खातिर वह इनाम देने को भी तो हाजिर है, कोई अच्छी जगह मिल जायगी, मोटर पर बैठे हुये सैर करोगे। खुफिया पुलिस में जगह मिल गयी तो चैन ही चैन है। रमा ने कहा—मुझे कलंक पनना मंजूर है, इस तरह की तरक्की नहीं चाहता। यह आप ही को मुबारक रहे। इंसपेक्टर के आ जाने पर रमा ने कहा—मैंने फैसला किया है, कि आज अपना बयान बदल दूँगा। बेगुनाहों का खून नहीं कर सकता। इंसपेक्टर ने दया भाव से उसकी तरफ देखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे हैं, अपनी तकदीर की इमारत खड़ी कर रहे हैं। एक मिनट सन्नाटा रहा। दारोगा-डिप्टी सभी का रुख बिगड़ा रहा। डिप्टी कड़े शब्दों में बोला—"हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन

हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर भर न भूलेगा। तोम पुलिस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है कि तुम राजद्रोह का बात कर रहा था।" रमानाथ इस प्रकार की आतंक की बातें सुनकर दब सा गया। उसका चेहरा फीका पड़ने लगा। अपनी दुर्बलता पर उसे इतनी ग्लानि हुई थी वह रो पड़ा। रमानाथ काँपती आवाज में बोला—भेज दीजिए जेल। मर ही जाऊँगा न? फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जायगा। अंत में डिप्टी ने इंसपेक्टर की ओर संकेत करते हुये कहा—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार है, लेकिन जब यह हमारे खिलाफ गवाही देगा, हमारा अब खोदेगा, तो हम भी अपनी कारवाई करेगा। जरूर से करेगा। कभी छोड़ नहीं सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और बैरिस्टर मोटर से उतरे।

o

रतन पत्रों में तो जालपा को ढाढ़स देती किन्तु अपने विषय में कोई समाचार न लिखती। जब तक वकील साहब जीवित थे। रतन हर प्रकार से भावरूप से सुखी थी। संपन्नता के कारण उसने मानसिक अशांति का भी अनुभव नहीं किया, सैर सपाटा हँसी खेल, इसी प्रकार उसका जीवन बीत रहा था।

और अब रतन की तकदीर ने पलटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कंकाल उसे खड़ा घूर रहा था। वकील साह- की मृत्यु के पश्चात् रतन ने घर गृहस्थी से विरक्त रहने लगी थी। अवसर पाकर मणिभूषण ने उसकी सारी सम्पत्ति हड़प ली। एक दिन मणिभूषण ने कहा—आज बगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया। आप•। मेरे साथ चलना होगा। रतन ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिरोध किया और कहा कि मैंने तो अभी बगला बेचने का निर्णय नहीं किया था। मैं अभी यहीं रहना चाहती हूँ। रतन के इन्कार करने पर मणि ने कहा कि अपने कुल की मर्यादा-रक्षा के लिये मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा। रतन ने अब सम्पत्ति बेचने से इन्कार कर दिया और कहा कि आपको बेचन का कोई अधिकार नहीं है तो मणिभूषण ने उत्तर दिया कि सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। चाचाजी

पड़ी होती। उसकी आँखों में कभी इतना नशा न था। अंगों में कभी इतनी चपलता न थी, कपोल इतने कभी न चमके थे। हृदय में कभी इतना मृदु कंपन न हुआ था। आज उसकी तपस्या सफल हुई।

•

जालपा और रमा ने मिलन के पश्चात एक दूसरे से अपने जीवन की करुण कहानी बताई। जालपा ने अपने को इन सारी विपत्तियों का दोषी ठहराया। जालपा ने रमा को शिक्षा दी कि पुरुषार्थ का धन ही असली धन है। आत्मा को कलुषित करके कुछ भी प्राप्त करना ठीक नहीं। जालपा ने रमानाथ को गवाही से इन्कार करने को कहा। रमानाथ ने अपनी परिस्थितियों को बतलाया। वह नहीं चाहता था कि वह किसी प्रकार कोई नयी सफाई दे। जालपा ने कहा तुम्हें यह सब करना हो तो मैं वापस जाती हूँ। रमा अपनी दुर्गति न करना चाहता था उसने कहा कि मैं स्वयं ही सब कुछ ठीक कर लूँगा।

•

रमा मुँह अँधेरे अपने बगले पर पहुँचा। किसी को कानों-कान खबर न हुई। कपड़े पहन कर दारोगा के पास पहुँचा। उसने दारोगा से कहा कि आप लोगों ने मुझे धोखा दिया है और उल्लू बनाया है। मैं अब पुलिस की तरफ से शहादत नहीं देना चाहता। बेगुनाहों का खून अपनी गर्दन पर न लूँगा। मैंने गबन नहीं किया है म्युनिसिपैलिटी ने मुझपर कोई मुकदमा नहीं चलाया है। दारोगा ने कहा—अच्छा साहब, पुलिस ने धोखा ही दिया, लेकिन उसकी खातिर वह इनाम देने को भी तो हाजिर है, कोई अच्छी जगह मिल जायगी, मोटर पर बैठे हुए सैर करोगे। खुफिया पुलिस में जगह मिल गयी तो चैन ही चैन है। रमा ने कहा—मुझे क्लर्क बनना मंजूर है, इस तरह की तरक्की नहीं चाहता। यह आप ही को मुबारक रहे। इंसपेक्टर के आ जाने पर रमा ने कहा—मैंने फैसला किया है, कि आज अपना बयान बदल दूँगा। बेगुनाहों का खून नहीं कर सकता। इंसपेक्टर ने दया भाव से उसकी तरफ देखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे हैं, अपनी तकदीर की इमारत खड़ी कर रहे हैं। एक मिनट सन्नाटा रहा। दारोगा-डिप्टी सभी का रूख बिगड़ा रहा। डिप्टी कड़े शब्दों में बोला—"हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन

म तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर भर न भूलेगा। तोम पुलिस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है कि तुम राजद्रोह का पाप कर रहा था।" रमानाथ इस प्रकार की आतंक की बातें सुनकर दब सा गया। उसका चेहरा फीका पड़ने लगा। अपनी दुर्बलता पर उसे इतनी ग्लानि हुई थी वह रो पड़ा। रमानाथ काँपती आवाज में बोला—जेल दीजिए जेल। मर ही जाऊँगा न? फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जायगा। अंत में डिप्टी ने इंसपेक्टर की ओर संकेत करते हुये कहा—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार है, लेकिन जब वह हमारे खिलाफ गवाही देगा, हमारा जड़ खोदेगा, तो हम भी अपनी कारवाई करेगा। जरूर से करेगा। कभी छोड़ नहीं सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और बैरिस्टर मोटर से उतरे।

०

रतन पत्रों में तो जालपा को ढाढस देती किन्तु अपने विषय में कोई समाचार न लिखती। जब तक वकील साहब जीवित थे। रतन हर प्रकार से पातरूप से सुखी थी। संपन्नता के कारण उसने मानसिक अशांति का भी अनुभव नहीं किया, सैर सपाटा हँसी खेल, इसी प्रकार उसका जीवन बीत रहा था।

और अब रतन की तकदीर ने पलटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कंकाल उसे सदा घूर रहा था। वकील साहब की मृत्यु के पश्चात् रतन ने घर गृहस्थी से विरक्त रहने लगी थी। अवसर पाकर मणिभूषण ने उसकी सारी सम्पत्ति हड़प ली। एक दिन मणिभूषण ने कहा—आज बंगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया। आपको मेरे साथ चलना होगा। रतन ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिरोध किया और कहा कि मैंने तो अभी बंगला बेचने का निर्णय नहीं किया था। मैं अपनं यहीं रहना चाहती हूँ। रतन के इन्कार करने पर मणि ने कहा कि आप कुल की मर्यादा-रक्षा के लिये मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा। रतन ने सब सम्पत्ति बेचने से इन्कार कर दिया और कहा कि आपको बेचने का कोई अधिकार नहीं है तो मणिभूषण ने उत्तर दिया कि सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। चाचाजी

बढ़ी होती। उसकी आँखों में कभी इतना नशा न था। अंगों में कभी इतनी चपलता न थी, कपोल इतने कभी न चमके थे। हृदय में कभी इतना मृदु कंपन न हुआ था। आज उसकी तपस्या सफल हुई।

●

जालपा और रमा ने मिलन के पश्चात एक दूसरे से अपने जीवन की करुण कहानी बताई। जालपा ने अपने को इन सारी विपत्तियों का दोषी ठहराया। जालपा ने रमा को शिक्षा दी कि पुरुषार्थ का धन ही असली धन है। आत्मा को कलुषित करके कुछ भी प्राप्त करना ठीक नहीं। जालपा ने रमानाथ को गवाही से इन्कार करने को कहा। रमानाथ ने अपनी परिस्थितियों को बतलाया। वह नहीं चाहता था कि वह किसी प्रकार कोई नयी सफाई दे। जालपा ने कहा तुम्हें यह सब करना हो तो मैं वापस जाती हूँ। रमा अपनी दुर्गति न करना चाहता था उसने कहा कि मैं स्वयं ही सब कुछ ठीक कर लूंगा।

●

रमा मुँह अँधेरे अपने बंगले पर पहुँचा। किसी को कानों-कान खबर न हुई। कपड़े पहन कर दारोगा के पास पहुँचा। उसने दारोगा से कहा कि आप लोगों ने मुझे धोखा दिया है और एक्यू बनाया है। मैं अब पुलिस की तरफ से शहादत नहीं देना चाहता। बेगुनाहों का खून अपनी गर्दन पर न लूँगा। मैंने गबन नहीं किया है म्युनिसपैल्टिी ने मुझपर कोई मुकदमा नहीं चलाया है। दारोगा न कहा—अच्छा साहब, पुलिस ने धोखा ही दिया, लेकिन उसकी खातिर वह इनाम देने को भी तो हाजिर है, कोई अच्छी जगह मिल जायगी, मोटर पर बैठ हुये सैर करोगे। खुफिया पुलिस में जगह मिल गयी तो चैन ही चैन है। रमा ने कहा—मुझ बनकर भी नहीं मंजूर है, इस तरह की तरक्की नहीं चाहता। यह आप ही को मुबारक रहे। इंसपेक्टर के आ जाने पर रमा ने कहा—मैंने फैसला किया है, कि आज अपना बयान बदल दूँगा। बेगुनाहों का खून नहीं कर सकता। इंसपक्टर ने दया भाव से उसकी तरफ देखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे हैं, अपनी तकदीर की इमारत खड़ी कर रहे हैं। एक मिनट सन्नाटा रहा। दारोगा-डिप्टी सभी का रंग बिगड़ा रहा। डिप्टी कड़े शब्दों में बोला—"हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन

हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर भर न भूलेगा। तोम पुलिस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है कि तुम राजद्रोह का बात कर रहा था।" रमानाथ इस प्रकार की आतंक की बातें सुनकर दब सा गया। उसका चेहरा फीका पड़ने लगा। अपनी दुर्बलता पर उसे इतनी ग्लानि हुई थी वह रो पड़ा। रमानाथ काँपती आवाज में बोला—भेज दीजिए जेल। मर ही जाऊँगा न? फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जायगा। अंत में डिप्टी ने इंसपेक्टर को ओर संकेत करते हुये कहा—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार है, लेकिन जब वह हमारे खिलाफ गवाही देगा, हमारा अहित सोचेगा, तो हम भी अपनी कारवाई करेगा। सख्त से करेगा। कभी छोड़ नहीं सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और बैरिस्टर मोटर से उतरे।

०

रतन पत्रों में तो जालपा को ढाढ़स देती किन्तु अपने विषय में कोई समाचार न लिखती। जब तक वकील साहब जीवित थे। रतन हर प्रका से बाह्यरूप से सुखी थी। संपन्नता के कारण उसने मानसिक अशांति • भी अनुभव नहीं किया, सैर सपाटा हँसी खेल, इसी प्रकार उसका जीव बीत रहा था।

और अब रतन की तकदीर ने पलटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कंकाल उसे खड़ा घूर रहा था। वकील साहब की मृत्यु के पश्चात् रतन ने घर गृहस्थी से विरक्त रहने लगी थी। अवसर पाकर मणिभूषण ने उसकी सारी सम्पत्ति हड़प ली। एक दिन मणिभूषण ने कहा—आज बंगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया। आपको मेरे साथ चलना होगा। रतन ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिरोध किया और कहा कि मैंने तो अभी बंगला बेचने का निर्णय नहीं किया था। मैं अभी यहीं रहना चाहती हूँ। रतन के इन्कार करने पर मणि ने कहा कि अपने कुल की मर्यादा-रक्षा के लिये मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा। रतन ने अब सम्पत्ति बेचने से इन्कार कर दिया और कहा कि आपको बेचने का कोई अधिकार नहीं है तो मणिभूषण ने उत्तर दिया कि सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। चाचाजी

और मेरे पिता जी में कभी मतभेद नहीं हुआ। आप चलना चाहें चलें अन्यथा पचास रुपये मासिक आपकी आजीविका के लिये निश्चित कर दूँगा।

रतन को बहुत ठेस लगी। कुछ देर हत बुद्धि सी बैठी रही। वकीलों के पास गयी, सबने वकील साहब के वसीयत न लिखने पर पश्चात्ताप करते हुये रतन के प्रति सहानुभूति प्रकट की। दिनभर रतन चिन्ता में डूबी, मौन बैठी रही। सहसा उसके विचारों ने पलटा खाया। "वह भी लाखों स्त्रियों की तरह छोटा-मोटा काम करके, मेहनत, मजदूरी करके काम चला सकती है। कपड़ा सिल सकती है, लड़के पढ़ा सकती है। यही न होगा, लोग हँसेंगे, मगर वह हँसी उसकी नहीं समाज की होगी।" मणिभूषण पुनः रतन से नये बंगले में चलने के लिये पूछने आया। रतन ने कहा—मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं। मैं कुछ नहीं चाहती। मैं इस घर का एक तिनका भी अपने साथ न ले जाऊँगी। मैं दया की भिखारिनी न बनूँगी। संसार में हजारों विधवायें हैं जो मेहनत मजूरी करके अपना निर्वाह कर रही हैं। मैं भी वैसी ही हूँ। मैं भी उसी तरह मजूरी करूँगी। पुनः रतन ने उत्तेजित होकर कहा कि अगर मेरी जबान में इतनी ताकत होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुँचती, तो मैं सब स्त्रियों से कहती, बहनों। किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना, तो जबतक अपना घर अलग न बनालो चैन की नींद मत सोना परिवार तुम्हारे लिये फूलों की सेज नहीं, काँटों की शैया है, तुम्हारा पार लगाने वाली नौका नहीं, तुम्हें निगल जाने वाला जन्तु है।" सन्ध्या हो गयी थी। रतन चादर संभालती हुई सड़कपर चली जा रही थी। रास्ते में परिचित महिलाओं ने रोका किन्तु न रुकी। वह जालपा के घर की ओर जा रही थी। आज उसका वास्तविक जीवन आरम्भ हुआ।



आज रमानाथ की गवाही थी। दस बजे जालपा और देवीदीन कचहरी पहुँच गये। गैलरी दर्शकों से भरी हुई थी। इजलास पर पुलिस कर्मचारी और कठघरे के दोनों तरफ वकील खड़े मुकदमा पेश होने का इन्तजार कर कर रहे थे। मुलजिमों की संख्या लगभग पन्द्रह थी। सभी कठघरे के बगल में जमीन पर बैठे हुये थे। सभी प्रसन्नचित्त थे। घबराहट, निराशा, या

शोक का किसी के चेहरे पर चिह्न न था। ग्यारह बजे पेशी शुरू हुई। अन्त में तीन बजे रमानाथ गवाहों के कटघरे में लाया गया। दर्शकों में सन-सनी-सी फैल गयी। इजलास के बाहर के लोग भी आकर भीतर जुट गये। जालपा चाहती थी कि एक बार रमा की आँखें उठ जातीं और उसे देख लेती लेकिन रमा सिर झुकाये खड़ा था मानों वह इधर उधर देखते डर रहा हो। वह कुछ सहमा और घबराया हुआ था। जालपा का कलेजा धक्-धक् कर रहा था, मानों उसके भाग्य का निर्णय हो रहा हो।

रमा की गवाही प्रारम्भ हुई। जालपा उसकी बातों से बेचैनी का अनुभव कर रही थी—उसके आस-पास बैठा महिलाएँ रमानाथ के ऊपर छींटाकशी कर रही थी—जालपा को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। सोचती थी कि जाकर कह दे कि सारी गवाही झूठ है, पुलिस के प्रभाव के कारण रमानाथ इस प्रकार की गवाही दे रहा है। जालपा ने इस संबंध में देवीदीन से राय लिया। देवीदीन ने इस संबंध की बातों एवं परिणामों को समझाया। जालपा रमानाथ के विचारों में डूबी हुई दुखी मन से घर पहुँची।

•

एक महीना बीत गया। धीरे-धीरे उसके मन की उत्तेजना शान्त होने लगी। क्रोध दया, सहानुभूति आदि की बातें वह रमानाथ के विषय में अब न सोचती। उदास रहती और ईश्वरीय लीला समझकर दुखी थी।

अब उसका जीवन सेवा, सहिष्णुता एवं त्याग का था। जग्गो के घर का सारा काम अपने हाथ से करती। दोनों का हृदय माँ-बेटी का था।

मुकदमें की सारी कारवाई समाप्त होने के बाद एक दिन फैसले का भी समय आ गया। आज वही दिन था। जालपा घर के काम धंधों से फुरसत पाकर बैठी थी। अचानक देवीदीन पत्र लेकर आया। जालपा फैसला पढ़ने लगी। सभी को सजा थी पाँच-पाँच और दस-दस साल की। दिनेश को फाँसी का फैसला था। जालपा ने पढ़कर अखबार रख दिया और लम्बी साँस लेकर बोली क्या होगा इनके बालबच्चों का ?' दिनेश एवं उसके परिवार के प्रति जालपा के हृदय में ममता उमड़ आई। उसके परिवार पर पड़ने वाली विपत्ति की कल्पना करके वह शान्त न बैठ सकी। उसके मन में रमा के प्रति अनेक प्रकार के घृणा भाव उठने लगे। शाम हो गयी देवीदीन न लौटा। सहसा एक मोटर आकर दरवाजे पर खड़ी हो गयी। रमा उसमें से उतरा

और कुशल मंगल पूछते हुये अम्मो के पैर पर सोने की चार चूड़ियाँ रख दीं। अम्मो ने उठाकर उन चूड़ियों को जमीनपर पटक दिया और क्रोधित होकर उत्तेजित स्वर में बोली—"जहाँ इतना पाप समा सकता है, वहाँ चार चूड़ियों की जगह नहीं है ? अपनी कमाई के परिश्रम से बहुत कमाया, किन्तु नोयत कभी खराब नहीं की। उस कोख में आग लग जिसने तुम जैसे कपूत को जन्म दिया। यदि तुम पुलिस की मार खाकर आये होते तो वह भी तुम्हारी पूजा करती।"

रमा ने कहा कि पुलिस के प्रभाव एवं दबाव के कारण विवश होकर ऐसा करना पड़ा। वह अपनी विवशता की दुहाई देने लगा। अचानक रमा की बातें सुनकर जालपा नीचे आई और रमा पर तीखे व्यंगों के साथ बरस पड़ी—'अगर तुम सख्तियों और धमकियों से इतना दब सकते हो, तो तुम कायर हो। तुम्हें अपने को मनुष्य कहने का कोई अधिकारी नहीं ? देह के भीतर इसीलिये आत्मा रखी गयी है कि देह उसकी रक्षा करे। इसलिये नहीं कि उसका सर्वनाश करदे। "जाओ शौक से जिन्दगी का सुख लूटो। मैंने तुमसे पहले कह दिया था और आज फिर कहती हूँ कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं। मैंने समझ लिया कि तुम मर गये। तुम भी समझ लो कि मैं मर गयी।

रमा ने क्षमा याचना की बात कही—जालपा ने स्वीकार न किया। रमा लौट गया। अम्मो ने जालपा से कहा तुम्हें इतना बेलगाम नहीं होना चाहिये था। इतने में देवीदीन दिनेश के घर का पता लगाकर वापस लौट आया। देवीदीन और जालपा के साथ कलकत्ते की सड़कों की भीड़ चीरता हुआ क्रान्तिकारी दिनेश के घर पहुँचा।

•

रमा वापस लौट रहा था। उसे किसी के ऊपर क्रोध न था अपनी दुर्बलताओं और कायरता पर विचार करते हुए मोटर आगे बढ़ता चला जा रहा था। सोचने लगा जज करके जज के पास सारी वास्तविकता प्रकट कर दूँ। जालपा की उपेक्षा ने उसके हृदय को उद्विग्न और चिन्तित कर दिया। उसने मोटर रोककर चौकीदार से जज साहब का बंगला पूछा और उनके बंगले पर पहुँचा किन्तु वह सोचकर कि जज साहब से किस प्रकार अपने को स्पष्ट रूप में रखेगा इस बात का निर्णय नहीं कर पा रहा था। लज्जा

का सामना करने की सामर्थ्य उसमें न थी। फलतः वह बिना जज साहब से मिले बंगले के बाहर से ही लौट पड़ा।



आज सुबह रमा भी जल्दी सोकर उठा। वह स्वप्न देख रहा था कि दिनेश को फाँसी हो रही है और कोई स्त्री उस फाँसी की रस्सी को काटने को दौड़ रही है। रमा घबरा कर उठा देखा दरोगा, इन्सपेक्टर और डिप्टी सभी कमरे में आराम से बैठे हैं। इन्सपेक्टर ने रमानाथ से हाईकोर्ट के फैसले सम्बन्ध में और रमा के नौकरी के सम्बन्ध में बात चीत की।

एक महीना बीत गया। हाइकोर्ट ने मुकदमा पेश करने की तारीख निश्चित हो गयी थी। रमानाथ मदिरा और वेश्या जोहरा के प्रेम में विलास प्रिय बन बैठा था। जोहरा की नियुक्ति पुलिस द्वारा रमानाथ को बहलाने के लिए किया गया था। जोहरा के प्रति रमानाथ के मन में अनेक नये-नये भाव उठने लगे। जोहरा के सम्मोहन के प्रभाव में रमानाथ आ गया था। जालपा की ओर से हट कर उसका विलासी मन पूरे वेग के साथ जोहरा की ओर आकर्षित हुआ। जोहरा रोज आती और रमा को अपने प्रेमपाश में बाँधने को बातें करके चल देती। जालपा की ओर से हटकर उसका मन अब न उपता था। इस परतन्त्रता में भी स्वतंत्रता का अनुभव करने लगा।

धीरे-धीरे पुलिस अधिकारी वर्ग रमानाथ से निश्चिन्त होने लगा और उसके ऊपर होने वाला नियंत्रण क्रमशः ढीला कर दिया गया। एक दिन डिप्टी साहब ने उसे मोटर पर बिठा कर घुमाने ले गये। बीच में देवीदीन का घर पड़ते रमा का मन भय से भर उठा और लज्जा का अनुभव करने लगा। जब रमा हावड़ा ब्रिज से गुजर रहा था तो देखा एक स्त्री माथे पर घड़ा रखे जा रही है, अधांगी, चिन्ताओं से बोझिल और दबी हुई। रमानाथ को अचानक जालपा का संदेह हुआ। सचमुच वह जालपा ही थी। रमानाथ ने देखा जालपा के चेहरे पर न चंचलता, न कान्ति, न लावण्य और न तो गौरव ही। जालपा की वह मलीन मूर्ति रमा के आँखों में नाच उठी। रमा वापस लौट आया और कुछ खोया खोया-सा बेचैन था। जोहरा आई और अपना अदाओं तथा प्रेम भरी बातों से रमा का मन खींचने का प्रयत्न करने लगी। जोहरा ने अपने कोमल बाहों को उसके गर्दन में डाल कर अपनी ओर खींचा और प्रेम के स्वरों में पूछी, "सच बताओ, आज

इतने उदास क्यों हो ? मुझ से किसी बात पर नाराज हो ?' रमा ने कहा कि जोहरा मैं तुम्हारी दया को नहीं भूलूंगा । मैं हमेशा तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा। रमानाथ ने जोहरा से जालपा की विपत्ति और दुखी अवस्था का जिक्र किया । रमा ने जोहरा से कहा "तुम अगर चाहो तो जालपा का पूरा पता लगा सकती हो । वह कहाँ है क्या करती है मेरी तरफ से उसके दिल में क्या ख्याल है । घर क्यों नहीं जाती और कब तक रहना चाहती है ? अगर तुम किसी तरह उसे प्रयाग जाने पर राजी कर सको तो मैं उम्र भर तुम्हारी गुलामी करूँगा ।

जोहरा रमा पर अब अनुरक्त थी । प्रौढ़ा स्त्रियाँ अनुराग की अवहेलना नहीं कर सकती । इस जीवन में जोहरा को यह पहला आदमी मिला था जिसने उसके सामने अपना हृदय खोल कर रख दिया । जिसने उससे कोई पर्दा नहीं रखा । जोहरा के मन में स्वार्थ की अनुभूति हुई जोहरा सोच रही थी इस कार्य को करके रमानाथ को सरलतापूर्वक अपना बना करके रखा जा सकता है । जोहरा को जालपा को चिंता न थी क्योंकि वह मन वाँचना जानती थी । जोहरा जालपा का पता लगाने के लिए तैयार हो गयी । इसी बातों के बीच दारोगा जी आये । दारोगा जी जोहरा को अपने साथ ले जाना चाहते थे । रमा ने जोहरा को जाने से रोक दिया। दारोगा से इसी बात पर कहा सुनी हो गई । रमा ने दारोगा को पकड़ कर दरवाजे के बाहर निकाल दिया । अब जोहरा प्रसन्न थी । रमा ने कहा 'तुम्हे पाकर मैं सन्तुष्ट हूँ जोहरा तुम मेरी हो मैं तुम्हारा हूँ ।" जोहरा की आँखें चमक उठी ।

दिन भर आशा और निराशा के बीच रमा का मन भटकता रहा वह सोच रहा था कि जोहरा धोखा तो न देगी ? पुनः उसका ध्यान जालपा के जीवन और विचार पर गया और उसका हृदय जालपा के प्रति श्रद्धा से भर गया । रमा को अपनी गलतियों पर पश्चाताप हो रहा था । सोच रहा था कि अगर वह जालपा की बातें मान लिया होता तो कदाचित उसके मन की यह दशा न होती । रमानाथ यह अनुभव करने लगा कि जालपा और जोहरा में से किसी एक का भी परित्याग नहीं कर सकता । वह दिन भर इसी उधेड़ बुन में पड़ा रहा किसी काम में उसका चित्त न लगा । सभी दुर्बल मनुष्यों की भाँति रमा भी अपने पतन से लज्जित था । अब भी एकान्त में रहना

तो उसका मन और विवेक जागृत रहता किन्तु शराब और जोहरा के सामने आते ही उसका विवेक और धर्म ज्ञान भ्रष्ट हो जाता।

रात दस बज गये, पर जोहरा का कहीं पता न लगा। रह रह करके रमा को जोहरा पर अविश्वास होने लगा। दारोगा से पूछने पर भी जोहरा के बारे में ठीक ठीक पता न लगा। एक हफ्ता तक जोहरा के दर्शन न हुए रमानाथ जोहरा के संबन्ध में अनेक अनुमान करने लगा। रमा की अब दारोगा या इन्सपेक्टर से बात-चीत करने व सैर करने आदि की इच्छा न होती। यहाँ उसका कोई हमदर्द न था, कोई उसका मित्र न था एकान्त में मन मारे बैठे रहने में ही उसके चित को शान्ति होती थी। एक प्रकार का विराग उस पर छाया रहता था। सात दिन बाद दारोगा ने रमा को सिनेमा देखने के लिए तैयार किया। वह कपड़े पहन रहा था कि जोहरा आ पहुँची। रमा ने देखा कि जोहरा की वेशभूषा बिलकुल सादी और चेहरे पर चंचलता के स्थान पर तेजमय गम्भीरता झलक रही थी। रमानाथ जोहरा से कुछ नाराज और बेरुख प्रतीत हो रहा था। जोहरा ने बताया कि जालपा दिनेश के परिवार की सेवा कर रही है और चन्दा इकट्ठा कर उसके परिवार के पालन पोषण की व्यवस्था कर रही है। रमानाथ जालपा की पूरी कहानी को सुनने को समुत्सुक हो उठा। जोहरा ने बताया कि किस प्रकार वह देवीदीन के घर पहुँची, किस प्रकार दिनेश के बँगले तक पहुँची और किस प्रकार जालपा से मुझ कर उसकी बातें हुई। इस प्रकार रमा और जोहरा के बीच लम्बी वार्ता हुई।



अचानक रमा जालपा से मिलने को तैयार हो गया। चौकीदार के रोकने पर भी रमा तेजी से चल रहा हुआ। जोहरा निस्पन्द खड़ी हसरत भरी आँखों से देख रही थी। रमा के प्रति ऐसा विकल करनेवाला प्यार उसे कभी न हुआ था। जैसे कोई वीर बाला अपने प्रियतम को समर भूमि की ओर जाते देखकर गर्व से फूली न समाती हो।

रमा देवीदीन के घर पहुँचा। देवीदीन, जग्गो और जालपा बैठकर बातें कर रहे थे। "बस जालपा से दो बातें करना चाहता हूं। नीचे से ही गाड़ी रमा बोला, मेरी वजह से तुम्हें इतना कष्ट हुआ इसका मुझे खेद

है। मैंने अब साहस करके कच्चा चिट्ठा कह सुनाने का निश्चय कर लिया है। तुम लोगों ने मेरे ऊपर जो दया की है वह मरते दम तक न भूलूँगा। अगर जीता लौटा, तो तुम लोगों की कुछ सेवा कर सकूँ। सब कुछ क्षमा करना। बस यही कहने आया था।" यह कह कर रमा तेजी से आगे की ओर बढ़ा। जालपा भी कोठी से उतरी तो नीचे रमा का पता न था। जालपा कई मिनट तक सड़क पर निस्पन्द सी खड़ी रही। विवाहित जीवन के इन दो ढाई सालों में कभी उसका हृदय अनुराग से इतना प्रकम्पित न हुआ था। जालपा को आज वास्तविकता का पता लगा। इतने में जोहरा आ गई और दोनों ऊपर चली गई।

•

दारोगा परेशान था वह देवीदीन के घर पहुँचा। वहाँ पता न लगने पर पुन थाने लौट आया। दारोगा को सन्देह बना हुआ था और पुन वह देवीदीन के घर में रमा की तलाशी लेने के लिए लौट पड़ा। जोहरा वहाँ मौजूद थी। जोहरा को शरारत सूझी तो उसने लम्बा सा घूँघट निकाल लिया और अपने हाथ साड़ी में छिपा लिए। दारोगा जी को शक हुआ, शायद हजरत भेष बदले तो नहीं बैठे हैं। दारोगा ने जोहरा के पास जाकर कहा, अब यह भेष उतारिए और मेरे साथ चलिए। यह कहकर उन्होंने जोहरा का घूँघट हटा दिया। जोहरा ने ठट्ठा मारा और दारोगा जी जोहरा को देखकर विस्मय में पड़ गये। पूछने पर जोहरा ने कहा कि मैं यहाँ ड्यूटी दे रही थी। जोहरा दारोगा के साथ ही चल पड़ी। थोड़ी ही देर में उसके घर के दरवाजे पर उतार दिया।

•

दारोगा घर जाकर लेट गये। सुबह आठ बजे जगे तो फोन पर डिप्टी साहब ने कहा, 'कि रमानाथ ने बड़ा गोलमाल कर दिया है। उसे किसी दूसरी जगह ठहराया जायगा। ऐसा लगता है कि जज से सब हाल कह दिया है। मुकदमा का जाँच फिर से होगा। बड़ा भारी "ब्लण्डर" हुआ है। सारा मेहनत पानी में मिल गया।" दारोगा रमानाथ का सब सामान लेकर पुलिस के बंगले की तरफ चला। वह मन ही मन जोहरा

जालपा, देवीदीन सब पर गुस्सा हो रहा था। इस प्रकार एक हफ्ते तक पुलिस विभाग में भयंकर रूप से इसकी चर्चा रही।

मुकदमे की फिर से पेशी होगी, इस बात की चर्चा सारे शहर में थी। अंगरेजी न्याय के इतिहास में यह घटना सर्वथा अभूतपूर्व थी। पुलिस विभाग ने बड़ा जोर लगाया लेकिन सब रद्द था। झूठे सबूतों पर पन्द्रह आदमियों की जिन्दगी बरबाद करने की जिम्मेदारी सर पर लेना उसकी आत्मा को असह्य थी। उसने हाई कोर्ट को सूचना दी और सरकार को भी।

पुलिस रमा की तलाश में व्यस्त थी। इधर पत्रकारों ने जोहरा और जालपा से मुलाकात करके उनके बयानों को छाप दिया। जोहरा ने तो लिखा कि मुझे ५० रुपये रोज इसलिए दिये जाते थे कि रमानाथ को बहलाती रहूँ और कुछ सोचने या विचारने का अवसर न मिले। सारा पुलिस विभाग इन बातों से तिलमिला उठा। जालपा और जोहरा का कुछ पता न था।

दो महीने बाद फैसला हुआ। मुकदमे पर विचार करने के लिए एक सिविलियन नियुक्त हुआ। पुलिस ने एड़ी चोटी का जोर लगाया कि मुल्जिमों में कोई मुखबिर बन जाय। किन्तु यह प्रयोग सफल न हुआ। दारोगा भी नयी शहादतें न बना सके। अफसरों ने सारा दोष दारोगा के सर डाल दिया। ऐसी दशा में मुकदमा उठा लिया गया। दारोगा तनज्जुल हो गये और नायब-दारोगा को तराई में तबादिल कर दिया गया। रात दस बजे मुल्जिमों की रिहाई हुई। अपार दर्शकों की भीड़ एकत्र हुई 'जालपादेवी की जय!' से मकान गूँज उठा। किन्तु रमानाथ पर दरोगबयानी का अभियोग चलाने का निश्चय हुआ, रमा अभी मुक्त नहीं हुआ।



उसी बँगले में ठीक दस बजे रमानाथ का मुकदमा पेश हुआ। इस अवसर पर दिनेश की पत्नी और माता, जालपा और जोहरा सभी मौजूद थे। पुलिस की शहादतें शुरू हुई और सभी के बयान शुरू हुए। रमानाथ ने भी अपने बयान में पिछले एक वर्ष की कहानी बताई और जालपा के त्याग तथा प्रेम की प्रशंसा की जहाँ से उसे सत्य जीवन की प्रेरणा मिली। सफाई की तरफ से देवीदीन और जालपा का भी बयान हुआ। जोहरा ने

खुलकर बयान दिया जो बहुत ही प्रभावोत्पादक था। जालपा का बयान और भी मार्मिक था। जिसे सुनकर दर्शकों की आँखों में आँसू आ गये। उसके अन्तिम शब्द थे 'मेरे पति निर्दोष हैं। ईश्वर की दृष्टि में ही नहीं, नीति की दृष्टि में भी वे निर्दोष हैं। मुझे प्रसन्न करने के लिए ही उन्होंने बड़े से बड़े भार लिए। अगर अपराधिनी हूँ तो मैं हूँ। जिसके कारण उन्हें इतने कष्ट झेलने पड़े। मैं यह नहीं सह सकती थी कि वह निरपराधियों की लाश पर अपना भवन खड़ी करें। सफाई के और वकीलों की बहस हुई। सरकारी वकील ने भी खूब जमकर बहस की। बीच बीच में सफाई के वकील ने रमा के द्वारा आफिस में गड़बड़ी, होने घबड़ाने, पुलिस के पंजे में फँसने और फर्जी मुखबिर बनने तथा शहादत देने का जिक्र किया।

अन्त में अदालत ने रमा की परिस्थितियों पर विचार करते हुए रमानाथ को मुक्त कर दिया।



अब रमानाथ और देवीदीन प्रयाग के समीप आकर एक ग्राम में रहने लगे जो हर प्रकार से प्राकृतिक शोभा से पूर्ण और शान्त था। तीन साल बीत गये। देवीदीन कृषि और घरेलू काम करके नयी स्फूर्ति का अनुभव कर रहा था। दयानाथ भी नौकरी से अवकाश प्राप्त करके यहीं रहने लगे। रमा इस जीवन से प्रसन्न था। छोटी मोटी बीमारियों का दवा भी देना उसने शुरू कर दिया था। रतन बीमार थी और आज उसका जीवन समाप्त हो रहा था। जोहरा उसके ऊपर झुकी उसे करुण, विवश, निराश तथा तृष्णामय नेत्रों से देख रही थी। देवीदीन ने थोड़ी-सी राख लेकर कुछ मन्त्र पढ़ कर उसके माथे पर लगाया। कुछ देर के लिए चेतना जगी। किन्तु थोड़ी देर के बाद जीवन ने मृत्यु पर पर्दा डाल दिया। रतन के बाद जोहरा अकेली हो गई। भादों का महीना था। गंगा की भयंकर बाढ़ में अनेकों गाँव बहते चले आ रहे थे। जोहरा नदी के तट पर बाढ़ का तमाशा देखने लगी। सहसा एक किश्ती नजर आई। लग रहा था कि किश्ती अभी अभी उलट जायगी। एकाएक किश्ती उलट गई। सभी प्राणी लहरों में समा गये और लहरों की भयंकर चपेट में क्षण भर में आँखों से ओझल हो गये। केवल एक लाश-सी चीज किनारे की ओर आ रही थी जो तट से थोड़ी ही

दूर थी। मालूम पड़ा स्त्री है। स्त्री की गोद में एक बच्चा भी नज़र आता था। आलपा जोहरा और रमा तीनों किनारे पर खड़े थे और बचाने के लिए उद्विग्न हो उठे। जोहरा तुरन्त आगे बढ़ने के लिए तैयार हो गई। जोहरा के पहुँचते पहुँचते लाश लहर के चपेट में दूर हो गई और जोहरा भी उसी प्रभाव में सँभलते सँभलते बह गई। रमा भी पानी में कूद पड़ा। लहरें वेगवती हो उठीं। जालपा भी पानी में कूद पड़ी। रमा अब आगे न बढ़ सका। एक शक्ति आगे खींचती थी, एक पीछे। आगे की शक्ति में अनुराग था, निराशा थी बलिदान था, पीछे की शक्ति में कर्तव्य था, स्नेह था बन्धन था। बन्धन ने रोक लिया। वह लौट पड़ा।

दस मिनट तक जालपा और रमा एक दूसरे की ओर देखते हुए घुटने तक पानी में खड़े रहे। दोनों बाहर निकले और शोक में डूबे हुए घर की ओर चले। प्रायः जोहरा की सुखद स्मृतियाँ दोनों याद करते और जोहरा की एक तस्वीर खड़ी हो जाती।



वस्तु-विधान

उपन्यास के लिए कथानक उसका आवश्यक तत्व होता है। जीवन के विविध क्रिया कलापों एवं घटनाओं के संयोग से ही कथा निर्मित होती है। कथानक को सुगठित, स्वाभाविक एवं शृंखला बद्ध होना चाहिए। वस्तु-संगठन की दृष्टि से कथा-क्रम की शिथिलता को दोष माना जाता है। "घटनाओं को कला पूर्वक गूँथना उपन्यास की सफलता है। अस्त व्यस्त घटनाएँ ही कथा वस्तु का निर्माण नहीं कर सकती"।[1]

1 A simple series of events arranged along a single strand of causation may not properly be called a plot. The word plot signifies a weaving together—Clayton Hamilton.

कथानक के लिये निम्न तीन गुणों का होना आवश्यक है—

(१) रोचकता (२) मौलिकता (३) संभाव्यता।

कथा रोचक होनी चाहिए। इसकी सजीवता के लिये कौतूहल तथा नवीनता का होना आवश्यक है। यदि ऐसा न होगा तो पाठक की रुचि को आघात लगेगा और आनन्द का अभाव अनुभव करेगा। कथा को संभाव्य होना चाहिये। इधर उधर की घटनाएँ जोड़ने से कथा क्रम शिथिल हो जाता है उसे इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि पाठकके सम्मुख उन्हीं घटनाओं को रखे जो सर्वथा संभाव्य हो। कथानक में मौलिकता होनी चाहिये। पुरानी कथाओं से पाठक का मन ऊबता है, नीरसता का अनुभव करता है।

उपन्यासकार अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही कथानक का निर्माण करता है—उपन्यास की एक मूल कथा होती है और उसके साथ ही आनु षंगिक कथाएँ भी होती हैं जो मूल कथा की सहायता करती है और कथानक को विकसित एवं सुगठित करती हैं।

वस्तु संगठन की दृष्टि से गबन उच्च कोटि का उपन्यास माना जाता है। घटनाओं एवं चरित्रों को सुन्दर ढंग से सुगठित किया गया है।

उपन्यासकार का उद्देश्य नारी समाज की आभूषण प्रियता और मध्य-वर्गीय परिवार के आर्थिक जीवन बराबर को दिखाना है। इन्हीं दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वह पूरे कथानक के लिये घटनाओं, परिस्थितियों और चरित्रों का निर्माण करता है।

उपन्यास के मुख्य पात्र रमानाथ और जालपा हैं। इन्हीं को केन्द्र मानकर पूरी कथा इनके साथ घूमती है। रमानाथ और जालपा मध्य वर्ग के नव दम्पति हैं। इन दोनों पति-पत्नी के माध्यम से ही कथा का विकास होता है। जालपा आभूषण प्रेम को व्यक्त करती है और रमानाथ अपने बाह्याडम्बर एवं दिखावेपन को। एक घटनाओं का निर्माण करती है और दूसरा चरित्र का। इस प्रकार एक ही परिवार में पति-पत्नी के क्रिया-कलापों से कथा वस्तु प्रारम्भ होती है जो नितान्त स्वाभाविक तथा मौलिक है जो उपन्यास के उद्देश्य को सफल बनाती है।

मूल कथानक में रमानाथ के जीवन का दो पक्ष है—रमानाथ प्रयाग में रहकर परिस्थितियों की योजना करता है और दूसरी ओर कलकत्ता

भागकर दूसरे प्रकार का जीवन व्यतीत करता है। मूलकथा और उसके पात्र नितान्त स्वाभाविकता लिये हुये हैं और उनके क्रिया-कलाप तथा कार्य क्षेत्र उनके चरित्र का स्वाभाविकता की दिशा में मोड़ने वाले हैं। रमानाथ की अन्तर्मुखी वृत्तियों का सुन्दर विवेचन कथा की रोचकता है। प्रारम्भ से अन्त तक वह अन्त संघर्ष में दिखाई पड़ता है। रमानाथ के चरित्र की यही सजीवता है।

आनुषंगिक कथाओं में रतन और इन्दु भूषण की कथा प्रमुख है जो कथा को उभार प्रदान करती है, जालपा और रमा की मूलकथा के साथ साथ चलती है किन्तु इनका अधिक विस्तार एवं व्याप्ति कथानक में शिथिलता ला देते हैं।

दूसरी कथा उपन्यास के सशक्त पात्र देवीदीन और जग्गो की है, जिसका संबंध रमानाथ के कलकत्ते के जीवन से है। रमानाथ जब प्रयाग छोड़ देता है तो मार्ग में देवीदीन मिल जाता है। रमा देवीदीन से प्रभावित होता है और उसे एक सहारा मिल जाता है। कलकत्ते में रमानाथ देवीदीन के ऊपर ही आश्रित है, वहीं रहता है, जीवन यापन का प्रबन्ध करता है। जग्गो का मातृ-सुख प्राप्त करता है, वहीं जालपा भी आकर टिकती है और वहीं से उसके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। देवीदीन और जग्गो का साहचर्य रमानाथ को नवजीवन प्रदान करता है। वही से वह परखता है और अपने को नये जीवन की ओर मोड़ने में सफल होता है।

देवीदीन और जग्गो के जीवन से उपन्यासकार की इस उद्देश्य की भी पूर्ति हो गयी है कि निम्न वर्ग में ही सच्ची सहानुभूति, सहृदयता, पवित्रता एवं मानवता है। वस्तु-संगठन की दृष्टि से देवीदीन की कथा सर्वथा प्रसंगानुकूल बैठती है और रमानाथ की कथा से प्रत्यक्षतः जुटी हुई है।

जोहरा की कथा अपना आदर्शगत स्थान रखती है। जोहरा के चरित्र से रमानाथ का चरित्र अधिक प्रभावित नहीं हुआ अपितु वह स्वयं एक आदर्श बन जाती है। इस कथा से उपन्यासकार को अपने एक आदर्शगत लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

कुछ मिलाकर गति शीलता स्वाभाविकता, एवं घटनाओं तथा पात्रों के संयोजन की दृष्टि से कथानक पूर्ण तथा सुसंगठित एवं शृंखला बद्ध है। उपन्यास अपनी सम्यक परियोजना तथा लक्ष्यपूर्ति में सर्वथा सफल है। कथा-प्रवाह में कहीं कमी नहीं आती, कथा अपने आप परिस्थितियों का निर्माण करती हुई आगे बढ़ती है। कथा की रोचकता और कौतूहल अंत तक बनी रहती है।

समीक्षकों ने कथा संगठन पर कई दृष्टियों से विचार किया है, रमानाथ के कलकत्ते का जीवन विस्तार अनावश्यक मानते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है यदि कथा का विस्तार कलकत्ता तक न होता तो जालपा और रमा के जीवन में न तो परिवर्तन आता और न तो देशभक्तों की गतिविधियों पर ही पूरा विचार हो पाता। इस संबन्ध में भी नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है कि— "एक अन्य उद्देश्य जो इस घटना-क्रम से सिद्ध हुआ है, जालपा के चरित्र परिवर्तन का उद्देश्य है। यदि उपन्यास प्रयाग तक ही सीमित रहता तो कदाचित जालपा का यह परिवर्तन इतने विश्वसनीय रूप से न दिखाया जा सकता। प्रेमचंदजी ने उसके चरित्र-परिवर्तन में कलकत्ते की कहानी का जो उपयोग किया है वह कथा की त्रुटियों को थोड़ा-बहुत कम कर देता है। जालपा ही वह सूत्र है, जो प्रयाग और कलकत्ते की कहानियों को संगठित करता है।"

फिर भी कथानक की कुछ शिथिलताएँ सर्वसाधारण पाठक को खटकती है जैसे इन्द्रभूषण की वार्ताएँ, देवीदीन के लम्बे संस्मरण, रतन का कलकत्ते तक जाना, उपन्यास के अंत में रतन और जोहरा का भी आकर एक जगह रहना और जोहरा का अचानक अंत हो जाना।

अंत में श्री मन्मथ नाथ गुप्त की निम्न पंक्तियाँ कथानक के संबन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो उपन्यास के वस्तु संगठन संबधी पूरे प्रभाव को व्यक्त करती हैं। "प्रेमचंद के उपन्यासों में दो ही उपन्यास यथेष्ट रूप से यथार्थवादी हैं, एक निर्मला और दूसरा गबन। निर्मला के मुक़ाबिले में गबन का कथानक कुछ शिथिल होनेपर भी इस शिथिलता की क्षति-पूर्ति उसके विषय की विस्तृति से हो जाती है।"

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण उपन्यास का आवश्यक तत्व है। पात्रों की भावनाओं विचारों एवं क्रिया कलापों के उतार चढ़ाव से ही कथानक में गतिशीलता आती है। पात्रों का चयन एवं कथानक में उनके क्रिया कलापों का चित्रण कौशल का परिचायक है। चरित्र-चित्रण के लिये व्यापक जीवन की अनुभूतियों की गहराई एवं व्यवहारों की व्यापकता का ज्ञान होना चाहिये। पात्रों के चयन एवं निर्माण के संबन्ध में एलिजाबेथ बोवेन का कहना है—"

पात्र कोई बना नहीं सकता केवल कठपुतली ही बनायी जा सकती है। यह कहना कि पात्रों का निर्माण किया जाता है, मिथ्या है। पात्र तो पहले से रहते हैं। वे ग्रहण किये जाते हैं। उपन्यास-कथा की चेतना में धीरे धीरे वे प्रगट होते हैं—जैसे किसी रेल के डब्बे के धूमिल प्रकाश में सामने बैठा हुआ यात्री धीरे-धीरे हमारे सम्मुख स्पष्ट होता है।"

अपनी-अपनी विशेषताओं एवं समस्याओं के कारण चरित्र भी विविध प्रकार के होते हैं। उपन्यास में चरित्र निम्न प्रकार के माने जाते हैं—

१ व्यक्ति प्रधान (Individual Character)
२ वर्ग प्रधान चरित्र (Typical Character)
३ स्थिर चरित्र (Static Character)
४ गतिशील चरित्र (Kinetic Character)

व्यक्ति प्रधान चरित्रों में अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न ज्ञात पड़ता है। इस प्रकार के चरित्र का उदाहरण 'शेखर' एक जीवनी' का शेखर है।

वर्ग प्रधान चरित्रों में इस प्रकार की तमाम विलक्षणताएँ एवं आचरण रहते हैं जो व्यक्ति विशेष के न होकर पूरे समाज, समुदाय या वर्ग विशेष का होता है। जैसे प्रेमचंदजी का होरी' और 'रमानाथ'। किन्तु शुद्ध रूप से व्यक्तिप्रधान चरित्र नहीं होते वर्गगत प्रभाव व्यक्ति को अवश्य प्रभावित करता है। ऐसा चरित्र विशिष्ट माना जाता है क्यों कि "वर्गयुक्त होने के

कुछ मिलाकर गति शीलता स्वाभाविकता, एवं घटनाओं तथा पात्रों के संयोजन की दृष्टि से कथानक पूर्ण तथा सुसंगठित एवं शृंखला बद्ध है। उपन्यास अपनी सम्यक परियोजना तथा उद्देश्यपूर्ति में सर्वथा सफल है। कथा-प्रवाह में कहीं कमी नहीं आती, कथा अपने आप परिस्थितियों का निर्माण करती हुई आगे बढ़ती है। कथा की रोचकता और कौतूहल अंत तक बनी रहती है।

समीक्षकों ने कथा संगठन पर कई दृष्टियों से विचार किया है, रमानाथ के कलकत्ते का जीवन विस्तार अनावश्यक मानते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है यदि कथा का विस्तार कलकत्ता तक न होता तो जालपा और रमा के जीवन में न तो परिवर्तन आता और न तो देशकाल की गतिविधियों पर ही पूर्ण विचार हो पाता। इस संबन्ध में श्री नन्ददुलारे बाजपेयी का कहना है कि—"एक अन्य उद्देश्य जो इस घटना-क्रम से सिद्ध हुआ है, जालपा के चरित्र परिवर्तन का उद्देश्य है। यदि उपन्यास प्रयाग तक ही सीमित रहता तो कदाचित जालपा का यह परिवर्तन इतने विश्वसनीय रूप में न दिखाया जा सकता। प्रेमचंदजी ने उसके चरित्र-परिवर्तन में कलकत्ते की कहानी का जो उपयोग किया है वह कथा की त्रुटियों को थोड़ा-बहुत कम कर देता है। जालपा ही वह सूत्र है, जो प्रयाग और कलकत्ते की कहानियों को संग्रथित करता है।"

फिर भी कथानक की कुछ शिथिलताएँ सर्वसाधारण पाठक को खटकती हैं जैसे इन्द्रभूषण की वार्ताएँ, देवीदीन के लम्बे संस्मरण, रतन का कलकत्ते तक आना, उपन्यास के अंत में रतन और जोहरा का भी आकर एक जगह रहना और जोहरा का अचानक अंत हो जाना।

अंत में श्री मन्मथ नाथ गुप्त की निम्न पंक्तियाँ कथानक के संबन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो उपन्यास के वस्तु संगठन संबन्धी पूरे प्रभाव को व्यक्त करती हैं। "प्रेमचंद के उपन्यासों में दो ही उपन्यास यथेष्ठ रूप से यथार्थवादी हैं, एक निर्मला और दूसरा गबन। निर्मला के मुकाबिले में गबन का कथानक कुछ शिथिल होनेपर भी इस शिथिलता की क्षति-पूर्ति उसके विषय की विस्तृति से हो जाती है।"

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण उपन्यास का आवश्यक तत्व है। पात्रों की भावनाओं, विचारों एवं क्रिया कलापों के उतार चढ़ाव से ही कथानक में गतिशीलता आती है। पात्रों का चयन एवं कथानक में उनके क्रिया कलापों का चित्रण कौशल का परिचायक है। चरित्र-चित्रण के लिये व्यापक जीवन की अनुभूतियों की गहराई एवं व्यवहारों की व्यापकता का ज्ञान होना चाहिये। पात्रों के चयन एवं निर्माण के संबन्ध में एलिजाबेथ बोवेन का कहना है—" " पात्र कोई बना नहीं सकता केवल कठपुतली ही बनायी जा सकती है।" 'यह कहना कि पात्रों का निर्माण किया जाता है, मिथ्या है। पात्र तो पहले से रहते हैं। वे ग्रहण किये जाते हैं। उपन्यास-कथा की चेतना में धीरे धीरे वे प्रगट होते हैं—जैसे किसी रेल के डब्बे के धूमिल प्रकाश में सामने बैठा हुआ यात्री धीरे धीरे हमारे सम्मुख स्पष्ट होता है।"

अपनी-अपनी विशेषताओं एवं समस्याओं के कारण चरित्र भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। उपन्यास में चरित्र निम्न प्रकार के माने जाते हैं—

१ व्यक्ति प्रधान (Individual Character)
२ वर्ग प्रधान चरित्र (Typical Character)
३ स्थिर चरित्र (Static Character)
४ गतिशील चरित्र (Kinetic Character)

व्यक्ति प्रधान चरित्रों में अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न जान पड़ता है। इस प्रकार के चरित्र का उदाहरण 'शेखर' एक जीवनी' का शेखर है।

वर्ग प्रधान चरित्रों में इस प्रकार की तमाम विलक्षणताएँ एवं आचरण रहते हैं जो व्यक्ति विशेष के न होकर पूरे समाज, समुदाय या वर्ग विशेष का होता है। जैसे प्रेमचंदजी का 'होरी' और 'रमानाथ'। किन्तु शुद्ध रूप से व्यष्टिप्रधान चरित्र नहीं होते वर्गगत प्रभाव व्यक्ति को अवश्य प्रभावित करता है। ऐसा चरित्र विशिष्ट माना जाता है क्योंकि "वर्गयुक्त होने के

कुछ मिलाकर गति शीलता स्वाभाविकता, एवं घटनाओं तथा पात्रों के संयोजन की दृष्टि से कथानक पूर्ण तथा सुसंगठित एवं गृ खला बद्ध है। उपन्यास अपनी सम्यक परियोजना तथा उद्देश्यपूर्ति में सर्वथा सफल है। कथा-प्रवाह में कहीं कमी नहीं आती, कथा अपने आप परिस्थितियों का निर्माण करती हुई आगे बढ़ती है। कथा की रोचकता और कौतूहल अंत तक बनी रहती है।

समीक्षकों ने कथा संगठन पर कई दृष्टियों से विचार किया है, रमानाथ के कलकत्ते का जीवन विस्तार अनावश्यक मानते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है यदि कथा का विस्तार कलकत्ता तक न होता तो जालपा और रमा के जीवन में न तो परिवर्तन आता और न तो देशभक्त की गतिविधियों पर ही पूर्ण विचार हो पाता। इस संबन्ध में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है कि— "एक अन्य उद्देश्य जो इस घटना-क्रम से सिद्ध हुआ है, जालपा के चरित्र परिवर्तन का उद्देश्य है। यदि उपन्यास प्रयाग तक ही सीमित रहता तो कदाचित जालपा का यह परिवर्तन इतने विश्वसनीय रूप से न दिखाया जा सकता। प्रेमचंदजी ने उसके चरित्र-परिवर्तन में कलकत्ते की कहानी का जो उपयोग किया है वह कथा की त्रुटियों को थोड़ा-बहुत कम कर देता है। जालपा ही वह सूत्र है, जो प्रयाग और कलकत्ते की कहानियों को संबधित करता है।"

फिर भी कथानक की कुछ शिथिलताएँ सर्वसाधारण पाठक को खटकती हैं जैसे इन्द्रभूषण की बातायें, देवीदीन के लम्बे संस्मरण, रतन का कलकत्ते तक जाना, उपन्यास के अंत में रतन और जोहरा का भी आकर एक जगह रहना और जोहरा का अचानक अंत हो जाना।

अंत में श्री मन्मथ नाथ गुप्त की निम्न पंक्तियाँ कथानक के संबन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो उपन्यास के वस्तु संगठन संबधी पूरे प्रभाव को व्यक्त करती हैं। "प्रेमचंद के उपन्यासों में दो ही उपन्यास यथेष्ट रूप से यथार्थवादी हैं, एक निर्मला और दूसरा गबन। निर्मला के मुकाबिले में गबन का कथानक कुछ शिथिल होनेपर भी इस शिथिलता की क्षति-पूर्ति उसके विषय की विस्तृति से हो जाता है।"

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण उपन्यास का आवश्यक तत्व है। पात्रों की भावनाओं, विचारों एवं क्रिया कलापों के उतार चढ़ाव से ही कथानक में गतिशीलता आती है। पात्रों का चयन एवं कथानक में उनके क्रिया कलापों का चित्रण कौशल का परिचायक है। चरित्र-चित्रण के लिये व्यापक जीवन की अनुभूतियों की गहराई एवं व्यवहारों की व्यापकता का ज्ञान होना चाहिये। पात्रों के चयन एवं निर्माण के संबन्ध में एलिजाबेथ बोवेन का कहना है—" " पात्र कोई बना नहीं सकता केवल कठपुतली ही बनायी जा सकती है। " यह कहना कि पात्रों का निर्माण किया जाता है, मिथ्या है। पात्र तो पहले से रहते हैं। वे ग्रहण किये जाते हैं। उपन्यास-कथा की चेतना में धीरे धीरे वे प्रगट होते हैं—जैसे किसी रेल के डब्बे के धूमिल प्रकाश में सामने बैठा हुआ यात्री धीरे-धीरे हमारे सम्मुख स्पष्ट होता है।"

अपनी-अपनी विशेषताओं एवं समस्याओं के कारण चरित्र भी विविध प्रकार के होते हैं। उपन्यास में चरित्र निम्न प्रकार के माने जाते हैं—

१ व्यक्ति प्रधान (Individual Character)
२ वर्ग प्रधान चरित्र (Typical Character)
३ स्थिर चरित्र (Static Character)
४ गतिशील चरित्र (Kinetic Character)

व्यक्ति प्रधान चरित्रों में अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ होती हैं जिसके कारण वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न मान पड़ता है। इस प्रकार के चरित्र का उदाहरण 'शेखर' एक जीवनी' का शेखर है।

वर्ग प्रधान चरित्रों में इस प्रकार की तमाम विलक्षणताएँ एवं आचरण रहते हैं जो व्यक्ति विशेष के न होकर पूरे समाज, समुदाय या वर्ग विशेष का होता है। जैसे प्रेमचंद्रजी का होरी' और 'रमानाथ'। किन्तु शुद्ध रूप से व्यक्तिप्रधान चरित्र नहीं होते वर्गगत प्रभाव व्यक्ति को अवश्य प्रभावित करता है। ऐसा चरित्र विशिष्ट माना जाता है क्यों कि "वर्गयुक्त होने के

कारण वह सत्य होता है, व्यक्तित्व युक्त होने के कारण विश्वसनीय (Every great character of fiction, must exhibit, therefore, an intimate combinition of the typical and individual traits. It is through being typical that the character is true, it is through being individual that the character is convincing ")

स्थिर एवं गतिशील चरित्रों में स्थिर चरित्र पूरे उपन्यास में एक ही स्वरूप एवं व्यवहार लेकर बने रहते हैं। किन्तु गतिशील चरित्र परिवर्तनशील होते हैं उनके जीवन-व्यापार, विचारों एवं घटनाओं में उतार चढ़ाव रहता है। इस प्रकार के परिवर्तन में उत्तरोत्तरोन्मुखता या पतनोन्मुखता का प्रश्न नहीं है। गतिशीलता होनी चाहिये। चरित्र में एकरसता और स्थिरता न हो।

पात्रों के चयन के पश्चात चरित्र चित्रण का प्रश्न आता है। चरित्र-चित्रण के संबन्ध में प्रेमचंद जी कहते हैं—"उपन्यास चरित्रों के ही विकास का प्रश्न है। अगर उसमें विकास का दोष है, तो वह उपन्यास कमजोर हो जायगा। कोई चरित्र अंत में भी वैसा ही रहे जैसा वह पहले था—उसके बल, बुद्धि और भावों का विकास न हो, तो वह असफल चरित्र है।"

"उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकास-पूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा।"

चरित्र चित्रण की दो विधियाँ होती हैं—

१ प्रत्यक्ष चित्रण विधि या विश्लेषणात्मक (Analytical)

२, अप्रत्यक्ष चित्रण विधि या अभिनयात्मक (Indirect or Dramatic)

प्रत्यक्ष चित्रणमें उपन्यासकार स्वयं चरित्रों के संबन्ध में कहता चलता है पाठक को किसी प्रकार का विशेष प्रयास उसके चरित्र के सम्बन्ध में जानने के लिये नहीं करना पड़ता।

अप्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण की विशेषता यह है कि इसमें उपन्यासकार को चरित्रों की व्याख्या स्वयं नहीं करनी होती, पाठक स्वयं उनके अन्तर्बाह्य क्रियाकलापों एवं भावनाओं का निरीक्षण करके समझ लेता है। इस प्रकार के चरित्रों के बारे में पाठक, पात्रों के अभिभाषण, उनके क्रियाकलाप और

दूसरे पात्रोंपर उनके पड़ने वाले प्रभाव द्वारा चरित्रों की चारित्रिक विशेषताओं का निश्चय करता है। यह विधि सर्वोत्तम विधि मानी जाती है।

× × ×

गबन के चरित्र महत्वपूर्ण हैं—रमानाथ, जालपा, देवीदीन आदि सभी चरित्र 'वर्गीय चरित्र' हैं। सभी पात्र प्राय: गतिशील एवं चरित्र की दृष्टि से सजीव हैं। ये काल्पनिक चरित्र नहीं हैं। जीवन के यथार्थवादी धरातल पर सर्वत्र इनको हम देख सकते हैं।

जालपा

प्रेमचंद जी ने नारी-पात्रों का चित्रांकन उनके सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर किया है। वातावरण एवं परिस्थितियों के कारण पात्रों के संस्कार एवं मानसिक-विकास उसको जीवन की किसी विशेष दिशा की ओर मोड़ते हैं। उनकी नागरिक नारी का दृष्टिकोण ग्रामीण नारी से सर्वथा भिन्न है।

जालपा प्रेमचंद की विशिष्ट नारी पात्र है। जालपा विवाहिता नारी का रूप है। गोदान की 'धनिया' भी विवाहिता नारी है किन्तु उसका परिवेश शुद्ध ग्रामीण है—ग्रामीण समाज एवं संस्कारों में पली तथा ग्रामीण जीवन की मर्यादाओं में बँधी नारी है।

जालपा एक मध्यवर्गीय परिवार की विवाहिता नारी है। नारी के स्वाभाविक गुणों से युक्त और अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक। जालपा मध्यवर्गीय सामाजिक परिस्थितियों की देन है। जालपा के चरित्र की विशेषतायें निम्न हैं—सर्व प्रथम हम जालपा को

आभूषण प्रियता

उपन्यास में गाँव की एक बालिका के रूप में देखते हैं। मध्यवर्गीय परिवार, माता-पिता की इकलौती पुत्री, स्नेह से भरा हुआ बाल-जीवन। गाँव की लड़कियों के साथ खेलना, दादी से कहानी सुनना, और गुड़ियों को नकली आभूषणों से सजाना यही उसका जीवन था। जालपा का प्रारंभिक जीवन एक ऐसे वातावरण में विरा था, जहाँ आभूषण से प्रेम होना स्वाभाविक था। गाँव और घर का वाता-

कारण, बाल्य-काल से ही उसके जीवन में आभूषण के प्रति प्रेम करने के लिए उत्तर दायी है। उसका पालन-पोषण 'आभूषण मंडित संसार' में हुआ था। इस संबन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—'जालपा को गहना से जितना प्रेम था, कदाचित् संसार की किसी और वस्तु से नहीं था, उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगी तो गहनों ही की चर्चा करती। तेरा दूल्हा तेरे लिए बड़े सुन्दर गहने लायेगा, ठुमुक ठुमुक कर चलेगी।"

बचपन में जालपा ने माँ का चन्द्रहार देखा था उसके मन में चन्द्रहार के प्रति एक स्वाभाविक आकांक्षा थी। जिस आकांक्षा की पूर्ति शादी में आने वाले चढ़ाव के गहने से पूरा करना चाहती थी। शादी में चन्द्रहार न मिलने पर उसके मन का विशेष चोट लगी। जालपा ससुराल पहुँचती है वहाँ भी चन्द्रहार के लिए पति से आग्रह करती है। किसी प्रकार रमानाथ इसकी पूर्ति करता है। अचानक गहना गायब होने के आघात से उसका जीवन परिवर्तित हो जाता है, गहने गायब होने पर बहुत दिनों तक वह मुहल्ले के के महिलाओं से मिलने नहीं जाती है। वस्तुतः रमा और जालपा का प्रेम बहुत कुछ आभूषण प्रेम पर आधारित था, जालपा गहनों को प्यार करती थी रमा उसके रूप और जवानी को। रमा जब गहने लाकर देता है तो वह प्रसन्नता से भर उठती है उसके व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है, रमा की हर सेवाओं का ख्याल रखती और प्रसन्न रहने लगी।

जालपा के रग-रग में स्वाभिमान भरा हुआ है वह अपने को झुका कर किसी भी आकांक्षा की पूर्ति नहीं चाहती। माँ के द्वारा चन्द्रहार भेजने पर उसके आत्म-सम्मान को ठेस लगता है क्योंकि वह माँ की परिस्थितियों को खूब समझती था। अब वह विवाहिता नारी थी

स्वाभिमानिनी

पति और अपने सम्मान को समझने लगी थी। चन्द्रहार देखने पर वह कहती है—प्रेम से यदि वह मुझे एक छल्ला भी दे देता मैं दोनों हाथ से ले लूँ। दान भिखारियों को दिया जाता है, मैं किसी का दान न लूँगी चाहे वह माता ही क्यों न हो?

यही विचित्र सी बात है कि रमा जितना ही अधिक शान-शौकत को दिखाने के लिए ऋण की ओर झुकता है जालपा उतना ही उससे दूर रहना

—

मम

चाहती है,वह नहीं चाहती कि किसी का उसके ऊपर कर्ज रहे। जब रमा एक बार उसे उधार गहना बनवाना चाहता है तो वह सीधे इसका विरोध करती है और कहती है-'नहीं मेरे लिए कर्ज की जरूरत नहीं मैं वेश्या नहीं कि तुम्हें नोच खसोट कर अपना रास्ता लूँ। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है अगर मुझे सारी उम्र बेगहनों के रहना पड़े तो भी मैं कर्ज लेने के लिए न कहूँगी।' जालपा नहीं चाहती कि रमा को किसी प्रकार दूसरों के आगे झुकना पड़े। जब उसे रमाके ऋणका पता चलता है तो वह कहती है-'अगर मैं जानती कि तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है तो मुझे क्या ऐसा शौक चर्राया था कि मुहल्ले भर की स्त्रियों को तांगे पर बैठा-बैठा कर सैर कराने ले जाती। अधिक से अधिक यही होता कि कभी-कभी चित्त दुखी हो जाता पर यह तकाजा तो नहीं सहने पड़ते।”

जालपा एक विवाहिता नारी है। विवाहिता नारी का पति के प्रति कैसी निष्ठा और कर्तव्य के प्रति कैसा आग्रह होना चाहिए वह भलि-भाँति समझती है वह जानती है कि विवाहिता नारी के लिए पति ही उसका सर्वस्व है—वह पति की आशा और आकांक्षा के साथ मरती और जीती है। जालपा रमा का सदैव ध्यान रखती है जब भी वह उदास और चिन्तित दिखायी पड़ता है जालपा उसके दुख को दूर करने की चेष्टा करती है। नारी और पुरुष का स्वाभाविक विश्वास और प्रेम विवाहित जीवन का मूल आधार है। एक दिन जब रमानाथ उदास था तो जालपा पूछ बैठी क्या सच तुम मुझसे प्रेम करते हो?' रमानाथ असमंजस में पड़ गया तो वह पुन: कहने लगी—“बातें बना रहे हो अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम होता तो तुम कभी पता नहीं रखते। तुम्हारे मन में कोई ऐसी बात जरूर है जो तुम मुझसे छिपा रहे हो। कई दिनों से देख रही हूँ कि तुम चिन्ता में डूबे हो। मुझसे क्यों नहीं कहते? जहाँ विश्वास नहीं है, वहाँ प्रेम कैसे रह सकता है।”

पति प्रेम और सेवा

जालपा सदैव पति के साथ ईमानदार रहती है। वह हमेशा पति के सुख-दुख के साथ चलने वाली नारी है। कर्ज के प्रसंग आने पर जालपा कहती है। 'मुझे तुम्हारे साथ जीना मरना है। अगर मुझे सारी जिन्दगी बे गहनों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूँगी' एक बार जब रमानाथ

चरण, बाल्य-काल से ही उसके जीवन में आभूषण के प्रति प्रेम करने के लिए उत्तर दायी है। उसका पालन-पोषण 'आभूषण मंडित संसार' में हुआ था। इस संबन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—"जालपा को गहना से जितना प्रेम था, कदाचित् संसार की किसी और वस्तु से नहीं था, उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगी तो गहनों ही की चर्चा करती। तेरा दूल्हा तेरे लिए बड़े सुन्दर गहने लायेगा, ठुमुक ठुमुक कर चलेगी।"

बचपन में जालपा ने माँ का चन्द्रहार देखा था उसके मन में चन्द्रहार के प्रति एक स्वाभाविक आकांक्षा थी। जिस आकांक्षा की पूर्ति शादी में आने वाले चढ़ाव के गहने से पूरा करना चाहती थी। शादी में चन्द्रहार न मिलने पर उसके मन को विशेष चोट लगी। जालपा ससुराल पहुँचती है वहाँ भी चन्द्रहार के लिए पति से आग्रह करती है। किसी प्रकार रमानाथ इसकी पूर्ति करता है। अचानक गहना गायब होने के आघात से उसका जीवन-परिवर्तित हो जाता है, गहने गायब होने पर बहुत दिनों तक वह मुहल्ले के महिलाओं से मिलने नहीं जाती है। वस्तुतः रमा और जालपा का प्रेम बहुत कुछ आभूषण प्रेम पर आधारित था, जालपा गहनों का प्यार करती थी रमा उसके रूप और जवानी को। रमा जब गहने लाकर देता है तो वह प्रसन्नता से भर उठती है उसके व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है, रमा की हर सेवाओं का ख्याल रखती और प्रसन्न रहने लगी।

जालपा के रग-रग में स्वाभिमान भरा हुआ है वह अपने को झुका कर किसी भी आकांक्षा की पूर्ति नहीं चाहती। माँ के द्वारा चन्द्रहार भेजने पर उसके आत्म-सम्मान को ठेस लगता है क्योंकि वह माँ की परिस्थितियों को खूब समझती थी। अब वह विवाहिता नारी भी पति और अपने सम्मान को समझने लगी थी। चन्द्रहार देखने पर वह कहती है—'प्रेम से यदि वह मुझे एक छल्ला भी दे दे तो मैं दोनों हाथ से ले लूँ। दान भिखारियों को दिया जाता है, मैं किसी का दान न लूँगी चाहे वह माता ही क्यों न हो?

स्वाभिमानिनी

बड़ी विचित्र सी बात है कि रमा जितना ही अधिक शान-शौकत को दिखाने के लिए ऋण की ओर झुकता है जालपा उतना ही उससे दूर रहना

मन

चाहती है, वह नहीं चाहती कि किसी का उसके ऊपर कर्ज रहे। जब रमा एक
बार उसे उधार गहना बनवाना चाहता है तो वह सीधे इसका विरोध करती
है और कहती है–'नहीं मेरे लिए कर्ज की जरूरत नहीं मैं वेश्या नहीं कि तुम्हें
नोच खसोट कर अपना रास्ता लूँ। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना
है अगर मुझे सारी उम्र बेगहनों के रहना पड़े तो भी मैं कर्ज लेने के लिए
न कहूँगी।' जालपा नहीं चाहती कि रमा को किसी प्रकार दूसरों के आगे
झुकना पड़े। जब उसे रमा के गबन का पता चलता है तो वह कहती है–'अगर
मैं जानती कि तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है तो मुझे क्या ऐसा शौक
चर्राया था कि मुहल्ले भर की स्त्रियों को तांगे पर बैठा-बैठा कर सैर कराने
ले जाती। अधिक से अधिक यही होता कि कभी-कभी चित्त दुखी हो जाता
पर यह तकाजा तो नहीं सहने पड़ते।"

जालपा एक विवाहिता नारी है। विवाहिता नारी का पति के प्रति कैसी
निष्ठा और कर्त्तव्य के प्रति कैसा आग्रह होना चाहिए वह भलि-भाँति
समझती है वह जानती है कि विवाहिता नारी के लिए पति ही उसका सर्वस्व
है—वह पति की आशा और आकांक्षा के साथ मरती और जीती है। जालपा
रमा का सदैव ध्यान रखती है जब भी वह उदास
पति प्रेम और सेवा और चिन्तित दिखायी पड़ता है जालपा उसके दुख
को दूर करने की चेष्टा करती है। नारी और पुरुष
का स्वाभाविक विश्वास और प्रेम विवाहित जीवन का मूल आधार है। एक
दिन जब रमानाथ उदास था तो जालपा पूछ बैठी क्या सच तुम मुझसे प्रेम
करते हो?' रमानाथ असमंजस में पड़ गया तो वह पुन कहने लगी—"बातें
बना रहे हो अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम होता तो तुम कभी पर्दा नहीं
रखते। तुम्हारे मन में कोई ऐसी बात जरूर है जो तुम मुझसे छिपा रहे हो।
कई दिनों से देख रही हूँ कि तुम चिन्ता में डूबे हो। मुझसे क्यों नहीं
कहते? जहाँ विश्वास नहीं है, वहाँ प्रेम कैसे रह सकता है।"

जालपा सदैव पति के साथ ईमानदार रहती है। वह हमेशा पति के
सुख-दुख के साथ चलने वाली नारी है। कर्ज के प्रसंग आने पर जालपा
कहती है। 'मुझे तुम्हारे साथ जीना मरना है। अगर मुझे सारी जिन्दगी बे
गहनों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूँगी' एक बार जब रमानाथ

जालपा को प्रसन्न करने के लिए जब रमा गहनों को लेकर घर में पहुँचता है तो जालपा कहती है कि 'क्या तुम समझते हो कि मैं गहने और साड़ियों पर मरती हूँ इन चीजों को लौटा लाओ ? एक दिन जब जालपा को कर्ज को पता चलता है कि तो वह कहती है—'मैं तो भले-बुरे दोनों ही की साथिनी हूँ, भले में तुम चाहे मेरी बात मत पूछो, लेकिन बुरे में तो मैं तुम्हारे गले पड़ूँगी ही। जालपा बार-बार रमा को स्पष्ट होने को कहती है वह जानती है कि पति-पत्नी को एक दूसरे के प्रति स्पष्ट होना चाहिए जालपा स्वयं रमा से स्पष्ट है क्यों कि वह जानती है कि यह पत्नी का धर्म है किन्तु उसे इस बात की ग्लानि भी है कि रमा अपने व्यक्तित्व पर, भावनाओं पर विचारों पर पर्दा डालकर जालपा से मिलता है। वह रमा से स्पष्ट कहती है—"पता हूँ ? मैं तुम्हारी सज्जनता पर मोहित हूँ। अब तुमसे क्या छिपाऊँ, जब यहाँ आयी था यद्यपि तुम्हें अपना पति समझती थी लेकिन कोई बात कहते या करते समय मुझे चिन्ता होती थी कि तुम मुझे पसन्द करोगे कि नहीं। यदि तुम्हारे बदले मेरा विवाह किसी दूसरे पति के साथ होता तो उसके साथ भी मेरा यही व्यवहार होता है—यह पत्नी और पुरुष का रिवाजी नाता है, पर अब मैं तुम्हें गोपियों के कृष्ण से भी न बदलूँगी लेकिन तुम्हारे दिल में अब भी चोर है तुम भी मुझसे किसी-किसी बात में पर्दा रखते हो।'

धैर्य भारतीय नारी की अपनी विशेषता होती है। धैर्य और साहस जालपा के चरित्र की विशेषतायें हैं। वह रमानाथ को सदैव जीवन में सक्रिय और सतर्क रहने का उपदेश देती है। वह सदैव रमानाथ को संकट से बचाने की चेष्टा करती है। इस सम्बन्ध में डा० राम विलास शर्मा का कहना है कि 'यह निर्मला की तरह घुल-घुल कर प्राण देने वाली नहीं है और न सुमन की तरह तैश में आकर जल्दी ही किसी मनमानी राह पर कदम उठाने वाली। उसका चरित्र कठिनाइयों का सामना करते हुये बार बार निखरता रहता है, क्योंकि वह अपनी खामियाँ पहचान सकती है।'"[1]

वह रमा का पता लगाती है, और कलकत्ते पहुँचती है, यहाँ

[1]— प्रेमचंद और उनका युग'—डॉ रामविलास शर्मा—पृष्ठ ९६।

देवीदीन के यहाँ रुकना, रमानाथ को पुलिस एवं कानून से बचने की प्रेरणा देना—यह उसके साहस का ही परिणाम है।

हाई कोर्ट में सबको, गवाही देते समय न्यायालय में रमानाथ कहता है—"जालपा के त्याग, निष्ठा और सत्य प्रेम ने मेरी आँखें खोली हैं।" और जालपा स्वयं एक स्थान पर रमानाथ से कहती है—"मैंने पापों का कुछ प्रायश्चित किया है और शेष जीवन के अंत तक करूँगी। मैं यह नहीं कहती कि भोग विलास से मेरा जी भर गया है या गहने कपड़े से जब गयी या सैर तमाशे से घृणा हो गयी। मेरी अभिलाषाएँ ज्यों की त्यों हैं। पुरुषार्थ से अपने परिश्रम से अपने सदुद्योग से उन्हें पूरा कर सको, तो क्या कहना, लेकिन नीयत खोटी करके, आत्मा को कलुषित करके एक लाख भी लाओ तो मैं ठुकरा दूँगी।"

हृदय की पवित्रता एवं सत्यता

जालपा अपनी भावनाओं एवं कर्त्तव्यों से पवित्र है। किसी भी अनुचित कार्य करने की न तो भावना ही उत्पन्न होती है और न तो रमानाथ को ही किसी अनुचित कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। जब रमानाथ अपनी ऊपरी आमदनी की चर्चा करता है तो वह कहती है—"तो तुम घूस लोगे, गरीबों का गला काटोगे ?" जब रमानाथ पुलिस के अत्याचार से विवश होकर गवाही देने की बात कहता है, तो जालपा कहती है—क्यों नहीं छाती खोलकर खड़े हो गये कि इसे गोली का निशाना बनाओ। पर मैं झूठ नहीं बोलूँगा। क्यों नहीं सिर झुका लिया ? देह के भीतर आत्मा इस लिये रखी गई है कि देह उसकी रक्षा करे इसलिये नहीं कि उसका सर्वनाश कर दे।' पुनः जालपा कहती है—"मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था और आज फिर कहती हूँ कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं है। मैंने समझ लिया कि तुम मर गये तुम भी समझ लो की मैं मर गई। बस जाओ मैं औरत हूँ। मगर कोई धमका कर मुझसे पाप करना चाहे तो चाहे उसे न मार सकूँ पर अपनी गर्दन पर छुरी चला लूँगी। क्या तुममें औरत बराबर भी हिम्मत नहीं है।"

जालपा के हृदय में अपने देश के प्रति स्वाभाविक प्रेम है और देश

द्रोहियों के प्रति तथा देश प्रेम की भावना न रखने वालों के प्रति अत्यधिक घृणा भी है। कलकत्ता पहुँचने पर जब उसे

देश-प्रेम

यह पता चलता है कि रमानाथ कुछ क्रान्तिकारियों के प्रति गवाही देने वाला है तो उसका हृदय अपने पति के प्रति घृणा से भर उठता है।

"वह उससे कहना चाहती थी तुम्हारा धन और वैभव तुम्हें मुबारक हो जालपा उसे पैरों से ठुकराती है। तुम्हारे खून से रंगे हुये हाथों के स्पर्श से मेरी देह में छाले पड़ जायेंगे। जिसने धन और पद के लिये अपनी आत्मा बेच दी उसे मैं मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु भी नहीं, तुम कायर हो! कायर!"

देश भक्त दिनेश की फाँसी की सजा सुनकर व्यग्र हो उठती है और उसके परिवार के लिये हर प्रकार से आर्थिक व्यवस्था करती है। इतना ही नहीं—चंदा तक इकट्ठा करती है।

जालपा का जीवन एक त्यागशील नारी का जीवन है जितना ही उसके हृदय में आभूषण के प्रति प्रेम था उतना ही उसके जीवन में त्याग शीलता

त्यागशीलता

भी कूट-कूट कर भरी हुई थी। जब रमा घर से भाग जाता है तो वह अपने सारे प्रसाधनों को गंगा में प्रवाहित कर देती है और रतन से कहती है—"यही निष्ठुरता मन पर विजय करती है। यदि कुछ दिन पहले निष्ठुर हो जाती तो यह दिन क्यों देखना पड़ता।"

रमा के चले जाने के बाद अपने विलासी जीवन के प्रति असंतोष प्रगट करती है और क्षुब्ध होकर कहती है—'जब तक ये चीजें मेरी आँखों से दूर न हो जायगी, मेरा चित्त शांत न होगा इसी विलासिता ने मेरी यह दुर्गति की है। यह मेरी विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है।' जालपा का चरित्र भारतीय नारी की त्याग शीलता का आदर्श चरित्र है। जब तक उसे अपने परिवार और जीवन के यथार्थ का ज्ञान नहीं रहता तब-तक आभूषण सम्बन्धी नारी की दुर्बलताओं से दूषी जान पड़ती है किन्तु जब उसे सत्यता का पता लग जाता है तो अपने पूर्ण धैर्य और साहस के साथ सब कुछ त्यागकर रमानाथ के जीवन को भी

परिवर्तित कर देती है। जालपा की ही मूल प्रेरणा से रमानाथ का वास्तविक चरित्र निखर सका है। जालपा के चरित्र के संबन्ध में डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं—"जालपा भारत का उभरता हुआ नारीत्व है। वह भविष्य की तूफ़ानों की अग्र सूचना है। उसने वर्तमान की राह पर मज़बूती से पाँव रखा है और भविष्य की तरफ़ वह निश्शंक दृष्टि से देखती है। वह एक नई आग है जो झूठी संस्कृति के कागज़ी फूलों को भस्म कर देती है। वह सदियों की लांछना और अपमान को पहचानने वाली नई शूरता है जिसके आगे कोई बाधा ठहर नहीं सकती। वह हिन्दुस्तान के नये आने वाले इतिहास की भूमिका है, वह इतिहास जिसमें लाखों जालपा एक साथ आगे बढ़ेंगी और ऐसे नारीत्व का चित्र आँकेंगी जिसके सामने अतीत के सभी चित्र फीके लगेंगे।"[1]

जालपा एवं रमा के चरित्र संबन्ध में पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का संकेत है कि "जालपा के चरित्र में कोई मूलभूत विकृति नहीं है। रमानाथ और जालपा दोनों ही वास्तविकता से दूर हैं; दोनों में अन्तर यह है कि जालपा वास्तविकता के समीप पहुँचने का निरन्तर प्रयत्न करती है जब कि रमानाथ उससे सदैव दूर ही भागता रहता है—वह जब तक अँधेरे में है तब प्रकाश के लिये समुत्सुक है और एक बार जब परिस्थितियाँ उसे अच्छी तरह झकझोर कर वस्तु स्थिति का आभास दे देती हैं, तब वह अपने जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ करता है।"

रमानाथ

रमानाथ इस उपन्यास का प्रधान चरित्र है। उपन्यास की घटनाएँ उसी के जीवन के आस-पास घूमती हैं। रमानाथ न केवल वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है अपितु वैयक्तिक गुणों के कारण एक 'टाइप' बनकर भी सामने आता है। रमानाथ के चरित्र से व्यक्ति के एक 'टाइप' और 'क्लास' दोनों का काम पूरा हो जाता है—उपन्यासकार की यह विशेषता है।

रमानाथ मध्यवर्गीय परिवार के नवयुवक का प्रतिनिधित्व करता है। प्रयाग निवासी दयानाथ का पुत्र है। दयानाथ के

1 प्रेमचन्द और उनका युग—डॉ० रामविलास शर्मा पृष्ठ ७१।

द्रोहियों के प्रति तथा देश प्रेम की भावना न रखने वालों के प्रति अत्यधिक घृणा भी है। कलकत्ता पहुँचने पर जब उसे यह पता चलता है कि रमानाथ कुछ क्रांतिकारियों के प्रति गवाही देने वाला है तो उसका हृदय अपने पति के प्रति घृणा से भर उठता है।

देश-प्रेम

"वह उससे कहना चाहती थी तुम्हारा धन और वैभव तुम्हें मुबारक हो जालपा उसे पैरों से ठुकराती है। तुम्हारे खून से रंगे हुये हाथों के स्पर्श से मेरी देह में छाले पड़ जायेंगे। जिसने धन और पद के लिये अपनी आत्मा बेच दी उसे मैं मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु भी नहीं, तुम कायर हो! कायर!"

देश भक्त दिनेश की फाँसी की सजा सुनकर व्यग्र हो उठती है और उसके परिवार के लिये हर प्रकार से आर्थिक व्यवस्था करती है। इतना ही नहीं—चंदा तक इकट्ठा करती है।

जालपा का जीवन एक त्यागशील नारी का जीवन है जितना ही उसके हृदय में आभूषणों के प्रति प्रेम था उतना ही उसके जीवन में त्याग शीलता भी कूट-कूट कर भरी हुई थी। जब रमा घर से भाग जाता है तो वह अपने सारे प्रसाधनों को गंगा में प्रवाहित कर देती है और रुदन से कहती है—"मेरी निष्ठुरता मन पर विजय करती है। यदि कुछ दिन पहले निष्ठुर हो जाती तो यह दिन क्यों देखना पड़ता।"

त्यागशीलता

रमा के चले जाने के बाद अपने विलासी जीवन के प्रति असंतोष प्रगट करती है और क्षुब्ध होकर कहती है—'जब तक ये चीजें मेरी आँखों से दूर न हो जायगी, मेरा चित्त शांत न होगा इसी विलासिता ने मेरी यह दुर्गति की है। यह मेरी विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है।' जालपा का चरित्र भारतीय नारी की त्याग शीलता का आदर्श चरित्र है। जब तक उसे अपने परिवार और जीवन के यथार्थ का ज्ञान नहीं रहता तब-तक आभूषण सम्बन्धी नारी की दुर्बलताओं से दबी जान पड़ती है किन्तु जब उसे सत्यता का पता लग जाता है तो अपने पूरे धैर्य और साहस के साथ सब कुछ त्यागकर रमानाथ के जीवन को भी

पड़े हैं। जालपा की फटकार सुनकर वह अपना बयान वापस लेने का निश्चय कर लेता है। उसके चरित्र में काफी परिवर्तन होता है।"[1]

मिथ्याभिमान

रमा अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने को ऊँचा साबित करने का प्रयत्न करता है जब कि वास्तविकता कुछ और रहती है। विवाह के अवसर पर दिखावे की शान-शौकत सराफे के यहाँ से उधार आभूषण ले आना, रतन की पार्टी के लिए लोगों से वस्तुएँ माँग कर घर सजाना और प्रबन्ध करना ये सब कार्य उसके मिथ्याभिमान के प्रमाण स्वरूप हैं। जब जालपा उसके घर प्रथम बार आयी थी तभी से उसने जमींदारी, बैंक के रुपये और घर खर्च के बारे में झूठा विवरण प्रस्तुत कर दिया था।

अपने मिथ्याभिमान को बनाये रखने के लिए और आडम्बर प्रिय होने के कारण वह हमेशा वास्तविकता से अपने को दूर रखना चाहता है। रमानाथ का निश्चय नहीं है कि किस क्षण अपनी मानसिक सुरक्षा के लिए कौन सा झूठ कब बोल देगा। वह माता, पिता, मित्र, पत्नी यहाँ तक की देवीदीन जैसे पवित्र हृदय के सम्मुख भी वास्तविकता नहीं रखता है। जालपा जो उसकी जीवन-संगिनी है और उसके सुख-दुख को समझने वाली भारतीय नारी है उसके साथ भी समझौता नहीं कर पाता। इसी दुर्गुण ने उसके व्यक्तित्व को दूसरी दिशा में मोड़ दिया। यदि वह जालपा से झूठ न बोलता तो गहने की चोरी न करनी पड़ती लोगों की दृष्टि में गिरना न पड़ता घर छोड़ कर भागना न पड़ता और उसका जीवन ही कुछ दूसरा होता।

रमा के झूठ बोलने की प्रवृत्ति का कारण यह मध्यवर्गीय सामाजिक संगठन है जिसमें सम्मान रक्षा के लिए अपने को वास्तविकता से अधिक बताना पड़ता है।

रमानाथ उपन्यास का बहुत ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक चरित्र है। भीतर का अन्तर्द्वन्द्व ही उसके चरित्र को निखारता है वह जीवन और वास्तविकता

१ प्रेमचन्द और उनका युग—डा० रामविलास शर्मा—पृ० ७४

लिये घर के खर्चे को और बोझ को सम्भालना एक कठिन समस्या है फिर भी समाज में मान-मर्यादा बनाये रखने के लिए सजग और सचेष्ट रहते हैं। रमानाथ एक बेकार नवयुवक है, मैट्रिक पास करने के बाद उसे कोई नौकरी नहीं मिलती। मित्रों के साथ सैर सपाटा और टेनिस तथा शतरंज खेलने में सारा समय व्यतीत करता है। घर के बाहर रमानाथ सदैव अपने को वास्तविकता से अधिक दिखाने का प्रयत्न करता है। इन्हीं बेकारी के दिनों में उसकी शादी हो जाती है। विवाह हो जाने पर भी वह अपनी आवश्यकताओं और नये दायित्व को समझ नहीं पाता। अपनी आर्थिक स्थिति के संबंध में झूठी सूचनायें जालपा को देकर अपने आत्मगौरव की तुष्टि करता है। भारतीय नारी पति-भक्त होती है, पति पर विश्वास करने वाली होती है। जालपा भी विश्वास कर लेती है। इसी मनोवैज्ञानिक धरातल पर रमानाथ का पूरा व्यक्तित्व खड़ा होता है और वह निरन्तर पतन के मार्ग पर अग्रसर होता जाता है।

रमानाथ के चरित्र में मध्यवर्गीय जीवन की दुर्बलतायें हैं। इन दुर्बलताओं का ही वह प्रतिनिधित्व करता है। बाह्य आडम्बर और दिखावेपन के कारण उसका व्यक्तित्व उपन्यास में शिथिल हो गया है। अपनी बनाई हुई भावना जाल में फँसता है और जीवन में किसी अवसर

दुर्बल व्यक्तित्व का चरित्र

पर जमकर खड़ा नहीं हो पाता। परिस्थितियों से समझौता और संघर्ष करना वह जानता ही नहीं जब भी कोई नई परिस्थिति सामने आती है तब वह उससे हटकर सोचता है यही कारण है कि रमानाथ बराबर आर्थिक संकट से घिरा हुआ कमजोर व्यक्तित्व सिद्ध होता है। उसमें दूरदर्शिता का अभाव है। डा० राम विलास शर्मा का कहना है "यह शहरी मध्यम वर्ग की कमजोरियों का प्रतीक है। सचाई और आत्म सम्मान से ज्यादा महत्व उसकी नजरों में झूठी मान-मर्यादा का है। उसके पतन का इतिहास इस झूठी मर्यादा वाले समाज के पतन का इतिहास है। फिर भी वह दोषों ही पापों का भन्डार नहीं है। वह सचाई की जिन्दगी बसर कर सकता था, इसकी चाह उसमें है लेकिन इसके लिये उसमें मनोबल का अभाव है, वह झूठ बोलता है, बहाने बनाता है, फिर अपनी नीचता पर रोता है। यही इन्सानियत के अंकुर उसके हृदय में दबे

लिये घर के खर्चे को और बोझ को सम्भालना एक कठिन समस्या है फिर भी समाज में मान-मर्यादा बनाये रखने के लिए सजग और सचेष्ट रहते हैं। रमानाथ एक बेकार नवयुवक है, मैट्रिक पास करने के बाद उसे कोई नौकरी नहीं मिलती। मित्रों के साथ सैर सपाटा और टेनिस तथा शतरंज खेलने में सारा समय व्यतीत करता है। घर के बाहर रमानाथ सदैव अपने को वास्तविकता से अधिक दिखाने का प्रयत्न करता है। इन्हीं बेकारी के दिनों में उसकी शादी हो जाती है। विवाह हो जाने पर भी वह अपनी आवश्यकताओं और नये दायित्व को समझ नहीं पाता। अपनी आर्थिक स्थिति के संबंध में झूठी सूचनायें जालपा को देकर अपने आत्मगौरव की तुष्टि करता है। भारतीय नारी पति-भक्त होती है, पति पर विश्वास करने वाली होती है। जालपा भी विश्वास कर लेती है। इसी मनोवैज्ञानिक धरातल पर रमानाथ का पूरा व्यक्तित्व खड़ा होता है और वह निरन्तर पतन के मार्ग पर अग्रसर होता जाता है।

रमानाथ के चरित्र में मध्यवर्गीय जीवन की दुर्बलतायें हैं। इन दुर्बलताओं का ही वह प्रतिनिधित्व करता है। बाह्य आडम्बर और दिखावेपन के कारण उसका व्यक्तित्व उपन्यास में शिथिल हो गया है। अपनी बनाई हुई भावना जाल में फँसता है और जीवन में किसी अवसर

दुर्बल व्यक्तित्व का चरित्र

पर जमकर खड़ा नहीं हो पाता। परिस्थितियों से सम झौता और संघर्ष करना वह जानता ही नहीं जब भी कोई नई परिस्थिति सामने आती है तब वह उससे हटकर सोचता है यही कारण है कि रमानाथ बराबर आर्थिक संकट से घिरा हुआ कमजोर व्यक्तित्व सिद्ध होता है। उसमें दूरदर्शिता का अभाव है। डा० राम विलास शर्मा का कहना है "वह शहरी मध्यम वर्ग की कमजोरियों का प्रतीक है। सचाई और आत्म सम्मान से ज्यादा महत्व उसकी नजरों में झूठी मान-मर्यादा का है। उसके पतन का इतिहास इस झूठी मर्यादा वाले समाज के पतन का इतिहास है। फिर भी वह दोनों ही पापों का मन्डार नहीं है। वह सचाई की जिन्दगी बसर कर सकता था, इसकी चाह उसमें है लेकिन इसके लिये उसमें मनोबल का अभाव है, वह झूठ बोलता है, बहाने बनाता है, फिर अपनी नीचता पर रोता है। यही इन्सानियत के अंकुर उसके हृदय में दबे

पड़े हैं। जालपा की फटकार सुनकर वह अपना बयान वापस लेने का निश्चय कर लेता है। उसके चरित्र में काफी परिवर्तन होता है।"[1]

रमा अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने को ऊँचा साबित करने का प्रयत्न करता है जब कि वास्तविकता कुछ और रहती है। विवाह के अवसर पर दिखावे की शान शौकत सराफे के यहाँ से उधार आभूषण ले आना, रतन की पार्टी के लिए लोगों से वस्तुएँ माँग कर घर सजाना और प्रबन्ध करना ये सब कार्य उसके मिथ्याभिमान के प्रमाण स्वरुप हैं। जब जालपा उसके घर प्रथम बार आयी थी तभी से उसने जमीदारी, बैंक के रुपये और घर सम्पत्ति के बारे में झूठा विवरण प्रस्तुत कर दिया था।

मिथ्याभिमान

अपने मिथ्याभिमान को बनाये रखने के लिए और आडम्बर प्रिय होने के कारण वह हमेशा वास्तविकता से अपने को दूर रखना चाहता है। रमानाथ का निश्चय नहीं है कि किस क्षण अपनी मानसिक सुरक्षा के लिए कौन सा झूठ कब बोल देगा। वह माता, पिता, मित्र, पत्नी यहाँ तक की देवीदीन जैसे पवित्र हृदय के सम्मुख भी वास्तविकता नहीं रखता है। आलपा जो उसकी जीवन-संगिनी है और उसके सुख-दुख को समझने वाली भारतीय नारी है उसके साथ भी समझौता नहीं कर पाता। इसी दुर्गुण ने उसके व्यक्तित्व को दूसरी दिशा में मोड़ दिया। यदि वह जालपा से झूठ न बोलता तो गहने की चोरी न करनी पड़ती लोगों की दृष्टि में गिरना न पड़ता घर छोड़ कर भागना न पड़ता और उसका जीवन ही कुछ दूसरा होता।

रमा के झूठ बोलने की प्रवृत्ति का कारण वह मध्यवर्गीय सामाजिक सगठन है जिसमें सम्मान रक्षा के लिए अपने को वास्तविकता से अधिक बताना पड़ता है।

रमानाथ उपन्यास का बहुत ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक चरित्र है। भीतर का अन्तर्द्वन्द्व ही उसके चरित्र को निखारता है यह जीवन और वास्तविकता

---

१ प्रेमचंद और उनका युग—डा० रामविलास शर्मा-पृष्ठ ७४

को संदेह की दृष्टि से देखता है। कलकत्ते में जब पुलिस उसका पीछा करती
है तो वह संशय से भर उठता है और अपनी
शंकालु प्रवृत्ति के कारण ही पुलिस के हाथों फँसता है।

संशय एवं भय

रमा का चरित्र एक कायर का चरित्र है जिसके पास
न तो साहस है और न शक्ति। लगता है किसी अज्ञात मानसिक प्रेरणा से
उसका व्यवहार आगे बढ़ता है। उपन्यास के अन्त में डूबते हुए प्राणियों
की प्राण रक्षा के लिए रमानाथ तैयार नहीं होता क्योंकि उसमें त्याग की
भावना ही नहीं है।

कुल मिलाकर रमानाथ का चरित्र एक ऐसे कायर युवक का है जिसके
व्यक्तित्व में इच्छा-शक्ति के अभाव के कारण परिस्थितियों से लड़ने की
ताकत नहीं है। जीवन से भागकर सुख और शान्ति प्राप्त
करने की चेष्टा करता है। कभी भी किसी परिस्थिति

पलायनवादी

से समझौता नहीं करना चाहता। विपरीत परिस्थितियों
से लड़ने, संघर्ष करने के स्थान पर झुक जाता है और आत्म समर्पण कर
देता है। पुलिस की साधारण धमकी उसके जीवन में कितना बड़ा मोड़ ला
। है। परिस्थितियों में उलझने के कारण ही वह कलकत्ते भाग जाता
। अपनी अस्थिरता के कारण किसी बात पर टिक नहीं पाता और
रिस्थितियों से भयभीत होकर भाग खड़ा होता है। यह व्यवहार उसकी
लायनवादी मनोवृत्ति का द्योतक है।

रमानाथ परिस्थितियों का दास है। परिस्थितियों के दबाव के कारण
ो जीवन को गलत दिशा में मोड़ देता है। पूरे उपन्यास में वह अपने
को कहीं बेईमान बनने देना नहीं चाहता, परिस्थितियाँ के हाथ का खिलौना
बन जाता है जो उसे बेईमान सिद्ध कर देती हैं।

परिस्थितियों का दास

दयानाथ की ओर से ही उसे चोरी की प्रेरणा मिलती
है। जालपा की जिद से उसे गहने खरीदने
पड़ते हैं और झूठे मिथ्या-गौरव को बनाये रखने के लिये सराफे के बीच
अपने को गिराना नहीं चाहता, इसके लिये वह प्रयत्न भी करता है।
कार्यालय से रुपया घर ले आना उसकी बुरी नियत का प्रतीक नहीं है।
अचानक रतन रुपया ले आती है और रमानाथ उसे पूरा नहीं कर पाता।

कम

यह घटना ही कहानी का दूसरा रूप धारण कर लेती है। जब पुलिस दुबारा
उसे फँसाने की चेष्टा करती है तब उसकी आँखें खुल जाती हैं और उसमें
नयी स्फूर्ति आ जाती है। वह अपनी पुरानी भावनाओं में परिवर्तन कर देता
है। और अपने नये निश्चय को बताने के लिए जालपा के पास दौड़ पड़ता
है जालपा को सुना कर कहता है "मैंने अब सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाने
का निश्चय कर लिया है इसी इरादे से इस वक्त चल पड़ा हूँ, मेरी वजह
से इनको (जालपा को) इतने कष्ट हुए इसका मुझे खेद है। मेरी अक्ल
पर पर्दा पड़ा हुआ था। स्वार्थ ने मुझे अंधा कर रखा था प्राणों के मोह
ने, कष्टों के भय ने बुद्धि हर ली थी कोई ग्रह सिर पर सवार था। इनके
अनुष्ठानों ने उस ग्रह को शान्त कर दिया। शायद दो चार साल के लिए
सरकार की मेहमानी खानी पड़े। इसका भय नहीं, जीता रहा तो फिर
भेंट होगी। मेरी बुराइयों को माफ करना और मुझे भूल जाना। तुम
भी देवी दादा और दादी मेरे अपराध क्षमा करना। तुम लोगों ने
जो मेरे ऊपर दया की है, वह मरते दम तक न भूलूँगा, अगर जीता
लौटा तो शायद तुम लोगों की कुछ सेवा कर सकूँ। मेरी तो जिन्दगी
सत्यानाश हो गयी। न दीन का हुआ और न दुनियाँ का। कुछ भी कह देता
कि उसके गहने मैंने चुराये सराफे को देने के लिए रुपये न थे। गहने
लौटाना जरूरी था। इसलिए यह कुकर्म करना पड़ा। उसी का फल आज
तक भोग रहा हूँ और शायद जब तक प्राण न निकल जायेंगे, भोगता
रहूँगा। अगर उसी वक्त सफाई से सारी कथा कह दी होती, तो चाहे उस
वक्त इन्हें बुरा लगता। लेकिन यह विपत्ति सिर पर न आती। तुम्हें म
मैंने धोखा दिया था, दादा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। कायस्थ हूँ। तुम जै
देवता से मैंने कपट किया। न जाने इसका क्या दंड मिलेगा। सब कुछ म
करना। बस, यही कहने आया था।"

रमानाथ की आत्मा शुद्ध एवं हृदय पवित्र है, लेकिन उसमें इच्छा श
का इतना अभाव है कि परिस्थितियों के सम्मुख विवश हो जाता
परिस्थितियाँ उसको गलत दिशा की ओर मोड़ देती हैं और निरन्तर वि
चलती है।

देवीदीन

देवीदीन का चरित्र इस उपन्यास का समसे अधिक प्रभावशाली सशक्त चरित्र है। हृदय की विशालता, मानव प्रेम, एवं परोपकार की भावना उसके आदर्श चरित्र हैं जो उसे निम्न वर्ग का होते हुए भी आदर्श के धरातल पर खड़ा करते हैं। देवीदीन समाज का एक जागरूक व्यक्तित्व है जिसको सामाजिक तथ्यों का अनुभव है।

देवीदीन जाति का खटिक है उसकी पत्नी का नाम जग्गो है, बुढ़िया दुकान चलाती है और देवीदीन भी उसके साथ काम करता है, पति पत्नी दोनों का जीवन सरल और निष्कपट है और दोनों में अपूर्व प्रेम है। देवीदीन शिक्षित नहीं है फिर भी शिक्षा के प्रति उसके मन में आदर की भावना है। जीवन और राजनीति दोनों के सम्बन्ध में पर्याप्त-ज्ञान एवं अनुभव रखता है। वृद्धावस्था में भी पढ़ने की ओर उसकी अभिरुचि जागरित होती है और रमानाथ ऐसे व्यक्ति को पाकर उसकी इस अभिरुचि और बल मिलता है। देवीदीन के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—'थोड़ी-सी हिन्दी जानता था बैठा-बैठा रामायण, तोता मैना रामलीला या माता मरीयम की कहानी पढ़ा करता था। जब से रमा आ गया है बूढ़े को अंग्रेजी पढ़ने का शौक हो गया है। सबेरे ही प्राईमर लेकर बैठ जाता और नौ दस बजे तक अक्षर पढ़ता रहता।"

देवीदीन स्वभाव से उन्मुक्त और जीवन में रुचि लेनेवाला व्यक्ति है। हास्य उत्पन्न करने के लिये अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कहता है—"बुढ़िया भी जीती है। देखें हम दोनों में पहले कौन चलता है? वह कहती है कि पहले मैं जाऊँगी, मैं कहता हूँ पहले मैं जाऊँगा। देखो किसकी टेक रहती है।" इसके अलावा भी कई प्रसंग हैं जहाँ हास्य की सृष्टि करता हुआ व्यक्त होता है। देवीदीन की हास्यप्रियता के संबंध में प्रेमचन्दजी लिखते हैं—"वह दिल खोलकर हँसता है और जिन्दगी की असंगतियों को अपनी पैनी निगाह से देखकर वह हँसी की थोड़ा-सी सामग्री भी हाथ से नहीं जाने देता।"

देवीदीन अंगरेजी का मजाक करते हुए रमानाथ से कहता है—भैया तुम्हारी अंगरेजी बड़ी बिकट है। एस-आई-आर 'सर' होता है तो पी-आई-

टी 'पिट' क्यों हो जाता है। 'जिस दिन प्राईमर खतम होगी, महावीर जी को सवासेर लड्डू चढ़ाऊँगा। पराई-मर का मतलब है, पराई स्त्री मर जाय। मैं कहता हूँ, हमारी मर, पराई मरने से क्या सुख ?"

देवीदीन मानव के सुख दुःख की समान अनुभूति रखता है। मानवता के प्रति उसके मन में अपार सहानुभूति है। स्नेह और मानवता के कारण ही वह रमा की ओर उन्मुख होता है और अपने घर ले आता है। जब तक रमानाथ को जग्गो का पुत्र स्नेह नहीं प्राप्त होता तब तक देवीदीन बराबर रमा के सुख दुःख का ख्याल रखता है।

देवीदीन का चरित्र एक निर्भीक का चरित्र है। वह दूसरों के विचारों से, या धमकियों से डरने और झुकनेवाला व्यक्ति नहीं है। जब रमानाथ उसके यहाँ आकर रहता है तो वह जानता है कि रमानाथ के साथ गबन का कलंक जुड़ा हुआ है फिर भी वह इसको बुरा नहीं मानता है। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है "किसी परदेशी को अपने घर में ठहराना पाप नहीं है। हमें क्या मालूम किसके पीछे पुलिस है। यह पुलिस का काम है पुलिस जाने। मैं पुलिस का मुखबिर नहीं, गोइन्दा नहीं। पुलिस के सामने भी देवीदीन निर्भीकता पूर्वक बातें करता है। जब रमा को छुड़ाने के लिये रुपया लेकर दरोगा के यहाँ पहुँचा, तो दरोगा ने कहा कि रमानाथ बड़े साहब के यहाँ चला गया। यह सुनकर दयीदीन की भौंहें तिरछी हो गइं। बोला—"दारोगा जी, मर्दों की एक बात होती है, मैं तो यही जानता हूँ। मैं रुपये आप के हुक्म से लाया हूँ। आपको अपना कौल पूरा करना पड़ेगा। कह के मुकर जाना नीचों का काम है।" सचमुच पुलिस के सम्मुख इस प्रकार की वाणी में उत्तर देना देवीदीन के निर्भीक व्यक्तित्व का द्योतक है।

देवीदीन निम्नवर्ग का होते, हुये भी मानवीय उच्चतम आदर्शों का प्रतीक, राष्ट्रीय विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला उपन्यास का सबसे प्रभावशाली, जीवंत सजग गतिशील और जागरूक पात्र है।

देवीदीन राष्ट्रीय विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करता है। देश-प्रेम के नाम पर वह अपने दोनों बेटों को अर्पण कर देता है। अपने बेटों के बलिदान की कहानी रमानाथ से इस प्रकार व्यक्त करता है।" ओह लग गई गारे उनपर घोड़े चढ़ा लेते थे पर दोनों चट्टान की तरह डट जाते थे

आखिर जब इस तरह कुछ बस न चला तो सबों ने डंडों से पीटना शुरू किया। ...दोनों को लोगों ने उठाकर अस्पताल भेजा। उस रात को दोनों सिधार गये, तुम्हारे चरण छूकर कहता हूँ, भैया, उस वक्त ऐसा जान पड़ता था कि मेरी छाती गजभर की हो गई है, पाँव जमीन पर न पड़ते थे। यही उमंग आती थी भगवान ने औरों को पहले न उठा लिया होता तो इस समय उन्हें भी भेज देता।" इतना बड़ा त्याग करके आत्मगौरव का अनुभव करने वाला व्यक्ति देवीदीन ही है।

वह स्वदेशी आन्दोलन का पक्का समर्थक है। अपने घर के लिये कपड़े यहाँ तक की रोज के व्यवहार के लिये दियासलाई भी विदेशी नहीं खरीदता। देवीदीन देश और देश की वस्तुओं का पक्का समर्थक है। वह जानता है कि विदेशी वस्तुओं को खरीदने पर देश का रुपया बाहर जाता है और देश गरीब होता है। वह एक देश भक्त है, वह किसी कीमत पर देश को गरीब नहीं होने देना चाहता। जब रमानाथ के लिये वह कपड़े ले आता है तो रमानाथ के पूछने पर देवीदीन कहता है—"इधर बीस साल से तो कपड़े विदेशी नहीं लिये, उस की बात नहीं कहता। कुछ बेसी दाम लग जाता है पर रुपया तो देश में ही रह जाता है।......जिस देश में हम रहते हैं जिसका अन्न-जल खाते हैं उसके लिये इतना भी न करें तो जीने को धिक्कार है।"

देवीदीन देश भक्ति की ओट में विलासीपन का कड़ा विरोधी है। वह चाहता कि देशभक्तों और देश की जनता को ईमानदार होना चाहिये। वह कहता है—"तुम बड़े-बड़े आदमियों के किये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है। छोकरियों की भाँति बिसूरने के सिवाय इनसे और कुछ नहीं हो सकता। बड़े-बड़े देश भक्तों को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता। इनके घर में जाकर देखो एक भी देसी चीज न मिलेगी। सबके सब भोग विलास में अन्धे हो रहे हैं। उसपर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे तुम देश का क्या उद्धार करोगे। पहले अपना उद्धार कर लो।—हाँ रोये जाओ, विलायती शराब उड़ाओ बाबा, विलायती मुरब्बे अचार चखो विलायती दवाइयाँ पीयो, पर देश के नाम को रोये जाओ।"[1] देवीदीन केवल स्वदेशी

---

१ गबन—पृष्ठ १०१।

आन्दोलन में ही सर्वस्व निछावर कर के चुप नहीं बैठता। भविष्य के प्रति भी वह जागरूक है। वह चाहता है देश सेवा की भावना व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये नहीं होना चाहिये। देश-प्रेम हमारा कर्त्तव्य है। वह चाहता है कि देश की स्वतंत्रता के बाद शोषण का युग समाप्त हो जाना चाहिये और सब के प्रति सामाजिक न्याय की भावना होनी चाहिये। उस समय के सफेद पोश नेताओं का चित्र खिंचते हुये देवीदीन कहता है —

'एक बार यहाँ भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर खड़े होकर खूब उछले कूदे। जब वह नीचे आये तो मैंने पूछा —"साहब सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो उसका कौन सा रूप तुम्हारे सामने आता है तुम भी अंग्रेजों की तरह बड़ी तलब लोगे? तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ बनाये घूमोगे। इस सुराज से देश का कल्याण क्या होगा? तुम्हारी और तुम्हारे भाई बन्दों की जिन्दगी भले ही आराम और ठाठ से गुजरे पर देश को तो कोई फायदा न होगा। तुम दिन में चार बार खाना चाहते हो और वह भी बढ़िया माल। गरीब किसान को एक जून रूखा चबेना भी नहीं मिलता। उसका रक्त चूस करके सरकार तुम्हें हुद्दे देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है। अभी तुम्हारा राज्य नहीं है, तब तो तुम भोग विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज हो जायगा, तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी जाओगे।"'[1]

रतन

रतन भारतीय नारी समाज की एक मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक समस्या है। भारतीय समाज में अवस्था का बिना विचार किये हुए ही पति को सर्वस्व मानकर गृहिणी का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। पति ही उसका सबसे प्रिय है, पति के सुख के साथ सुख और दुःख के साथ दुःख व्यक्त करना पड़ता है। रतन ६० वर्षीय वृद्ध इन्दुभूषण की नवयुवती स्त्री है। इन्दुभूषण ऐडवोकेट हैं, धन वैभव से सम्पन्न किन्तु शरीर से अस्वस्थ और बीमार रहने वाले व्यक्ति हैं। इस अवस्था में रतन के साथ शादी होती

१ गबन—पृष्ठ १७२।

है और रतन चुपचाप मौन भाव से ज़िन्दगी को आगे लेकर बढ़ती है। वह भारतीय गृहिणी का रूप लेकर उपस्थित होती है। पति की प्रसन्नता और पति का सुख ही उसके जीवन का आसरा है। जब जालपा रतन से उनके सम्बन्ध में पूछती है तो रतन कहती है—"मुझे तो कभी ख़याल भी नहीं आया यद्यपि मैं नवयुवती हूँ, और वे बूढ़े। मेरे हृदय में जितना प्रेम है, जितना अनुराग है, वह सब उनके ऊपर अर्पण कर दिया। अनुराग यौवन या रूप या धन से उत्पन्न नहीं होता। मेरे ही कारण वे इस अवस्था में इतना परिश्रम कर रहे हैं और दूसरा है ही कौन। क्या यह छोटी बात है?" रतन पति सेवा में सदैव अनुरक्त रहती है। वकील साहब की चिन्ता से उसका हृदय सदैव दुःखी रहता। उनको बीमार देखकर कहती है—"अगर कोई मेरा सर्वस्व लेकर भी इन्हें अच्छा कर दे कि इस बीमारी की जड़ टूट जाय तो मैं ख़ुशी से दे दूँगी।"

रतन उच्च मध्य वर्ग की नारी है। जालपा की भाँति वह भी आभूषण प्रिय है। जालपा के गहनों को देखकर रतन भी नये कंगन बनवाती है। जब जालपा रतन को कंगन देती है तो रतन कहती है —"इसे तुम्हारी निशानी समझूँगी बहुत दिनों के बाद मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई।" रतन की आभूषणप्रियता का दूसरा चित्र वह है जब वकील साहब चेक काटकर हार रख लेने के लिये कहते हैं। "हार प्राप्त हो जाने पर रतन का मुख गर्व और उल्लास से भर उठा। मानो उसे संसार की सम्पत्ति मिल गई हो।'

रतन एक सहृदय नारी है। जालपा की हर प्रकार से सहायता करती है और मैत्री निर्वाह की चेष्टा करती है। जालपा के घर आने जाने में उसे कोई संकोच नहीं। मैत्री को वह स्वाभाविक आकर्षण समझती है जो त्याग पर आधारित होता है। एक स्थान पर वह जालपा से कहती है—'मैत्री परिस्थितियों का विचार नहीं करती है अगर यही विचार बना रहे तो समझ लो मैत्री है भी नहीं। मैंने तो यही समझा था कि तुम्हारे साथ जीवन के शेष जीवन काट दूँ। लेकिन तुम अभी से चेतावनी दिये देती हो।"

रतन के हृदय में भारतीय-समाज में विधवा के प्रति होने वाले अन्याय के प्रति भयंकर असंतोष की भावना है। अपने भतीजे मणिभूषण द्वारा

तिरस्कृत होने और सम्पत्ति में वितरण ठीक से न होने के सम्बन्ध में रतन यह भावना प्रकट करती है—" "…न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था। अगर ईश्वर कहीं है और उसके यहाँ कोई न्याय होता है, तो एक दिन उसी के सामने उस पापी से पूछूँगी, क्या तेरे घर में माँ बहनें न थीं? तुझे उसका अपमान करते लज्जा न आई? अगर मेरी जबान में इतनी ताकत होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुँचती, तो सब स्त्रियों से कहती—बहनों किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना, तो जब तक अपना घर अलग न बनालो, चैन की नींद मत सोना। ""परिवार तुम्हारे लिये फूल की सेज नहीं, काँटों की शय्या है, तुम्हें पार लगाने वाली नौका नहीं। तुम्हें निगल जाने का जन्तु है।"

कुल मिला करके रतन का चरित्र पवित्र, सरल, परोपकारी एवं पतिव्रता होते हुये भी एक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्या की ओर संकेत करता है। बिना रतन की कथा के भी उपन्यास का घटना क्रम आगे बढ़ सकता था, किन्तु उपन्यासकार को नारी जीवन के मनोविज्ञान से परिचय कराना था। रतन का नवयुवती जीवन सचमुच अपने में एक घुटी हुई समस्या है। भीतर से दबकर भी बाहर से हर प्रकार से समझौता करती है और आदर्श रूप उपस्थित करती है। मैत्रेय के प्रति अत्यधिक झुकाव होना, बच्चों के साथ झूला झूलना ये सारे कार्य उसकी मनोवैज्ञानिक भूख को पूरी करते हैं। दूसरी ओर उपन्यासकार वैधव्य जीवन की दैन्यता और क्लेश को भी व्यक्त करता है। मणिभूषण की सृष्टि केवल इसी को दिखाने के लिये की गई है।

जोहरा

जोहरा का चरित्र नारी जीवन की समस्या के रूप में चित्रित है। चरित्र की दृष्टि से जोहरा का चरित्र अपना अलग महत्व रखता है। यह एक वेश्या नारी के रूप में आती है किन्तु अपने हृदयगत परिवर्तन के कारण आदर्श चरित्र की सृष्टि करती है—जोहरा का चरित्र नारी-जीवन की विवशता का चित्र है।

जोहरा सर्व प्रथम एक वेश्या के रूप में आती है। जो पुलिस के द्वारा रमानाथ को बहलाने के लिये नियुक्त की जाती है। लेकिन जोहरा भी नारी का हृदय रखती है वह रमानाथ की सरलता के प्रति आकर्षित होकर उसका विश्वास प्राप्त करना चाहती है। जोहरा को आदमियों की बड़ी सूक्ष्म-परख है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं:-"जोहरा वेश्या थी उसे अच्छे बुरे सभी तरह के आदमियों से साबिका पड़ चुका था। उसकी आँखों में आदमियों की परख थी।"

पुरुषों की वेश्या समाज के प्रति क्या दृष्टि है जोहरा कहती है-"हकीकत यह है कि जहाँ आप लोग दिल बहलाव के लिये आते है, वहाँ महज, गम गलत करने के लिये, महज आनन्द उठाने के लिये जब आप को वफा की तलाश ही नहीं, तो वह मिले क्योंकर ? लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि हम जितनी बेचारियाँ मर्दों की बेवफाई से अपना आराम चैन खो बैठती है, उसका पता अगर दुनियाँ को चले तो आँखें खुल जाय। यह हमारी भूल है कि तमाशबीन से वफा चाहते है, चील के घोंसले में माँस ढूँढते हैं। पर प्यासा आदमी धुंए की तरफ दौड़े तो मेरे ख्याल में उसका कोई कसूर नहीं।"

जोहरा के हृदय में नारी-प्रणय और कोमलता की भावना है जब तक उसके जीवन में कोई नहीं आया था, तब तक वह विलग थी किन्तु फिर भी वह नारी का जो सुखद प्रेममय जीवन होता है उस ढँग का जीवन चाहती है। रमा को पाकर वह शुद्ध नारी बनने की चेष्टा करती है। रमा के प्रति आकर्षित होकर अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त करती है। जोहरा के प्रणय जीवन का विश्लेषण करते हुए प्रेमचन्द जी लिखते हैं —"रमा में और सब दोष हों, पर अनुराग था। इस जीवन में जोहरा को यह पहिला आदमी मिला था जिसके उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया था। जिसने उससे कोई पर्दा न रखा। ऐसे अनुराग रत्न को वह खोना न चाहती थी।" इस प्रकार जोहरा रमानाथ के प्रति अपनी प्रेम की एकोन्मुखता का परिचय देती है।

जोहरा केवल प्रेम की भूखी थी। वह मानवता के प्रति सम्मान की भावना रखती है।

अन्त में जोहरा अपना जीवन परिवर्तित कर एक त्यागमय जीवन उपस्थित करती है। जहाँ उसके नारी हृदय की करुणा और सेवा भावना का

परिचय मिलता है। रमा और देवीदीन के साथ ही वह भी कलकत्ता छोड़कर प्रयाग चली आती है। यहाँ आकर रतन के प्रति अपनी सेवा भावना व्यक्त करती है।

जोहरा के जीवन का अन्त उसके त्याग भावना को और भी ऊँचा उठा देता है और पाठक के मन पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाता है। एक बार जब पद्द का आनन्द लेने के लिये तट पर तमाशा देख रही थी कि गंगा में एक किश्ती उसको निगाहों के सामने उलट जाती है। एक स्त्री जिसकी गोद में बच्चा था वह भी वह जाती है। जोहरा उनको बचाने के लिये नदी में कूद पड़ती है किन्तु दूसरी लहर आकर जोहरा को आगे की ओर खींच ले जाती है। इस प्रकार जोहरा अपने जीवन का अन्त कर देती है।

जोहरा के परिवर्तित जीवन के सम्बन्ध में प्रेमचंद जी लिखते हैं— "इन चार सालों में जोहरा ने अपनी सेवा, आत्मत्याग, सरल स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लिया था। अपने अतीत को मिटाने के लिये, अपने पिछले दागों को धो डालने के लिये उसके पास इसके सिवाय और क्या साधन था। उसकी सारी कामनायें सारी वासनायें सेवा में लीन हो गई। कलकत्ते में वह विलास और मनोरंजन की वस्तु थी।......यहाँ सभी उसके अपने सत्य मार्गी का सा व्यवहार करते थे। दयानाथ रामेश्वरी को यह कह शान्त कर दिया करता था कि देवीदीन की विधवा यह है। जोहरा ने कलकत्ते में जालपा से केवल रहने की भिक्षा माँगी थी। उसे अपने जीवन से घृणा हो गई थी। जालपा के विशालसमय उदारता ने उसे आत्म शुद्धि के पथ पर डाल दिया, रतन का पवित्र निष्काम जीवन उसे प्रोत्साहित किया करता था।"

जग्गो

जग्गो निम्न वर्ग की एक साधारण स्त्री है जिसमें दया और करुणा की भावना है। पति को प्रेम और रमानाथ को पुत्र-सा स्नेह देती है। रमानाथ के प्रति जब देवीदीन परायेपन की बात करता है तो जग्गो उसके बात को स्वीकार नहीं करती। जग्गो के हृदय की विशालता के सम्बन्ध में रमानाथ कहता है—"कितना पावन मेंचे हैं कितनी विशाल वत्सलता जिसने इन

-लकड़ी के इन दो टुकड़ों को भी शौकत प्रणाम कर लिया है। रमा ने जग्गो -का माया-मोह में डूबी हुई, पैसे पर जान देने वाली कोमल भावनाओं से सर्वथा विहीन समझ रखा है। आज वह समझ सका कि उसका हृदय कितना स्नेहमय, कितना कोमल, कितना मनस्वी है।"

जग्गो एक परिश्रमी औरत है। जग्गो कहती है—"घड़ी पहर रात से चक्की में जुट जाती हूँ और दस बजे रात तक दूकान में खड़ी होती रहती हूँ। खाते पीते १२ बजते हैं तब कहीं चार पैसे दिखाई देते हैं। जग्गो ऐसी गृहिणी है जो घर का पूरा संचालन संभाले हुये है।" देवीदीन कुछ नहीं करता। घर का सारा उत्तरदायित्व और बोझ जग्गो ही सम्भाले हुये है इसके लिये उसे घोर परिश्रम करना पड़ता है। देवीदीन इसमें साथ नहीं देता। देवीदीन के मद्ये-पानी के सम्बन्ध में वह कहती है। "दूसरी औरत होती तो घड़ी भर निबाह न होता। "जो कुछ कमाती हूँ यह मरे में बरबाद कर देता है। कभी एकाध चीज बढ़ा बनता देती हूँ तो यह आँखों में गड़ने लगती है। तानों से छेदने लगता है।"[1] इसके बावजूद भी देवीदीन के दुःख सुख की संगिनी है। देवीदीन की सेवा से कभी भी विरत नहीं होती। पति के प्रति उसके हृदय में स्वाभाविक सम्मान है किन्तु जब कभी वह देवीदीन को झिड़कती है तो यह उसके जातिगत संस्कार को व्यक्त करता है।

जग्गो का हृदय माता का वह विशाल हृदय है, जिसमें पुत्रों के लिये असीम स्नेह का सागर उमड़ता रहता है। अपने दोनों बेटों की मृत्यु के बाद भी वह उनकी स्मृति संजोये हुये है। वह कहती है—"सुख भोगना लिखा होता, तो जवान बेटे चल देते, और इस पीयक्कड़ के हाथों मेरी यह साँसत होती इस ने सुदेशी के झगड़ों में पड़ कर मेरे लाल की जान ली। आओ इस कोठरी में भाई तुम्हें सुन्दर की जोड़ी दिखाऊँ, दोनों इस जोड़ी को पाँच-पाँच सौ हाथ फेरते थे। यह जोड़ी मेरे लालों की जुगल जोड़ी है। यही दोनों मेरे लाल है।"[2] जग्गो के मातृ-हृदय की विशालता का परिचय तब मिलता है जब रमानाथ उसे अम्मा कहने का निश्चय करता है। तब

१ गबन—पृष्ठ १७८। २. पृष्ठ १७८।

"बुढ़िया के शुष्क ज्योतिविहीन, ठंडे कृपण नेत्रों से मोती के से दो बिन्दु निकल पड़े "उसके हृदय में संचित सम्पूर्ण प्रेम माता के स्तन में एकत्र होने वाले दूध की भाँति बाहर निकलने के लिये आतुर हो उठा।" जग्गो के मातृ हृदय का परिचय तब मिलता है जब जालपा, रमा के सम्बन्ध में बुरा भला कहती है तो जग्गो जालपा को समझाती है। "तुम्हें इतना बेलगाम न होना चाहिये था, बहू। दिल पर चोट लगती है, तो आदमी को कुछ नहीं सूझता।"

जग्गो का हृदय पुत्र वत्सल है। वह यह नहीं चाहती कि उसका पुत्र कोई ऐसा काम करे जो असम्मानजनक हो, और बुरा हो। वह सम्मान, न्याय और हृदय की पवित्रता चाहती है। जब रमानाथ पुलिस की ओर से प्राप्त सोने की चार चूड़ियों को प्रसन्न करने के लिये लाता है तो वह बिगड़ जाती है और ज़मीन पर पटक कर कहती है—"जहाँ इतना पाप समा सकता है, वहाँ चार चूड़ियों की जगह नहीं है? भगवान की दया से बहुत चूड़ियाँ पहन चुकी और अब भी सेर दो सेर सोना पड़ा होगा लेकिन जो खाया, पहना अपनी मिहनत की कमाई से, किसी का गला नहीं दबाया। पाप की गठरी सिर पर नहीं लादी, नीयत नहीं बिगाड़ी। उस कोख को आग लगे जिसने तुम जैसे कपूत को जन्म दिया। अगर तुम मेरे लड़के होते तो तुम्हें जहर दे देती।"[1]

जग्गो के हृदय में माता की ममता और सरलता है। जीवन के प्रति ईमानदारी है। वह घोर परिश्रमी स्त्री है जिसे अपने परिश्रम और हृदय की पवित्रता पर पूरा-पूरा विश्वास है।

दयानाथ

दयानाथ मध्यवर्गीय परिवार के गृह स्वामी के रूप में आते हैं जो हृदय से निष्कपट और सरल हैं। रिश्वत के खिलाफ हैं। वे नहीं चाहते कि रिश्वत से कभी भी एक पैसा घर में आवे। रिश्वत के सम्बन्ध में एक बार वह रमानाथ से कहते हैं—"मैं कभी भी एक पैसा हराम का नहीं लिया। तुममें यह आदत कहाँ से आ गई यह मेरे समझ में नहीं आता।" दयानाथ के

१ गबन—पृष्ठ २७६।

सम्बन्ध में प्रेमचन्द यों लिखते हैं "चाहते तो हजारों वसूल करते, पर कभी एक पैसे के भी रवादार नहीं हुए थे।......यह बात भी न थी कि वह बहुत ऊँचे आदर्श के आदमी हों, रिश्वत को हराम समझते थे। शायद इसलिये कि वह अपनी आँखों से इसके कुफल देख चुके थे। किसी को जेल जाते देखा था। किसी को सन्तान से हाथ धोते, किसी को कुव्यसनों के पंजे में फँसते। उन्हें कोई मिसाल न मिलती थी, जिसने रिश्वत लेकर चैन की हो। उनकी यह धारणा हो गई थी कि हराम की कमाई हराम में जाती है। यह बात वह कभी न भूलते।"

दयानाथ का जीवन एक सामान्य नागरिक का जीवन है जो ईमानदारी में विश्वास करते हैं फिर भी मध्यवर्गीय परिवार की दिखावेपन की दुर्बलता से ग्रस्त हैं। रमानाथ की शादी में कर्ज लेकर खर्च करना, जालपा के गहनों को वापस लेने की रमानाथ को प्रेरणा देना दयानाथ के चारित्रिक दुर्बलता का द्योतक है। दयानाथ के कारण रमानाथ एक गलत दिशा में मुड़ जाता है। इससे दयानाथ की विवेक शून्यता का परिचय मिलता है।

रमेश

रमेश रमानाथ का मित्र, स्वभाव से रसीक और शतरंज का खिलाड़ी है। वह एक सामान्य क्लार्क है जिसका जीवन एकरस है उसमें किसी विशेष उतार चढ़ाव का प्रश्न नहीं है। रमेश रिश्वत के सम्बन्ध में अपना विचार रखता है। इस सम्बन्ध में रमेश कहता है—"जिस घर में बहुत आदमी हों वह आदमी क्या कर सकता है। जब तक छोटे आदमियों का वेतन इतना न हो जाएगा कि वह भलमंसी के साथ निर्वाह कर सकें तब तक रिश्वत बन्द न होगी। यह रोटी दाल, घी, दूध तो वह भी खाते हैं फिर एक को ३० रुपये दूसरे को १०० रुपये क्यों देते हो?"

रमेश कर्ज का विरोधी है। रमा को कर्ज न लेने की शिक्षा देता है। "कर्ज से बड़ा दूसरा पाप नहीं। न इससे बड़ी विपत्ति दूसरी है। जहाँ

एक बार मजा चखा कि तुम आये दिन सर्राफ़ की दूकान पर नज़र आओगे। भविष्य के भरोसे पर चाहे जो काम करो पर कर्ज़ कभी मत लो।"

रमेश मित्रता के सम्बन्ध में खरा है और मित्रता में लेन-देन का कट्टर विरोधी है। वह रमानाथ से कहता है—"मैं ने अपने जीवन में दो चार नियम बना लिये हैं और कठोरता से उसका पालन करता हूँ उनमें से एक नियम यह भी है कि मित्रों से लेन-देन का व्यवहार न करूँगा। मित्रों से लेन-देन शुरू हुआ कि वहाँ मन मुटाव होते देर नहीं लगती।"[1]

कथोपकथन

कथोपकथन उपन्यास का वह आवश्यक तत्व है जो पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करता है और कथावस्तु के प्रवाह तथा विकास में सहायक होता है। कथोपकथन के द्वारा ही पात्रों का चरित्र बनता है और कथा के विकास में सहायता मिलती है।

कथोपकथन के माध्यम से व्यक्ति के स्वभाव, विचार, रुचि, देशकाल एवं वातावरण का पता चलता है। उसके द्वारा व्यक्त शब्दावली एवं प्रवाह ही उसके चरित्र का उद्घाटन करती है। बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो पात्र-विशेष के मुँह से अच्छी नहीं लगती और चरित्र के स्तर तथा प्रभाव को कम कर देती हैं।

अतः कथोपकथन स्वाभाविक पात्र एवं परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए। कथोपकथन की यही उपयुक्तता होती है। जहाँ कथोपकथन स्वाभाविकता छोड़ देता है, वहाँ कथानक में शिथिलता आजाती है।

कथोपकथन के अन्तर्गत शब्दों का संगठन एवं वाक्य योजना ही महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद जी कथोपकथन के माध्यम से घटनाओं एवं परिस्थितियों का सुन्दर चित्र उपस्थित करते हैं। वाक्य योजना सुगठित एवं पात्रों के अनुकूल है। हाँ, कहीं-कहीं संवाद लम्बे अवश्य हो गये हैं, जो खटकते हैं। देवीदीन के लम्बे व्याख्यान कथानक में शिथिलता एवं प्रवाह में कमी

---

१ गबन—पृष्ठ २०

स्वाभाविक लगते हैं, किन्तु यहीं कमरों के सम्बे कथोपकथन स्वाभाविक एवं प्रभाव कारी भी हैं।

कथोपकथन की स्वाभाविकता एवं पात्रों के अनुकूल भाषा की उपयुक्तता निम्न स्थलों पर देखा जा सकती है। मालती की शादी के बाद चन्द्रहार के सम्बन्ध में औरतों की बातें होती हैं जो नितांत स्वाभाविक है—

"इसी तरह एक-एक चीज की आलोचना होती रही। सहसा किसी ने कहा—चन्द्रहार नहीं है क्या ?

मानकी ने रानी सूरत बनाकर कहा—नहीं, चन्द्रहार नहीं आया। एक महिला बोली—अरे, चन्द्रहार नहीं आया !

दीनदयाल ने गम्भीर भाव से कहा—और सभी चीजें तो हैं, एक चन्द्रहार ही तो नहीं है।

उसी महिला ने मुँह बनाकर कहा—चन्द्रहार की बात और है।

मानकी ने चढ़ाव को सामने से हटा कर कहा—बेचारी के भाग्य में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है।"[1]

× × ×

पति-पत्नी के बीच किन सजीव एवं प्रेमल वाक्यों का प्रयोग होता है—इसका उदाहरण देखिये—

"जालपा ने उठकर पूछा—पोटली में क्या है ?

रमा०—बूझ जाओ तो जानूँ।

जालपा—हँसोड़ा गोलगप्पा (कहकर हँसने लगी।)

रमा०—गलत।

जालपा—नींद की गठरी होगी ?

रमा०—गलत।

जालपा—तो प्रेमकी पिटारी होगी।

रमानाथ—ठीक। आज मैं तुम्हें फूलों की देवी बनाऊँगा।"[2]

× × ×

---

१ गबन प० ६।२ पृ० २२।

दोस्तों के बीच कितनी खुलकर बातें होती हैं—किसी प्रकार का बंधन नहीं, कितनी स्वाभाविकता है—

"रमा का फर्जी पिट गया, रमेश बाबू ने बड़े जोर से कह कहा मारा। रमा ने रोष के साथ कहा—मगर आप चुपचाप खेलते हैं तो खेलिये, नहीं तो मैं जाता हूँ। मुझे बातों में लगाकर सारे मुहरे उड़ा लिये।

रमेश—अच्छा साहब, अब बोलूँ तो जबान पकड़ लीजिये यह लीजिये शाह। तुम कल अर्जी दे दो। उम्मेद तो है, तुम्हें यह जगह मिल जायेगी, मगर जिस दिन जगह मिले, मेरे साथ रात भर खेलना होगा।

रमा—आप तो दो ही बाजों में रोने लगते हैं।

रमेश—अजी, वह दिन कट गये, जब आप मुझे मात दिया करते थे। आजकल चन्द्रमा बलवान है। इधर मैंने एक मंत्र सिद्ध किया है। क्या मजाल कि कोई मात दे सके। फिर शाह।

रमा—जी तो चाहता है, दूसरी बाजी मात देकर जाऊँ, मगर देर होगी।

रमेश—देर क्या होगी। अभी तो नौ बजे हैं। खेल लो, दिल का अरमान निकल जाय। यह शाह और मात।

रमा—अच्छा कल की रही। कल ललकार कर पाँच मातें न दीं तो कहियेगा।

रमेश—अजी, जाओ भी, तुम मुझे क्या मात दोगे? हिम्मत हो तो अभी सही।"[1]

× × ×

पुलिस का डिप्टी रमानाथ से कहता है—"नहीं। आपका वास्ते इससे बुरा दूसरा बात नहीं है। हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर भर न भूलेगा। आपको वही गवाही देनी होगी जो आप दिया। अगर तुम कु गड़बड़ करेगा, कुछ भी गोलमाल किया तो हम तो तुम्हारे साथ दोसरा बर्ता करेगा। एक रिपोर्ट में तुमको (कसाइयों को ऊपर नीचे रखकर चला जायगा।"

---

१ गबन पृ० १२।

अवश्य आते हैं, किन्तु वहीं अमों के लम्बे कथोपकथन स्वाभाविक एवं प्रभावकारी भी हैं।

कथोपकथन की स्वाभाविकता एवं पात्रों के अनुकूल भाषा की उपयुक्तता निम्न स्थलों पर देखा जा सकती है। जालपा की शादी के बाद चन्द्रहार के सम्बन्ध में औरतों की बातें होती हैं जो नितांत स्वाभाविक हैं—

"इसी तरह एक-एक चीज की आलोचना होती रही। सहसा किसी ने कहा—चन्द्रहार नहीं है क्या ?

मानकी ने रोनी सूरत बनाकर कहा—नहीं, चन्द्रहार नहीं आया। एक महिला बोली—अरे, चन्द्रहार नहीं आया !

दीनदयाल ने गम्भीर भाव से कहा—और सभी चीजें तो हैं, एक चन्द्रहार ही तो नहीं है।

उसी महिला ने मुँह बनाकर कहा—चन्द्रहार की बात और है।

मानकी ने चढ़ाव को सामने से हटा कर कहा—बेचारी के भाग्य में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है।"

× × ×

पति-पत्नी के बीच किन सजीव एवं प्रेमल वाक्यों का प्रयोग होता है—उसका उदाहरण देखिये—

"जालपा ने उठकर पूछा—पोटली में क्या है ?

रमा०—बूझ जाओ तो जानूँ।

जालपा—हँसोड़ा गोलगप्पा (कहकर हँसने लगी।)

रमा०—गलत।

जालपा—नींद की गठरी होगी ?

रमा०—गलत।

जालपा—तो प्रेमकी पिटारी होगी।

रमानाथ—ठीक। आज मैं तुम्हें फूलों की देवी बनाऊँगा।"[1]

× × ×

---

[1] गबन पृ ६१२ पृ २२।

दोस्तों के बीच कितनी खुलकर बातें होती हैं—किसी प्रकार का बंधन नहीं, कितनी स्वाभाविकता है—

"रमा का फर्जी पिट गया, रमेश बाबू ने बड़े जोर से कह कहा मारा। रमा ने रोष के साथ कहा—अगर आप चुपचाप खेलते हैं तो खेलिये, नहीं तो मैं जाता हूँ। मुझे बातों में लगाकर सारे मुहरे उड़ा लिये।

रमेश—अच्छा साहब, अब बोलूँ तो जबान पकड़ लीजिये यह लीजिये शाह! तुम कल अर्जी दे दो। उम्मेद तो है, तुम्हें यह जगह मिल जायेगी, मगर जिस दिन जगह मिले, मेरे साथ रात भर खेलना होगा।

रमा—आप तो दो ही मातों में रोने लगते हैं।

रमेश—अजी, वह दिन कट गये, जब आप मुझे मात दिया करते थे। आजकल चन्द्रमा बलवान है। इधर मैंने एक मंत्र सिद्ध किया है। क्या मजाल कि कोई मात दे सके। फिर शाह।

रमा—जी तो चाहता है, दूसरी बाजी मात देकर जाऊँ, मगर देर होगी।

रमेश—देर क्या होगी। अभी तो नौ बजे हैं। खेल लो, दिल का अरमान निकल जाय। यह शाह और मात।

रमा—अच्छा कल की रही। कल ललकार कर पाँच मातें न दीं तो कहियेगा।

रमेश—अजी, जाओ भी, तुम मुझे क्या मात दोगे? हिम्मत हो तो अभी सही।"[1]

× × ×

पुलिस का डिप्टी रमानाथ से कहता है—"नहीं। आपका वास्ते इससे बुरा दूसरा बात नहीं है। हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर भर न भूलेगा। आपको वही गवाही देनी होगी जो आप दिया। अगर तुम कुछ गड़बड़ करेगा, कुछ भी गोलमाल किया तो हम तो तुम्हारे साथ दोसरा बर्ताव करेगा। एक रिपोर्ट में तुमको (कलाइयों को ऊपर नीचे रखकर) चला जायगा।"

१ गबन पृ० १२।

जालपा से अनपढ़ कहार किस प्रकार बातें करता है, उसकी भाषा और शब्दावली देखिये—"कहार अन्दर गया तो जालपा ने पूछा—तुम्हें कुछ काम धन्धे की भी खबर है, कि मटरगश्ती ही करते रहोगे ? दस बज रहे हैं, और अभी तक तरकारी-भाजी का कहीं पता नहीं।

कहार ने त्योरियाँ बदलकर कहा—तो का चार हाथ-गोड़ कर लेई, कामे से तो गया रहिन ! बाबू मेम साहब के हियाँ रुपया लेवे का भेजिन रहा।

जालपा—कौन मेम साहब ?

कहार—जौन मोटर पर चढ़कर आवत हैं।

जालपा—तो लाये रुपये ?

कहार—लाये काहे नहीं। पिरथी के छोर पर तो रहत हैं, दौरत-दौरत गोड़ पिराय लाग।"

(पृष्ठ, ११२)

पूरे उपन्यास में देवीदीन के कथोपकथन कहीं-कहीं बहुत लम्बे हो गये हैं। जो कथोपकथन की शिथिलता व्यक्त करते हैं। फिर भी लम्बे संवादों में जग्गो के कथोपकथन प्रभावपूर्ण एवं वातावरण तथा पात्र के अनुकूल हैं। देखिए जग्गो की एक वार्ता—"जग्गो ने चूड़ियाँ उठाकर जमीन पर पटक दीं और आँखें निकालकर बोली—जहाँ इतना पाप समा सकता है वहाँ चार चूड़ियों की जगह नहीं है ? भगवान की दया से बहुत चूड़ियाँ पहन चुकी और अब भी सेर दो सेर सोना पड़ा होगा, लेकिन जो खाया, पहना अपनी मिहनत की कमाई से, किसी का गला नहीं दबाया पाप की गठरी सिर पर नहीं लादी, नीयत नहीं बिगाड़ी। उस कोख में आग लगे जिसने तुम जैसे कपूत को जन्म दिया। यह पाप की कमाई लेकर तुम बहू को देने आये होगे। समझते होगे, तुम्हारे रुपया की थैली देखकर वह लट्टू हो जायगी। इतने दिन उसके साथ रहकर भी तुम्हारी ओछी आँखें उसे न पहचान सकीं। तुम जैसे राक्षस उस देवी के जोग न थे। अगर अपनी कुशल चाहते हो तो इन्हीं पैरों जहाँ से आये हो वहाँ लौट जाओ उसके सामने आकर क्यों अपना पानी उतरवाओगे। तुम आज पुलिस के हाथों जख्मी होकर मार खाकर आये होते, तुम्हें सजा हो गयी होती तुम जेहल में डाल दिये गये होते, तो—बहू तुम्हारी पूजा करती तुम्हारे चरन धोकर पीती। वह उन औरतों में है चाहे मजूरी करे, उपास करे फटे चीथड़े पहने पर किसी की बुराई

नहीं देख सकती। अगर तुम मेरे लड़के होते तो, तुम्हें जहर दे देती। क्यों खड़े मुझे जला रहे हो। चले क्यों नहीं जाते ? मैंने तुमसे कुछ ले तो नहीं लिया है ?

रमा सिर झुकाये चुपचाप सुनता रहा। तब आहत स्वर में बोला—दादी, मैंने बुराई की और इसके लिये मरते दम तक लज्जित रहूँगा। लेकिन तुम मुझे जितना नीच समझ रही हो, उतना नीच नहीं हूँ। अगर तुम्हें मालूम होता कि पुलिस ने मेरे साथ कैसी कैसी सख्तियाँ की मुझे कैसी-कैसी धमकियाँ दीं तो तुम मुझे राक्षस न कहती।"

(गबन–पृष्ठ २०१)

भाषा-शैली

प्रेमचन्द जी के उपन्यास जनसामान्य के जीवन से संबन्धित हैं अतः उपन्यासकार ने भाषा भी जनसामान्य के लिए ही रखा है जो सरल प्रवाह युक्त एवं सुबोध हो। प्रेमचन्द जी के उपन्यासों की भाषा जनसामान्य के जीवन की भाषा है जिसमें वे अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। हिन्दी, उर्दू का मेलकर एक जनसामान्य की भाषा का प्रयोग का सारा श्रेय प्रेमचन्द जी को ही है।

प्रेमचन्द जी की भाषा संबन्धी देन-वस्तुतः ही महत्व पूर्ण है। सामान्य बोल चाल की भाषा और साहित्यिक भाषा के संबन्ध में प्रेमचन्द जी स्पष्टतः स्वीकार करते हैं कि "यह जरूर सच है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। लेकिन लिखित भाषा सदैव बोल-चाल की भाषा से मिलते जुलते रहने की कोशिश किया करती है। लिखित भाषा की खूबी यही है कि वह बोल-चाल की भाषा से मिले। इस आदर्श से वह जितनी दूर हो जाती है उतनी ही अस्वाभाविक हो जाती है।"

प्रेमचन्द जी ने भाषा को सरल एवं बोधगम्य बनाने का प्रयास किया हिन्दी उर्दू मिश्रित भाषा के समर्थक थे। हिन्दू उर्दू मिश्रित शैली ही उनकी अपनी शैली है। इस सम्बन्ध में डॉ० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी कहते हैं—

"भाषा में बंगला का अनुकरण केवल शब्दों और मुहावरों में ही नहीं भावों और विचारों तक में किया जा रहा था। प्रेमचन्द ने पहले पहल

इन काल्पनिक घरौंदों को ठोकर मार कर तोड़ दिया। उन्होंने हिन्दी को हर प्रकार से हिन्दी किया। उन्होंने हिन्दी उर्दू के भेद को कम कर दिया और भाषा में नई प्राण शक्ति फूँक दी।"

प्रेमचन्द जी की भाषा सामान्य जीवन की भावनाओं परिस्थितियों तथा पात्रों के अनुकूल सरल सशक्त एवं प्रवाह पूर्ण है। साहित्यकार का हृदय भावना प्रधान होता है, उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त जहाँ उसको भावनाओं के शृंगार का प्रश्न होता है, वह सुन्दरतर भावपूर्ण भाषा का प्रयोग करता है। देखिये 'गबन' में प्रेमचन्द जी की भावमयी भाषा का सौन्दर्य—"चैत्र की शीतल सुहावनी, स्फूर्तिमयी संध्या, गंगा का तट टेसुओं से लहलहाता हुआ ढाक का मैदान, बरगद का छतनार वृक्ष, उसके नीचे बँधी हुई गाय भैंसें, कद्दू और लौकी की बेलों से लहराती हुई झोपड़ियाँ न कहीं गर्द न गुबार न शोर न गुल, सुख और शांति के लिये क्या इससे भी अच्छी जगह हो सकती है? नीचे स्वर्णमयी गंगा, लाल काले, नीले आवरण से चमकती हुई, मन्द स्वरों में गाती, कहीं लपकती, कहीं झिझकती कहीं चपल गम्भीर अनन्त अंधकार की ओर चली जा रही है।"

(पृष्ठ ११६)

प्रकृति चित्रण में भावात्मक शैली का दूसरा उदाहरण देखिये—

"भादों का महीना था। पृथ्वी और जल में रण छिड़ा हुआ था। जल की सेनायें वायुयान पर चढ़कर आकाश से जल शरों की वर्षा कर रही थीं। इसकी थल-सेनाओं के पृथ्वी पर उत्पात मचा रखा था। गंगा गाँवों और कस्बों को निगल रही थी। लहरें उत्पन्न होकर गरजती मुँह से फेन निकालती हाथों उछल रही थी; चतुर फिकैतों की तरह पैतरे बदल रही थीं। कभी एक कदम आगे आती फिर पीछे लौट पड़ती और चक्कर खाकर फिर आगे को टपकती। कहीं कोई झोपड़ा डगमगाता तेजी से बहा जा रहा था, मानों कोई शराबी दौड़ा जाता हो कहीं कोई वृक्ष डाल-पत्तों समेत डूबता उतराता किसी पाषाण युग के जन्तु की भाँति तैरता जाता था, गायें और भैंसे खाट और तख्ते मानों तिलस्मी चित्रों की भाँति आँखों के सामने से निकल जाते थे।"

भाषा की सजीवता एवं गत्यात्मकता का दूसरा उदाहरण देखिये। रमा आत्मा से अलग हो रहा है—

"जालपा नीचे जाने लगी तो रमा ने कातर होकर उसे गले लगा लिया और इस तरह भेंच-भेंच कर उससे आलिंगन करने लगा मानों यह सौभाग्य उसे फिर न मिलेगा। कौन जानता है यही उसका अन्तिम आलिंगन हो। उसके करपाश मानो रेशम के सहस्त्रों तारों से संगठित होकर जालपा से चिमट गये थे। मानों कोई मरणासन्न कृपण अपने कोष की कुंजी मुट्ठी में बन्द किये हो और उसे बलपूर्वक खोल देने से ही उसके प्राण निकल जायेंगे ?"

(पृष्ठ ११०)

प्रेमचन्द की भाषा में अलंकारों की छटा भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। जैसे "अब इस नये चन्द्रहार के सामने उसकी चमक उसी भाँति मन्द पड़ गयी थी जैसे इस निर्मल चंद्र ज्योति के आगे तारों का आलोक। उसने नकली हार को तोड़ डाला और उसके दानों नीचे गली में फेंक दिया, उसी भाँति जैसे पूजन समाप्त हो जाने के बाद कोई उपासक मिट्टी की पार्थिवी को जल में विसर्जित कर देता है।" (पृष्ठ ६२)

…… "शीशफूल आया, सचमुच गुलाब का फूल था, जिस पर हीरे की कलियाँ ओस की बूँदों के समान चमक रही थी।

(पृष्ठ ९०)

……"इस मातृभक्ति के लिए कितने दिनों से उसकी आत्मा तड़प रही थी। इस कृपण हृदय में जितना प्रेम संचित हो रहा था, वह सब माता के स्तन में एकत्र होने वाले दूध की भाँति बाहर निकलने को आतुर हो गया।

(पृष्ठ १८१)

प्रेमचन्द जी ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सफल प्रयोग किया है। जनभाषा में इनका बहुत महत्व होता है, शब्द एवं भाव में शक्ति लाने के लिये इसका प्रयोग आवश्यक हो जाता है—जैसे दूसरों को मूर्ख बना देना, दमड़ी की हँडिया खोकर कुत्ते की जात पहचानना, बँधा हुआ घोड़ा थान से छुटना, तो तुम भी निरे बछिया के ताऊ हो, रानी रूठेगी अपना सुहाग लेगी आदि।

मुहावरेदार भाषा का निदर्शन देखिये। रमानाथ की शादी के संबन्ध में उसकी माता कहती है—"बहू आ जायगी, तो उसकी आँखें भी खुलेंगी,

देख लेना। अपनी बात याद करो। जब तक गले में जुआ नहीं पड़ा है, तभी तक कुलेलें हैं। जुआ पड़ा और सारा नशा हिरन हुआ। निकम्मों को राह पर लाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय ही नहीं।"

(पृष्ठ ८)

उपन्यास में प्रेमचंदजी ने पात्रों के ज्ञान, पद एवं जीवन के अनुसार ही भाषा कहलवायी है। फलस्वरूप बहुत से शब्द शुद्ध ग्रामीण, कुछ शुद्ध नागरिक, और कुछ अंगरेज़ियत लिये हुये हैं, यहाँ तक कि शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। देवीदीन रमा को समझाता हुआ कहता है—"सिपाही क्या पकड़ लेगा दिल्लगी है। मुझसे कहो, मैं मयनाराज्ञ के थाने में कर दूँ। अगर कोई तिरछी आँखों से भी देख ले तो मूँछ मुड़ा लूँ। ऐसी बात है मजा। सैकड़ों खूनियों को जानता हूँ, जो यहीं कलकत्ते में रहते हैं। पुलिस के अफसरों के साथ दावत खाते हैं; पुलिस जानती है, फिर भी उनका कुछ नहीं कर सकती। रुपये में बड़ा बल है भैया।"

पुलिस का सिपाही भी जब रमा से कहता है तो अपनी ही भाषा बोलता है, कहता है—"नहीं। आपका वास्ते इससे बुरा दूसरा बात नहीं। हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन हम तुमको ऐसा 'लेसन' देगा कि तुम उमिर भर न भूलेगा।" (पृ० २६२)

जोहरा, मुसलमान जाति की वेश्या है। वह उर्दू फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करती है— 'मुआफ कीजिएगा, आप मर्दों की तरफदारी कर रहे हैं। हक यह है कि यहाँ आप लोग दिल बहलाव के लिये आते हैं, महज गम गलत करने के लिये, महज आनन्द उठाने के लिये। जब आपको वफा की तलाश नहीं होती, तो वह मिले क्यों कर ? (पृष्ठ २६०)

एक पुलिस इंसपेक्टर जो मुसलमान है, रमा को जेल के भय से भयभीत करता हुआ कहता है—"हलफ से कहता हूँ, अफसरों की जरा सी निगाह बदल जाय तो आप का कहीं पता न लगे। हलफ से कहता हूँ, एक इशारे में आपको दस साल की सजा हो जाय। आप हैं किस ख्याल में। हम आप के साथ शरारत नहीं करना चाहते। "जेल को आसान म

समझियेगा। मुझे दोजख में ले आप पर जेल की सजा न दे। चक्की में झोंक दिया तो मौत ही आ गई। हलफ से कहता हूँ, दोजख से बदतर है जेल।"

प्रेमचंद जी पात्रों के माध्यम से ही व्यंग एवं हास्य की सृष्टि कर लेते हैं। देवीदीन को जब रमानाथ की प्राईमर ठीक से नहीं समझ में आती तो कहता है—"भैया, यह तुम्हारी अंगरेजी बड़ी विकट है। एम आई आर 'मर' होता है तो पी-आई-टी 'पिट' क्यों हो जाता है। जिस दिन प्राईमर खतम होगी, महावीर जी को सवा सेर लड्डू चढ़ाऊँगा। पराई-मर का मतलब है, पराई स्त्री-मर जाय। मैं कहता हूँ, हमारी मर पराई के मरने से हमें क्या सुख ?"

कुल मिलाकर प्रेमचंद जी वर्णन क्षमता बड़ी ही अनूठी है चाहे वस्तुगत हो या भाव चित्र। बड़ी ही कुशलता से शब्दों की योजना कर एक पूरा सजीव चित्र सामने खड़ा कर देते हैं।

मनः स्थितियों के चित्रण में उपन्यासकार को अपूर्व सफलता मिली है। देखिये दो तीन चित्र—

"मन की एक दशा वह भी होती है, जब आँखें खुली होती हैं और कुछ नहीं सूझता, कान खुले रहते हैं और कुछ सुनाई नहीं पड़ता।"

जालपा के लिये इन चीजों में लेशमात्र भी आकर्षण न था। हाँ वह वर को एक आँख देखना चाहती थी। वह भी सबसे छिपाकर, पर उस भीड़ भाड़ में ऐसा अवसर कहाँ। द्वार चार के समय उसकी सखियाँ उसे छत पर खींच ले गयीं और उसने रमानाथ को देखा। उसका सारा विराग, सारी उदासीनता मानो छूमन्तर हो गयी थी। मुँह पर हर्ष की लालिमा छा गयी। अनुराग स्फूर्ति का भंडार है।" (पृष्ठ १०) २

× × ×

"क्वार का महीना लग चुका था। मेघ के जल-शून्य टुकड़े कभी-कभी आकाश में दौड़ते नजर आ जाते थे। जालपा छत पर लेटी हुई उन मेघ खण्डों की किलोलों में देख रही थी। चिन्ता व्यथित प्राणियों के लिए इससे

अधिक मनोरंजन की वस्तु हो कौन है ? बादल के टुकड़े भाँति-भाँति के रंग बदलते भाँति-भाँति के रूप भरते। कभी आपस में प्रेम से मिल जाते कभी रूठ कर अलग-अलग हो जाते, कभी दौड़ते, कभी ठिठक जाते। आशा सोचती रमानाथ भी कहीं बैठे यहीं मेघ-क्रीड़ा देखते होंगे। इस कल्पना में विचित्र आनन्द मिलता। किसी माली को अपने लगाये पौधे से किसी बालक को अपने बनाये हुये घरौंदे से जितनी आत्मीयता होती है, कुछ वैसा ही अनुराग उसे उन आकाशगामी जीवों से होता था। विपत्ति में हमारा मन अंतर्मुखी हो जाता है।" (पृष्ठ ६४)

× × ×

दूसरा उदाहरण देखिये रतन के मनोगत भाव का "जैसे एक शीतल तीव्र धारा रतन के पैर से घुस कर सिर से निकल गया, मानों उसकी देह के सारे बन्धन खुल कर, सारे अवयव बिखर गए। उसके मस्तिष्क के सारे परमाणु हवा में उड़ गए, मानों नीचे से धरती निकल गयी, ऊपर से आकाश निकल गया, और अब वह निराधार, निस्पन्द, निर्जीव खड़ी है। अवरुद्ध और, कंपित कंठ से बोली—घर से किसी को बुलाऊँ ? यहाँ किससे सलाह की जाय ? कोई भी तो अपना नहीं है।"

उपन्यास में जीवन सम्बन्धी दार्शनिक वर्णन का उदाहरण देखिये—

"मानव जीवन की सबसे महान घटना कितनी शान्ति के साथ घटित हो जाती है। वह विश्व का एक महान अंग, वह महत्वाकांक्षाओं का प्रचण्ड सागर, वह उद्योग का अनन्त भंडार, वह प्रेम और द्वेष, सुख और दुख का लीला क्षेत्र वह बुद्धि और बल की रंगभूमि न जाने कब और कहाँ लीन हो जाती है किसी को खबर नहीं होती। एक हिचकी भी नहीं, एक उच्छ्वास भी नहीं, एक आह भी नहीं निकलती। सागर की हिलोरों का कहाँ अंत होता है ? कौन बता सकता है ? ध्वनि कहाँ वायुमग्न हो जाती है, कौन जानता है ? मानवीय जीवन उस हिलोर के सिवा और क्या है ? उसका अवसान भी उतना ही शान्त, उतना ही अदृश्य हो तो क्या आश्चर्य ?—

"कितना महान परिवर्तन है। वह जो मच्छर के डंक को सहन न कर

सकता या अब उसे चाहे मिट्टी में दबा दो, चाहे अग्नि चिता पर रख दो, उसके माथे पर बल तक न पड़ेगा।" (पृष्ठ २६०)

वस्तुगत वर्णन की गत्यात्मकता का सुन्दर उदाहरण देखिए—

"मर्दों ने गहने बनवाए थे, औरतों ने पहिने थे, सभी आलोचना करने लगे। चूड़ेवन्ती कितनी सुन्दर है कोई दस तोले की होगी। वाह ! साढ़े ग्यारह तोले से रत्ती भर भी कम निकल जाय, तो कुछ हार जाऊँ ! यह शेर देखो क्या हाथ की सफाई है ? जी चाहता है कारीगर के हाथ चूम ले। यह भी बारह तोले से कम निकल जाय तो मुँह न दिखाऊँ। झूठे नगीनों में यह आब कहाँ ! चीज तो यह गुलबन्द है, जिसने खूब सूरत फूल हैं।" (पृष्ठ ६)

भाषा भावानुकूल, सरल, सशक्त, प्रभावोत्पादक, मुहावरेदार तथा जन-सामान्य के अनुकूल है।

देशकाल

उपन्यास की रचना में देशकाल का अधिक महत्व है। उपन्यासकार जिस जीवन की व्याख्या करता है उस पर वहाँ की परिस्थितियों एवं वातावरण विशेष का प्रभाव पड़ता है। उपन्यासकार को युग विशेष की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का जानना आवश्यक है—तभी वह जीवन की व्यापकता को समझ सकेगा तथा चरित्र को विस्तार देने में समर्थ होगा। जीवन को यथार्थ व्याख्या के लिए देश काल की भूमिका जानना अत्यन्त आवश्यक है। उपन्यासकार वही सफल होता है जो परिस्थितियों को देखते हुए पात्रों का निर्माण करता है और उनके तथ्यों पर विचार करता है।

प्रेमचन्दजी युग द्रष्टा थे। उन्होंने युग की समस्याओं एवं गतिविधि को भली भाँति देखा और परखा था। प्रेमचन्द का युग परिवर्तन का युग था। युग की सभी परिवर्तनशील घटनाओं को प्रेमचन्द जी ने ध्यान में

अधिक मनोरंजन की वस्तु ही कौन है ? बादल के टुकड़े भाँति-भाँति के रंग बदलते भाँति-भाँति के रूप भरते । कभी आपस में प्रेम से मिल जाते कभी रूठ कर अलग-अलग हो जाते, कभी दौड़ते, कभी ठिठक जाते । जालपा सोचती रमानाथ भी कहीं बैठें यही मेघ-क्रीड़ा देखते होंगे । इस कल्पना में विचित्र आनन्द मिलता । किसी माली को अपने लगाये पौधे से किसी बालक को अपने बनाये हुये घरौंदे से जितनी आत्मीयता होती है, कुछ वैसा ही अनुराग उसे इन आकाशगामी जीवों से होता था । विपत्ति में हमारा मन अंतर्मुखी हो जाता है ।" (पृष्ट ५४)

× × ×

दूसरा उदाहरण देखिये रतन के मनोगत भाव का "जैसे एक शीतल तीव्र बाण रतन के पैर से घुस कर सिर से निकल गया, मानों उसकी देह के सारे बन्धन खुल कर, सारे अवयव बिखर गए । उसके मस्तिष्क के सारे परमाणु हवा में उड़ गए, मानों नीचे से धरती निकल गयी; ऊपर से आकाश निकल गया, और अब वह निराधार, निस्पन्द, निर्जीव खड़ी है । अवरुद्ध और, कंपित कंठ से बोली—घर से किसी को बुलाऊँ ? यहाँ किससे सलाह की जाय ? कोई भी तो अपना नहीं है ।"

उपन्यास में जीवन सम्बन्धी दार्शनिक वर्णन का उदाहरण देखिये—

"मानव जीवन की सबसे महान घटना कितनी शान्ति के साथ घटित हो जाती है । वह विश्व का एक महान अंग, वह महत्वाकांक्षाओं का अक्षय सागर, वह उद्योग का अनन्त भंडार, वह प्रेम और द्वेष, सुख और दुख का लीला क्षेत्र वह बुद्धि और बल की रंगभूमि न जाने कब और कहाँ लीन हो जाती है किसी को खबर नहीं होती । एक हिचकी भी नहीं, एक उच्छ्वास भी नहीं, एक आह भी नहीं निकलती । सागर की हिलोरों का कहाँ अंत होता है ? कौन बता सकता है ? ध्वनि कहाँ वायुमय हो जाती है, कौन जानता है ? मानवीय जीवन उस हिलोर के सिवा और क्या है ? उसका अवसान भी उतना ही शान्त, उतना ही अदृश्य हो तो क्या आश्चर्य ?—

"कितना महान परिवर्तन है । वह जो मच्छर के डंक को सहन न कर

सकता था अब उसे चाहे मिट्टी में दबा दो, चाहे अग्नि चिता पर रख दो, उसके माथे पर बल तक न पड़ेगा।" (पृष्ठ २१०)

वस्तुगत वर्णन की गत्यात्मकता का सुन्दर उदाहरण देखिए—

"मर्दों ने गहने परखे थे, औरतों ने पहिने थे, सभी आलोचना करने लगे। चूड़ेदन्ती कितनी सुन्दर है कोई दस तोले की होगी। वाह! साढ़े ग्यारह तोले से रत्ती भर भी कम निकल जाय, तो कुछ हार जाऊँ! यह शेर वहाँ तो देखो क्या हाथ की सफाई है? जी चाहता है कारीगर के हाथ चूम ले। यह भी बारह तोले से कम निकल जाय तो मुँह न दिखाऊँ। झूठे नगीनों में यह आब कहाँ! चीज तो यह गुलबन्द है, कितने खुश सूरत फूल हैं।" (पृष्ठ ६)

भाषा भावानुकूल, सरल, सशक्त, प्रभावोत्पादक, मुहावरेदार तथा जन-सामान्य के अनुकूल है।

देशकाल

उपन्यास की रचना में देशकाल का अधिक महत्व है। उपन्यासकार जिस जीवन की व्याख्या करता है उस पर वहाँ की परिस्थितियों एवं वातावरण विशेष का प्रभाव पड़ता है। उपन्यासकार को युग विशेष की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का जानना आवश्यक है—तभी वह जीवन की व्यापकता को समझ सकेगा तथा चरित्र को विस्तार देने में समर्थ होगा। जीवन की यथार्थ व्याख्या के लिए देश काल की भूमिका जानना अत्यन्त आवश्यक है। उपन्यासकार वही सफल होता है जो परिस्थितियों को देखते हुए पात्रों का निर्माण करता है और उनके तथ्यों पर विचार करता है।

प्रेमचन्दजी युग द्रष्टा थे। उन्होंने युग की समस्याओं एवं गतिविधि को भली भाँति देखा और परखा था। प्रेमचन्द का युग परिवर्तन का युग था। युग की सभी परिवर्तनशील घटनाओं को प्रेमचन्द जी ने ध्यान से

रखा है। अपने युग के सभी सामाजिक परिवर्तनों को प्रेमचन्द जी ने परखा था। अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव का समाज बाह्याडम्बर राजनीतिक चेतना, आदि सभी का उल्लेख प्रेमचन्द जी ने किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की रचना सन १९३१ में हुई। तद्युगीन मध्यवर्गीय परिवार की यथार्थता पर विचार करते हुए आभूषण और उससे उत्पन्न समस्याओं पर ही उपन्यासकार ने विचार किया है, इसके साथ ही साथ अन्य समस्याएँ भी जुटी हुई हैं।

मध्य वर्ग की जो मनोवैज्ञानिक आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि पर आभूषण प्रियता की समस्या को लेकर उपन्यासकार ने उपन्यास लिखा है। प्रेमचन्द युगीन मध्य वर्ग की मनोभूमि के सम्बन्ध में सर्व प्रथम विचार कर लेना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में तत्कालीन सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में डा० आबिद हुसेन ने अपनी पुस्तक 'दि इण्डियन हेरिटेज' में लिखा है—"समस्त प्राचीन मूल्यों पर विश्वासों को चुनौती दी जा रही थी। विश्वास और रीति-रिवाजों के प्राचीन रूप ढह रहे थे। सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएँ तीव्र गति से टूट रही थीं। भारत वास्तविक अर्थ में परिवर्तन की अनिश्चित दशा में था। प्राचीन सामाजिक संगठन अव्यवस्थित हो रहा था। नये तत्व उभर रहे थे जिनकी किसी भी बीते युग में कोई मिसाल नहीं मिलती।"[1]

मध्य वर्ग की मनोवैज्ञानिक पहलू का बहुत ही सुन्दर व्याख्या आबिद साहब आगे चलकर उसी पुस्तक में करते हुये कहते हैं—"आधुनिक भारत का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मध्यवर्ग का असंतुलित फैलाव है। सम्पूर्ण विश्व में मध्य वर्ग के लोग अत्यंत आलोचनात्मक और व्यक्तिवादी हैं। ऐसी

---

1 "All old values and beliefs were being challanged. Social economic and political institution were breaking up a terrifying pace. India was literally in the melting pot. The old social satisfac tion was disturbed. New types emerged which have no parallel in any previous period."

Chap. Modern Ferment page 116-117

स्थिति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल है। पूँजीवादी श्रेणी में ऊपर उठने की प्रबल इच्छा के फल स्वरूप उनमें बहुत से निम्न श्रेणी की स्थिति में पहुँच जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्ण स्तर बनाये रखना आवश्यक है जो प्राय उनके साधनों की पहुँच के बाहर होता है। लगातार आर्थिक संघर्ष उनके जीवन के समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहता है। अपनी स्थिति के सम्बन्ध में निश्चित होने के कारण अभिजात वर्गीय कभी अपने महत्व को बताने की आवश्यकता नहीं समझता। निम्न वर्गीय भी अपने भाग्य से संतुष्ट रहता है। मध्यवर्ग संतुष्ट नहीं रहता वह प्राय: दृढ़ आत्मप्रदर्शनकारी और मुँहफट होता है। अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये वह दूसरों की आलोचना करता है।'

प्रेमचन्द जी ने इसी प्रकार के मध्य वर्गीय परिवार का चित्रण अपने उपन्यास में किया है। रमानाथ के परिवार की पूरी घटना एवं व्यक्तियों का चरित्र प्राय: इसी प्रकार का है प्रारम्भ से ही रमानाथ को उपन्यासकार ने आत्म प्रदर्शनकारी दिखलाया है, दयानाथ भी दिखावे में आकर विवाह में खूब खर्च करते हैं और दोनों का परिणाम होता है कि पिता-पुत्र के कारण उपन्यास की घटना सूत्र का निर्माण होता है। यदि वास्तविकता से कुछ भी लगाव होता तो रमानाथ और दयानाथ इस प्रकार का कार्य नहीं करते जब कि दयानाथ नैतिकता की सदैव वकालत करते हैं।

तत्कालीन भारतीय नारी समाज की आभूषण प्रियता को उपन्यासकार ने भली-भाँति चित्रित किया है। यह एक प्रमुख समस्या है। उपन्यास की कथा के सभी नारी पात्रों में आभूषण के प्रति स्वभाविक लगाव है। जानकी, जालपा, रतन और जग्गो सभी को किसी न किसी रूप में गहनों की भूख है और वे इसे पाकर आत्म संतोष का अनुभव करती हैं। आज भी भले ही भारतीय समाज से नारी का आभूषण प्रेम कम हो गया हो किन्तु बिल्कुल समाप्त नहीं हुआ है।

आभूषण प्रेम के दुष्परिणाम के सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी रमेश के माध्यम से कहते हैं—गहनों का मरज न जाने इस दरिद्र देश में कैसे फैल गया। जिन लोगों को भोजन का ठिकाना नहीं, वे भी गहनों के पीछे प्राण देते हैं। हरसाल अरबों रुपये केवल सोना चाँदी खरीदने में व्यय हो जाते हैं। संसार

रखा है। अपने युग के सभी सामाजिक परिवर्तनों को प्रेमचन्द जी ने परखा था। अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव का समाज बाह्याडम्बर राजनीतिक चेतना, आदि सभी का उल्लेख प्रेमचन्द जी ने किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की रचना सन् १९३१ में हुई। तद्युगीन मध्यवर्गीय परिवार की यथार्थता पर विचार करते हुए आभूषण और उससे उत्पन्न समस्याओं पर ही उपन्यासकार ने विचार किया है, इसके साथ ही साथ अन्य समस्याएँ भी जुटी हुई हैं।

मध्य वर्ग की भी मनोवैज्ञानिक आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि पर आभूषण प्रियता की समस्या को लेकर उपन्यासकार ने उपन्यास लिखा है। प्रेमचन्द युगीन मध्य वर्ग की मनोभूमि के सम्बन्ध में सर्व प्रथम विचार कर लेना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में तत्कालीन सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में डा० आबिद हुसेन ने अपनी पुस्तक 'दि इंडियन हेरिटेज' में लिखा है—"समस्त प्राचीन मूल्यों पर विश्वासों को चुनौती दी जा रही थी। विश्वास और रीति-रिवाजों के प्राचीन रूप ढह रहे थे। सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएँ तीव्र गति से टूट रही थीं। भारत वास्तविक अर्थ में परिवर्तन की अनिश्चित दशा में था। प्राचीन सामाजिक संगठन अव्यवस्थित हो रहा था। नये तत्व उभर रहे थे जिनकी किसी भी बीते युग में कोई मिसाल नहीं मिलती।"[1]

मध्य वर्ग की मनोवैज्ञानिक पहलू का बहुत ही सुन्दर व्याख्या आबिद साहब आगे चलकर उसी पुस्तक में करते हुये कहते हैं—"आधुनिक भारत का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मध्यवर्ग का असंतुलित फैलाव है। सम्पूर्ण विश्व में मध्य वर्ग के लोग अत्यंत आलोचनात्मक और व्यक्तिवादी हैं। ऐसी

---

1 "All old values and beliefs were being challanged. Social economic and politicil institution were breaking up a terrifying pace India was literally in the melting pot. The old social satisfaction was disturbed. New types emerged which have no parallel in any previous period."

Chap. Modern Ferment page 116-117

स्थिति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल है। पूँजीवादी श्रेणी में ऊपर उठने की प्रबल इच्छा के फल स्वरूप उनमें बहुत से निम्न श्रेणी की स्थिति में पहुँच जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्ण स्तर बनाये रखना आवश्यक है जो प्रायः उनके साधनों की पहुँच के बाहर होता है। लगातार आर्थिक संघर्ष उनके जीवन के समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहता है। अपनी स्थिति के सम्बन्ध में निश्चित होने के कारण अभिजात वर्गीय कभी अपने महत्व को बताने की आवश्यकता नहीं समझता। निम्न वर्गीय भी अपने भाग्य से संतुष्ट रहता है। मध्यवर्ग संतुष्ट नहीं रहता वह प्रायः एक आत्मप्रदर्शनकारी और मुँहफट होता है। अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये वह दूसरों की आलोचना करता है।"

प्रेमचन्द जी ने इसी प्रकार के मध्य वर्गीय परिवार का चित्रण अपने उपन्यास में किया है। रमानाथ के परिवार की पूरी घटना एवं व्यक्तियों का चरित्र प्रायः इसी प्रकार का है प्रारम्भ से ही रमानाथ को उपन्यासकार ने आत्म प्रदर्शनकारी दिखलाया है, दयानाथ भी दिखावे में आकर विवाह में खूब व्यय करते हैं और दोनों का परिणाम होता है कि पिता-पुत्र के कारण उपन्यास की घटना सूत्र का निर्माण होता है। यदि वास्तविकता से कुछ भी लगाव होता तो रमानाथ और दयानाथ इस प्रकार का कार्य नहीं करते जब कि दयानाथ नैतिकता की सदैव वकालत करते हैं।

तत्कालीन भारतीय नारी समाज की आभूषण प्रियता को उपन्यासकार ने भली-भाँति चित्रित किया है। यह एक प्रमुख समस्या है। उपन्यास की कथा के सभी नारी पात्रों में आभूषण के प्रति स्वाभाविक लगाव है। जालपा, रतन और जग्गो सभी को किसी न किसी रूप में गहनों की भूख है और वे इसे पाकर आत्म संतोष का अनुभव करती हैं। आज भी भले ही भारतीय समाज से नारी का आभूषण प्रेम कम हो गया हो किन्तु बिल्कुल समाप्त नहीं हुआ है।

आभूषण प्रेम के दुष्परिणाम के सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी रमेश के माध्यम से कहते हैं—गहनों का मरज न जाने इस दरिद्र देश में कैसे फैल गया। जिन लोगों को भोजन का ठिकाना नहीं, वे भी गहनों के पीछे प्राण देते हैं। हरसाल अरबों रुपये केवल सोना चाँदी खरीदने में व्यय हो जाते हैं। संसार

के और किसी देश में इन धातुओं की इतनी खपत नहीं। तो बात क्या है? उन्नत देशों में धन व्यापार में लगता है, जिससे लोगों की परवरिश होती है, और धन बढ़ता है। यहाँ धन शृंगार में खर्च होता है, उससे उन्नति और उपकार की जो महान शक्तियाँ हैं, उन दोनों ही का अन्त हो जाता है। बस यही समझ लो कि जिस देश के लोग जितने ही मूर्ख होंगे, वहाँ जेवरों का प्रचार भी उतना ही अधिक होगा। वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिये, बाल बच्चों का पेट काटकर गहनों को भेंट कर दिया जाता है। बाल बच्चों को दूध न मिले, न सही। घी की गंध तक उनकी नाक में न पहुँचे न सही, मेवे और फलों के दर्शन उन्हें न हो कोई परवाह नहीं, पर देवी जी गहने जरूर पहनेंगी और स्वामी जी गहने जरूर बनवायेंगे। इसके कारण हमारा कितना आत्मिक, नैतिक, दैहिक, आर्थिक और धार्मिक पतन हो रहा है, इसका अनुमान ब्रह्मा भी नहीं कर सकते।"

रमानाथ के चरित्र के माध्यम से उपन्यासकार ने तद्युगीन बेकारी की समस्या पर प्रकाश डाला है वह यह व्यक्त करता है शिक्षित होकर भी बेकार रहना पड़ता था और नौकरी जीवन की एक समस्या थी—इस संबन्ध में रमेशबाबू कहते हैं—इसे इतना आसान समझ रहे हो उतनी आसान नहीं है। अच्छे-अच्छे धक्के खा रहे हैं। क्या तुम समझते हो पर बैठे जगह मिल जायेगी? महीनों दौड़ना पड़ेगा, महीनों। बीसियों सिफारिशें लानी पड़ेंगी। सुबह शाम हाजिरी देनी पड़ेगी। क्या नौकरी मिलना आसान है।" यह समस्या मध्यवर्ग के बेकारी की है जो मर्यादा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रश्न पर छोटा-मोटा काम नहीं कर सकता और नौकरी की तलाश में व्यर्थ भटकता है।

रिश्वत का प्रचलन सामाजिक वातावरण में व्यवहार बन गया था। रमानाथ जब नौकरी पाता है तो रिश्वत शुरू कर देता है वह उसे बुरा नहीं मानता प्रचलन के कारण स्वीकार कर लेता है।

कलकत्ते में पहुँचकर रमानाथ जिस प्रकार पुलिस के हाथों फँसता है और मुखबिर बनने के लिये बाध्य होता है, इससे पुलिस के हथकंडों एवं जाल-साजी का पता चलता है। भले आदमियों को डरा धमकाकर निरपराधियों को सजा दिलाना यह पुलिस प्रशासन के भ्रष्टाचार को व्यक्त करता है।

पुलिस-विभाग प्रशासन का अंग है। अतः पूरे शासन व्यवस्था की अत्याचार भावना पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

तत्कालीन जन जागृति एवं देश प्रेम की प्रबल भावना पर उपन्यास में पूर्ण प्रकाश पड़ता है। देशी आन्दोलन, विदेशी शासन का अत्याचार एवं स्वतंत्रता के लिये किये जाने वाले सारे प्रयत्नों को देवीदीन के जीवन के माध्यम से उपन्यासकारने उपस्थित किया है। देवीदीन देश की भावना का प्रतीक है। देवीदीन अपने पुत्रों के बलिदान की घटना रमानाथ को इस रूपमें सुनाता है—"भीड़ लग गयी। गोरे उनपर घोड़े चढ़ा लाते थे, पर दोनों चट्टान की तरह डटे खड़े थे। आखिर जब इस तरह कुछ बस न चला तो सबों ने डंडों से पीटना शुरू किया। ... दोनों को लोगों ने उठा कर अस्पताल भेजा। उसी रात को दोनों सिधार गये। तुम्हारे चरण छूकर कहता हूँ भैया उस वक्त ऐसा जान पड़ता था कि मेरी छाती गज भर की हो गई है, पाँव जमीन पर न पड़ते थे। यही उमंग आती थी कि भगवान ने औरों को पहले उठा न लिया होता तो इस समय उन्हें भी भेज देता।"

देवीदीन स्वदेशी का उपासक है—जीवन की व्यवहार की वस्तुओं में देशी का ही प्रयोग करता है। देशी वस्तुओं के व्यवहार के संबन्ध में देवीदीन कहता है—जिस देश में रहते हैं, जिनका अन्न जल खाते हैं उसके लिये इतना भी न करे तो जीने को धिक्कार है। दो जवान सुदेशी को भेंट कर चुका हूँ भइया।" बाहरी ढोंग का देवीदीन तिरस्कार करता है वह चाहता है पूरा देश स्वदेश की बनी वस्तुओं का प्रयोग करें। केवल वर्ग विशेष के प्रयोग से ही देश का भला नहीं सुलझेगा। देवीदीन कहता है—"इन बड़े बड़े आदमियों के किये कुछ भी न होगा। बड़े बड़े देश भगतों को बिना बिलायती सराब के चैन नहीं आती। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देसी चीज न मिलेगी। दिखाने के लिये दस-बीस गाढ़े के कुरते बनवा लिये, पर का और सब समान बिलायती है, सबके सब भोग बिलास में अंधे हो रहे हैं, छोटे भी बड़े भी। उस पर से इस बात का दावा है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे! तुम क्या देश का उद्धार करोगे। पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को लूट कर भरना तुम्हारा

गबन की समस्याएँ

प्रेमचन्दजी ने उपन्यासों में युग-जीवन एवं उसकी परिस्थितियों का समसामयिक चित्रण किया है। वह किसी न किसी समस्या को लेकर आगे बढ़ते और सामाजिक परिवेश में विचार करते हुए समाधान का प्रयत्न करते हैं। फलतः उन्हें एक समस्या पर विचार करने के लिये तद्युगीन सम्पूर्ण सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण करना अनिवार्य हो जाता है। डा० महेन्द्र भटनागर प्रेमचन्दजी के उपन्यासों में समस्याओं की उपस्थिति प्रधान रूप से मानते हैं, उन्होंने अपनी पुस्तक में प्रेमचन्दजी को समस्यामूलक उपन्यासकार सिद्ध किया और उनके उपन्यासों का मूल-तत्त्व 'समस्या तत्त्व' स्वीकार किया है। इसी संबंध में भी भटनागरजी कहते हैं "समस्या मूलक उपन्यास में कथा का विकास विशिष्ट दृष्टिकोण

को लेकर होता है। उपन्यासकार का उद्देश्य यहाँ पाठकों का मनोरंजन करना नहीं होता। उसे तो यथार्थ की कठोर भूमि पर खड़े होकर अपनी कृति का निर्माण करना होता है। उस समस्या को लेकर वह चलता है और उसका उस समस्या को देखने का दृष्टिकोण होता है। उसी की पूर्ति-भावना को सामने रखकर वह कथा-सामग्री एकत्र करता है।[४]

गबन का प्रकाशन मार्च १९३१ में हुआ था। अतः इसका रचना-काल ३०-३१ के बीच मानना चाहिये क्योंकि उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण तथा समाज पर पड़ने वाले गांधीवादी प्रभाव उपन्यास में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। देवीदीन की राष्ट्रभक्ति गांधीवादी चेतना के ही कारण है।

गबन में सर्वप्रथम उपन्यासकार ने नारी-समाज की आभूषण प्रियता को एक समस्या के रूप में दिखाया है। व्यक्तिगत संस्कार न मानते हुए वातावरणगत संस्कार सिद्ध करने के लिये उपन्यासकार ने जालपा को बाल्यकाल से आभूषणों से गुड़िया को सजाते हुये दिखाया है जो उसके आभूषण-प्रेम आगे चलकर बढ़ाता है। प्रेमचन्द जी ने नारी की आभूषण प्रियता को नारी समाज का व्यापक अंग माना है यह समस्या केवल मध्यवित्त परिवार की ही नहीं है, अपितु रतन और जग्गो की ओर है जो क्रमशः उच्च और निम्न वर्ग की हैं। सभी आभूषण के लिये लालायित रहती हैं। आभूषण के कारण ही रमानाथ को गबन के आरोप में फँसना पड़ता है।

प्रेमचन्द जी ने आभूषण की समस्या को उपस्थित करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि आभूषण प्रेम की कुप्रथा के कारण समाज का आर्थिक जीवन तथा सामाजिक व्यवहार कितना अस्त-व्यस्त है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने स्वयं उपन्यास में रमेश नामक पात्र से कहलवाया है।

आभूषण-प्रियता के दुष्परिणाम को उन्होंने मध्यवर्ग के जीवन में दिखाया है। साथ-ही-साथ मध्यवर्गीय जीवन एवं उनकी आडम्बर प्रियता तथा आत्म प्रदर्शनकारी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का वर्णन किया है। मध्यवर्गीय परिवार बाह्य आडम्बर और आत्म-प्रदर्शन के लिये समाज के सम्मुख की कितनी ऊँची दीवार खड़ी करता है और उसका पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक जीवन कितना अर्सतुलित हो जाता है। इसी जीवन

का उद्‌घाटन करना उपन्यासकार का अभीष्ट है। दयानाथ और रमानाथ अपनी इसी प्रदर्शन के कारण इतना कष्ट सहते हैं। यह स्पष्ट है कि यदि दयानाथ अपनी आर्थिक अवस्था के प्रति सचेत होते तो कदाचित रमानाथ का जीवन कुछ और ही होता। लेकिन उपन्यासकार को मध्यवर्गीय जीवन की मनोवैज्ञानिक, आर्थिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि दिखलाना था इसीलिये उसने इस प्रकार की योजना की। इस सम्बन्ध में श्री मन्मथनाथ गुप्त की पंक्तियाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं —
"यह पुस्तक मानो दर्पण है जिसमें मध्यवित्तवर्ग अपनी सजीव प्रतिच्छाया देख सकता है। जरा गर्दन झुकाई और इसमें अपनी तस्वीर नजर आई। मध्यवित्त वर्ग की बड़ी अजीब परिस्थिति है। मानसिक रूप में उसका रुझान ऊपर की ओर अर्थात् अपने से ऊपर वर्गों की ओर रहता है, किन्तु अपनी आय कम होने के कारण तथा नौकरी की प्रतियोगिता के कारण वह हमेशा खतरा लगा रहता है कि कहीं वह त्रिशंकु की अवस्था में है, उससे भ्रम से गिरकर सर्वहारा वर्ग में शामिल न हो जाय। इस कारण यह उपन्यास नारी के आभूषण प्रेम की ट्रेजडी न होकर सारे मध्यवित्त वर्ग बल्कि पुरुष प्रधान समाज की ट्रेजडी है।"

उपन्यास में तीसरी समस्या रिश्वत की है। उपन्यासकार ने दिखलाया है कि यह सामाजिक कलंक किस प्रकार सामाजिक संगठनों और प्रशासन में व्याप्त है। रमेश घूस लेता है उसकी आत्मा इसे स्वीकार करती है। कलकत्ते में पुलिस के कर्मचारी देवीदीन से माँग करते हैं। देवीदीन घूस देने से हिचकता नहीं क्योंकि वह जानता है कि इसके द्वारा पुलिस उसके काम में मदद देगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास के पात्र स्थान-स्थान पर घूस लेने और देने में हिचकते नहीं और यह सामाजिक रोग सचमुच उपन्यास में समस्या के रूप में प्रस्तुत है।

कथानक में रतन को महत्व देकर उपन्यासकार ने नारी जीवन की सामाजिक विवशता पर विचार किया है। अनमेल विवाह सचमुच में आत्मिक सुख का परिणाम नहीं हो सकता। रतन की समस्या एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। रतन के माध्यम से प्रेमचन्द जी ने नारी जीवन के दो पक्षों का उद्‌घाटन किया है—पहिला है अनमेल विवाह का अनात्मिक

मुख्य दूसरा है वैभव्य जीवनकी आर्थिक समस्या। इन दोनों प्रकार की समस्याओं को उपन्यास में रखना लेखक का लक्ष्य है।

जोहरा भी सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं की ही उपज है। नारी प्रेम और सेवा का हृदय रखते हुए भी उसे वेश्या बनना पड़ता है किन्तु जब वह अवसर पा जाती है तो जीवन को नई दिशा में मोड़कर आदर्श के जीवन पर चलने लगती है। जोहरा जैसी समाज की नारियाँ भी समाज के लिए गौरव बन सकती हैं, जिनकी सेवा से समाज सुखी हो सकता है। ये विवशता के कारण ही वे अपना कुत्सित जीवन बिताती हैं।

प्रेमचन्द जी ने तत्कालीन पुलिस प्रशासन के भ्रष्टाचार की ओर भी विचार किया है, जो सामान्य वर्ग के लोगों को डरा धमका कर फँसा देते हैं और निरपराधी को अपराधी घोषित करने में बिलकुल नहीं हिचकते। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये जीवन, नैतिकता और मृत्यु का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं है। पुलिस जनता की रक्षक न होकर जनता को भक्षक और उनके जीवन सुख को नष्ट करने वाली है। इस सन्दर्भ में उपन्यासकार ने यह भी दिखलाया है कि क्रान्तिकारियों और देश भक्तों के प्रति उस समय पुलिस विभाग कितना घृणास्पद भाव तथा दमन और अत्याचार की भावना रखता था। इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने पुलिस प्रशासन का पर्दाफाश कर उसके दुष्कर्मों को स्पष्ट रूप में सामने रखा।

गबन की गौण समस्याओं में राजनीतिक आन्दोलन और स्वतंत्रता की समस्या मुख्य है। उस समय देश की राजनीति में स्वतंत्रता की चेतना पूर्णतया फैल चुकी थी। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के प्रति जनता आकृष्ट हो चुकी थी और अपना सर्वस्व त्यागकर देश को स्वतन्त्र करने के प्रत्येक प्रयास में लग गई थी। गबन उपन्यास में तत्कालीन उस राजनीतिक वातावरण और स्वतंत्रता की समस्याओं को हमारे सम्मुख रखता है।

उस समय गाँधी जी के स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव था कि देवीदीन स्वदेशी के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। वह जीवन व्यवहार की प्रत्येक वस्तुएँ देश की ही बनी हुयी खरीदता है। स्वदेशी आन्दोलन में उसके दो बेटों की मृत्यु हो गई। उसे इन बातों का किन्चित मोह नहीं है वह स्वतंत्रता के लिये देश के प्रति अपने दायित्व को समझता

है। देवीदीन रमानाथ के लिये भी वैसी ही कपड़े लाता है। वह कहता है कि देश की आर्थिक समस्या ही प्रमुख है। केवल बाहरी ढोंग से काम नहीं चलेगा। अतएव पूर्ति और व्यवहार में साम्य होना चाहिये। गलत ढंग के नेताओं के प्रति वह अपनी अनास्था प्रकट करके वास्तविक समस्याओं की ओर संकेत करता है। देवीदीन स्वतंत्रता आन्दोलन का सक्रिय समर्थक होते हुए भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की समस्याओं के लिये भी चिन्तित है और सचमुच इस सम्बन्ध में जो भविष्य वाणी उसने सन् १६३१ में की थी आज वह यथार्थ का रूप लेकर स्वतंत्र भारत के राजनीतिक जीवन पर स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में नये जीवन एवं विचार की ओर झुकाव की समस्या है जिसे आधुनिकता की समस्या कह सकते हैं। रमानाथ स्वतन्त्रता चाहता है। जालपा साथ घूमना चाहती है। रमानाथ का पत्नी कोट, पैंट का फैशन जालपा द्वारा समाज में अन्य स्त्रियों के बीच आने के लिये नयी चीजों की आवश्यकता एवं उनके बीच रहने की स्वतंत्रता आधुनिकता की ओर संकेत करता है।

इस प्रकार नारी आभूषण प्रेम और मध्यवर्गीय आर्थिक जीवन की प्रमुख समस्या का विचार करते हुये उपन्यासकार ने तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक जीवन का सफलता पूर्वक चित्रण किया है।

●

प्रेमचन्दः औपन्यासिक उपलब्धि

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अपनी युगान्तकारी औपन्यासिक उपलब्धियों के कारण प्रेमचन्द जी उपन्यास सम्राट कहे जाते हैं। यदि प्रेमचन्द जी के उपन्यासों का सामान्य सर्वेक्षण किया जाय तो उसमें जीवन एवं उसकी समस्याओं का इतना विशाल पट मिलता है कि हिन्दी के उपन्यासकारों में उनकी समता में दूसरा कोई खड़ा हो नहीं हो सकता। प्रेमचन्द के युग का जीवन एवं समस्याएँ भले ही समाप्त हो गई हों जीवन कथा का वह रूप चाहे भले ही बदल गया हो किन्तु जीवन का विश्लेषण एवं मनोवैज्ञानिक उद्घाटन करके जिन चरित्रों की सृष्टि प्रेमचन्दजी कर गये हैं वे आज भी जीवित हैं और उनकी तुलना विश्व के महत्वपूर्ण उपन्यासकारों के चरित्रों से कर सकते हैं।

जीवन तथा समाज में प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना तथा तत्कालीन समाज के विविध व्यक्तित्वों के चरित्रांकन एवं जीवन की विविध समस्याओं के विश्लेषण में प्रेमचन्द जी का उपन्यास-साहित्य क्रमशः विकसित होता गया। विषय विस्तार, शिल्प विधान चरित्रांकन एवं कलात्मकता की दृष्टि से प्रेमचन्द जी का प्रत्येक उपन्यास नवीनता और प्रौढ़ता लेकर उपस्थित हुआ है। पात्रों के निमाण एवं चयन में, जीवन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या में, सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण में क्रमशः इनकी लेखनी सशक्त होती गयी। प्रेमचन्द जी के उपन्यासों का विकासक्रम इस प्रकार है।

वरदान प्रेमचन्द जी का प्रारम्भिक उपन्यास है। किन्तु इसका प्रकाशन सेवासदन के बाद हुआ। इस उपन्यास में कथानक की प्रधानता है। प्रस्तुत उपन्यास में असफल प्रेम एवं विवाह की समस्या वर्णित है। वर्णन कौशल की दृष्टि से यह उपन्यास सफल माना जाता है। चरित्रों का उभार अच्छा नहीं बन पड़ा है। इस पुस्तक की आलोचना करते हुए और 'देवदास' से तुलनात्मक अध्ययन करते हुए भी मन्मथ नाथ गुप्त अपनी पुस्तक 'कथाकार प्रेमचन्द' में लिखते हैं—"एक युवक का एक युवती से प्रेम होता है। किसी कारण से दोनों का विवाह नहीं हो पाता। लड़की का विवाह दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। अब इसके बाद क्या जटिलतायें उत्पन्न होती हैं यह इन दोनों पुस्तकों में दिखलाया गया है।"

चरित्र चित्रण की दृष्टि से चरित्र असफलता प्राप्त होने पर भी समाज में अस्वस्थ रूप में नहीं आते। उनकी असफलता सेवा भावना एवं जीवन की जागरूकता में बदल जाती है। डा० रामरतन भटनागर को उपन्यास कला की दृष्टि से बिल्कुल नहीं जँचा वे लिखते हैं—"कथा संगठन और चरित्र चित्रण दोनों दृष्टि से वरदान असफल उपन्यास ही कहा जायगा। जिस प्रकार की प्रेम कहानियों की धूम उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में थी इनसे यह उपन्यास जरा भी भिन्न नहीं है। कथा संगठन शिथिल है। उसमें कलात्मकता को विशेष स्थान नहीं मिल सका है। स्वयं कथा इतनी लम्बी है कि पाठक ऊब जाते हैं। न कथा रस का विकास ही संभव है, न चरित्र चित्रण का।"

प्रतिज्ञा का प्रकाशन १९०४ में हुआ। यह प्रेमा नामक उपन्यास का परिवर्द्धित रूप है। इसमें विधवा विवाह की समस्या प्रमुख है। प्रतिज्ञा के रचना एवं प्रकाशन काल में ही शिवरानी नामक बाल विधवा से प्रेमचन्द जी की शादी भी हुई थी। इस उपन्यास में प्रेम और विधवा विवाह का यथार्थवादी रूप अंकित है। निष्कर्ष रूप में डा० राम रतन भटनागर लिखते हैं—"जो हो यह निश्चित है कि कथा संगठन चरित्र चित्रण और भावों के उत्थान पतन की दृष्टि से यह छोटा उपन्यास साधारण कथा प्रेमी का अतिक्रमण कर देता है।"

सेवासदन का प्रकाशन १९१६ में हुआ। सेवासदन प्रेमचन्दजी की प्रथम प्रौढ़तम कृति है जिसमें उन्होंने नारी जीवन की मूल एवं व्यापक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। सेवासदन भारतीय नारी जीवन की परतंत्रता एवं वेश्या जीवन को लेकर चला है। वेश्यावृत्ति के सामाजिक कलंक के कारणों एवं सुधारवादी जीवन पर विचार किया गया है। सेवासदन में सुमन अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट होने के कारण वेश्याजीवन स्वीकार करती है। वह शारीरिक सुखपर नहीं अपितु मानसिक तथा सामाजिक सुख की ओर झुकती है। वह सामाजिक जीवन की झूठी एवं खोखली मर्यादाओं पर कठोर व्यंग करती है। वेश्याश्रय में आने के बाद वह कहती है—"मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार सेठ चिमन लाल के ठाकुर द्वारे में झूला देखने गई थी सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही। किसी ने भीतर जाने न दिया। लेकिन कल उसी ठाकुर द्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ा मानों मेरे चरणों से वह मन्दिर पवित्र हो गया।"

नारी के कुत्सित जीवन पर सहानुभूति पूर्वक विचार करते हुए और उनके प्रति सामाजिक दायित्व का उद्घाटन करते हुए प्रेमचन्द जी उपन्यास के पात्र पद्मसिंह द्वारा निकारण भी प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास का पात्र पद्मसिंह कहता है—"हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही सामाजिक अत्याचार हमारी ही कुप्रथायें हैं, जिन्होंने वेश्याओं का रुप धारण किया है। यह दालमंडी हमारे ही कलुषित जीवन का प्रतिबिम्ब, हमारे पैशाचिक अधम का साक्षात स्वरूप है। किस मुँह से उनसे घृणा करें। उनकी अवस्था बहुत शोचनीय है। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें सुमार्ग पर लावें और उनके जीवन को सुधारें।"

और अन्त में सेवासदन की स्थापना वेश्याओं के सुधार केन्द्र के रूप में की गई है। यही समस्या का समाधान है।

सेवासदन की नायिका सुमन के सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—"हिन्दी कथा साहित्य की यह पहली नारी है जो आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष की डगर पर पाँव उठाती है। उसके संघर्ष एवं दुर्भाग्य की गाथा कम रोमांचकारी नहीं है। बचपन से ही वह सीधी और निरस

वरदान प्रेमचन्द जी का प्रारम्भिक उपन्यास है। किन्तु इसका प्रकाशन सेवासदन के बाद हुआ। इस उपन्यास में कथानक की प्रधानता है। प्रस्तुत उपन्यास में असफल प्रेम एवं विवाह की समस्या वर्णित है। वर्णन कौशल की दृष्टि से यह उपन्यास सफल माना जाता है। चरित्रों का उभार अच्छा नहीं बन पड़ा है। इस पुस्तक की आलोचना करते हुए और 'देवदास' से तुलनात्मक अध्ययन करते हुए श्री मन्मथ नाथ गुप्त अपनी पुस्तक 'कथाकार प्रेमचन्द' में लिखते हैं—"एक युवक का एक युवती से प्रेम होता है। किसी कारण से दोनों का विवाह नहीं हो पाता। लड़की का विवाह दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। अब इसके बाद क्या जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं यह इन दोनों पुस्तकों में दिखलाया गया है।"

चरित्र चित्रण की दृष्टि से चरित्र असफलता प्राप्त होने पर भी समाज में अस्वस्थ रूप में नहीं आते। उनकी असफलता सेवा भावना एवं जीवन की व्यापकता में बदल जाती है। डा० रामरतन भटनागर को उपन्यास कला की दृष्टि से बिल्कुल नहीं जँचा वे लिखते हैं—"कथा संगठन और चरित्र चित्रण दोनों दृष्टि से वरदान असफल उपन्यास ही कहा जायगा। जिस प्रकार की प्रेम कहानियों की धूम उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में थी इनसे यह उपन्यास जरा भी भिन्न नहीं है। कथा संगठन शिथिल है। उसमें कथात्मकता को विशेष स्थान नहीं मिल सका है। स्वयं कथा इतनी लम्बी है कि पाठक ऊब जाते हैं। न कथा रस का विकास ही संभव है, न चरित्र चित्रण का।"

प्रतिज्ञा का प्रकाशन १६०५ में हुआ। यह प्रेमा नामक उपन्यास का परिवर्धित रूप है। इसमें विधवा विवाह की समस्या प्रमुख है। प्रतिज्ञा के रचना एवं प्रकाशन काल में ही शिवरानी नामक बाल विधवा से प्रेमचन्द जी की शादी भी हुई थी। इस उपन्यास में प्रेम और विधवा विवाह का यथार्थवादी रूप अंकित है। निष्कर्ष रूप में डा० राम रतन भटनागर लिखते हैं—"जो हो यह निश्चित है कि कथा संगठन चरित्र चित्रण और भावों के उत्थान पतन की दृष्टि से यह छोटा उपन्यास साधारण कथा प्रेमी का अतिक्रमण कर देता है।'

सेवासदन का प्रकाशन १९१६ में हुआ। सेवासदन प्रेमचन्दजी की
प्रथम प्रौढ़तम कृति है जिसमें उन्होंने नारी जीवन की मूल एवं व्यापक
समस्याओं पर प्रकाश डाला है। सेवासदन मध्यवर्गीय नारी जीवन की पर-
वशता एवं वेश्या जीवन को लेकर चला है। वेश्यावृत्ति के सामाजिक कलंक
के कारणों एवं सुधारवादी जीवन पर विचार किया गया है। सेवासदन में
सुमन अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट होने के कारण वेश्याजीवन स्वीकार
करती है। वह शारीरिक सुखपर नहीं अपितु मानसिक तथा सामाजिक
सुख की ओर झुकती है। यह सामाजिक जीवन की झूठी एवं खोखली
मर्यादाओं पर कठोर व्यंग करती है। वेश्याश्रय में आने के बाद यह कहती
है—'मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है उसका
शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार सेठ चिमनलाल के ठाकुर द्वारे में
झूला देखने गई थी सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही। किसी ने मुझे भीतर
जाने न दिया। लेकिन कल उसी ठाकुर द्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा
जान पड़ा मानों मेरे चरणों से वह मन्दिर पवित्र हो गया।"

नारी के कुत्सित जीवन पर सहानुभूति पूर्वक विचार करते हुए
और उनके प्रति सामाजिक दायित्व का उद्घाटन करते हुए प्रेमचन्द जी
उपन्यास के पात्र पद्मसिंह द्वारा निष्कर्ष भी प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास का
पात्र पद्मसिंह कहता है—"हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है।
यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही
सामाजिक अत्याचार हमारी ही कुप्रथाएँ हैं, जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण
किया है। यह दालमंडी हमारे ही कलुषित जीवन का प्रतिबिम्ब, हमारे
पैशाचिक अधर्म का साक्षात् स्वरूप है। किस मुँह से उनसे घृणा करें।
उनकी अवस्था बहुत शोचनीय है। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें सुमार्ग
पर लावें और उनके जीवन का सुधारें।"

और अन्त में सेवासदन की स्थापना वेश्याओं के सुधार केन्द्र के रूप में
की गई है। यही समस्या का समाधान है।

सेवासदन की नायिका सुमन के सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा ने
लिखा है—'हिन्दी कथा साहित्य की यह पहली नारी है जो आत्म-सम्मान
की रक्षा के लिए संघर्ष के डगर पर पाँव रखती है। उसके संघर्ष एवं दुखों
की गाथा कम रोमांचकारी नहीं है। बचपन से ही वह सीधी और निरछ

हाय है। उसकी इच्छाओं को आसानी से कुचलकर उसे एक अवांछित पुरुष के हवाले किया जा सकता है। लेकिन उसके भीतर कहीं और नारी का दर्प सो रहा था, वह दर्प जो भारतीय नारी की विशेषता है, और ठोकर खा कर वह जाग उठता है। केवल होरी से सुमन की तुलना की जा सकती है। वह नारी है इसीलिये उसके कष्ट उसका रूप होरी से दूसरी तरह के हैं। प्रेमचन्द ने सुमन को एक साँचे में ढली हुई सुन्दर मूर्ति की तरह पाठक के सामने नहीं रख दिया है। वह एक सहन-मारनेवाली स्वाभिमानी नारी है जो अपने ही नहीं दूसरों के प्रति भी अन्याय सहन नहीं कर सकती। ......।"

कथावस्तु के संगठन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द को इसमें अपूर्व सफलता मिली है। इस सम्बन्ध में डा० रामरतन भटनागर लिखते हैं—'सेवासदन, प्रेमचन्द का पहिला सफल उपन्यास है। और कदाचित उसकी लोकप्रियता ने ही उन्हें उपन्यास-लेखन की ओर विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। इसमें हमें पहली बार प्रेमचन्दी भाषा और उसकी प्रसाद गुण-सम्पन्न सशक्त शैली का परिचय हुआ। साथ ही उपन्यास में नारी जीवन की असमर्थता का एक बड़ा ही समर्थ चित्र उपस्थित होता है। सुमन की जीवन गाथा हिन्दू समाज के ऊपर सबसे बड़ा व्यंग है।"

प्रेमाश्रम का प्रकाशन काल १९२२ है। इस उपन्यास में कृषक वर्ग एवं उसकी समस्याओं पर मुख्य रूप से विचार किया गया। कृषकों की अज्ञानावस्था और असहायावस्था की दुःखभरी कहानी उसमें वर्णित है जिसमें उनको अपनी समस्याओं को लेकर लड़ना और आगे बढ़ना है। उस उपन्यास की समस्या भूमि-समस्या है। जमींदारों के शोषण एवं अत्याचारों के विरोध में किसान की वकालत करते हुए मायाशंकर कहता है—"भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसीलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप से ले इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्यवर्ग या श्रेणी को भी इस मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों का अपना भोग पदार्थ बनाने की स्वच्छंदता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलंक चिन्ह समझनी चाहिये। जमींदार को समझना चाहिये कि वह

प्रजा का मालिक नहीं वरन उसका सेवक है। यही उसके अस्तित्व का उद्देश्य और हेतु है अन्यथा संसार में इसकी कोई जरूरत न थी, इसके बिना समाज के संगठन में कोई बाधा न पड़ती। वह इसलिए नहीं है कि प्रजा के पसीने की कमाई को विलास और विषय-भोग में उड़ाये, उनके टूटे फूटे झोपड़ों के सामने अपना ऊँचा महल खड़ा करे उनकी नम्रता को अपने रत्न-जटित वस्त्रों से अपमानित करे, उनकी संतोषम सरलता को अपने पार्थिव वैभव से लज्जित करे, अपनी स्वादलिप्सा से उनकी क्षुधा-पीड़ा का उपहास करे अपने स्वत्वों पर जान देता हो, पर अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरंकुश प्राणियों से प्रजा की जितनी जल्द मुक्ति हो जाय, उनका भार प्रजा के सिर से जितनी ही जल्दी दूर हो उतना ही अच्छा है।"

शिल्प की दृष्टि से यह रचना उच्चकोटि की नहीं है क्योंकि जीवन के स्वाभाविक क्रम में जो प्रवाह होता है वह बीच-बीच में रुक सा गया है। उपन्यास में बहुत-सी ऐसी अस्वाभाविकता है जो बचाई जा सकती थी फिर भी कृषक जीवन एवं उसकी समस्याओं को चित्रित करने में उपन्यासकार को अपूर्व सफलता मिली है। इस दृष्टि से यह एक गौरवशाली रचना है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में —

"हिन्दी में इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले न लिखा था। एक तो किसानों पर लिखना ही रसराज का अपमान करना था। उस पर किसी खास आदमी को नायक न बनाना और भी अनोखा प्रयोग था। प्रेमचन्द जी ने पाप और पुण्य के राक्षस और देवता नहीं रचे। उन्होंने उस धड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों के दिल में हो रही थी। उन्होंने उस अछूते यथार्थ को अपना कथा-विषय बनाया जिससे भरपूर निगाह देखने का हियाव बड़े-बड़ों का न हुआ था। उन्होंने दिखलाया कि हिन्दुस्तान की साधारण जनता में साहस धीरता और मनोबल के कौन से स्रोत छिपे पड़े हैं। प्रेमचन्द जी ने अपना कथा-विषय चुना—सदियों से पीसे हुए इन्सानों की चेतना का जो उदय जाग रही थी और उनके हृदय में इन्सान की तरह जीने की तीव्र लालसा पैदा कर रही थी। 'प्रेमाश्रम' लिखना एक साहस का काम था। साहित्य का झंडा लिये हुए प्रेमचन्द जी ऐसे मार्ग पर चल पड़े कि जिसे पहले किसी ने तै न किया था। उनकी प्रतिभा का यह प्रमाण

हाय है। उसकी इच्छाओं को आसानी से कुचलकर उसे एक अवांछित पुरुष के हवाले किया जा सकता है। लेकिन उसके भीतर कहीं वीर नारी का रूप सो रहा था, वह दर्प जो भारतीय नारी की विशेषता है, और ठोकर खा कर वह जाग उठता है। केवल होरी से सुमन की तुलना की जा सकती है। वह नारी है इसीलिये उसके कष्ट उसका संघर्ष होरी से दूसरी तरह के हैं। प्रेमचन्द ने सुमन को एक सांचे में ढली हुई सुन्दर मूर्ति की तरह पाठक के सामने नहीं रख दिया है। वह एक सहन-मारनेवाली स्वाभिमानी नारी है जो अपने ही नहीं, दूसरों के प्रति भी अन्याय सहन नहीं कर सकती। — ।”

कथावस्तु के संगठन और चरित्र चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द को इसमें अपूर्व सफलता मिली है। इस सम्बन्ध में डा० रामरतन भटनागर लिखते हैं—'सेवासदन, प्रेमचन्द का पहिला सफल उपन्यास है। और कदाचित इसकी लोकप्रियता ने ही उन्हें उपन्यास-लेखन की ओर विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। इसमें हमें पहली बार प्रेमचन्द की भाषा और उसकी प्रसाद गुण-सम्पन्न सशक्त शैली का परिचय हुआ। साथ ही उपन्यास में नारी जीवन की असमर्थता का एक बड़ा ही सशक्त चित्र उपस्थित होता है। सुमन की जीवन गाथा हिन्दू समाज के ऊपर सबसे बड़ा व्यंग है।”

प्रेमाश्रम का प्रकाशन काल १९०७ है। इस उपन्यास में कृषक वर्ग एवं उसकी समस्याओं पर मुख्य रूप से विचार किया गया। कृषकों की अज्ञानावस्था और असहायावस्था की दुःखभरी कहानी उसमें वर्णित है जिसमें उनको अपनी समस्याओं को लेकर लड़ना और आगे बढ़ना है। उस उपन्यास की समस्या भूमि-समस्या है। जमींदारों के शोषण एवं अत्याचारों के विरोध में किसान की वकालत करते हुए मायाशंकर कहता है—“भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसीलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप से ले इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्यवश या श्रेणी को भी इस मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों का अपना भोग पदार्थ बनाने की स्वच्छन्दता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलंक चिह्न समझनी चाहिये। जमींदार को समझना चाहिये कि

प्रजा का मालिक नहीं वरन उसका सेवक है। यही उसके अस्तित्व का उद्देश्य और हेतु है अन्यथा संसार में इसकी कोई जरूरत न थी, इसके बिना समाज के संगठन में कोई बाधा न पड़ती। वह इसलिए नहीं है कि प्रजा के पसीने की कमाई को विलास और विषय-भोग में उड़ाये, उनके टूटे फूटे झोपड़ों के सामने अपना ऊँचा महल खड़ा करें उनकी नम्रता को अपने रत्न-जटित वस्त्रों से अपमानित करें, उनकी संतोषमय सरलता को अपने पार्थिव वैभव से लज्जित करें, अपनी स्वादलिप्सा से उनकी क्षुधा-पीड़ा का उपहास करें अपने स्वत्वों पर जान देता हो, पर अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरंकुश प्राणियों से प्रजा को जितनी जल्द मुक्ति हो जाय, उनका भार प्रजा के सिर से जितनी ही जल्दी दूर हो उतना ही अच्छा है।"

शिल्प की दृष्टि से यह रचना उच्चकोटि की नहीं है क्योंकि जीवन के स्वाभाविक क्रम में जो प्रवाह होता है वह बीच-बीच में रुक सा गया है। उपन्यास में बहुत-सी ऐसी अस्वाभाविकता है जो बचाई जा सकती थी फिर भी कृषक जीवन एवं उसकी समस्याओं को चित्रित करने में उपन्यासकार को अपूर्व सफलता मिली है। इस दृष्टि से यह एक गौरवशाली रचना है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में —

"हिन्दी में इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले न लिखा था। एक तो किसानों पर लिखना ही रसराज का अपमान करना था। उस पर किसी खास आदमी को नायक न बनाना और भी अनोखा प्रयोग था। प्रेमचन्द जी ने पाप और पुण्य के राक्षस और देवता नहीं रचे। उन्होंने उस धड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों के दिल में हो रही थी। उन्होंने उस अछूते यथार्थ को अपना कथा-विषय बनाया जिससे भरपूर निगाह देखने का रिवाज ही पढ़े-लिखों का न हुआ था। उन्होंने दिखलाया कि हिन्दुस्तान की साधारण जनता में साहस धीरता और मनोबल के कौन से स्रोत छिपे पड़े हैं। प्रेमचन्द जी ने अपना कथा-विषय चुना—सदियों से पीसे हुए दासों की चेतना का जो अब जाग रही थी और उनके हृदय में इन्सान की तरह जीने की तीव्र लालसा पैदा कर रही थी। 'प्रेमाश्रम' लिखना एक साहस का काम था। साहित्य का झंडा लिये हुए प्रेमचन्द जो ऐसे मार्ग पर चल पड़े कि जिसे पहले किसी ने तै न किया था। उनकी प्रतिभा का यह प्रमाण

हाय है। उसकी इच्छाओं को आसानी से कुचलकर उसे एक अवांछित पुरुष के हवाले किया जा सकता है। लेकिन उसके भीतर कहीं वीर नारी का दर्प सो रहा था, वह दर्प जो भारतीय नारी की विशेषता है, और ठोकर खा कर वह जाग उठता है। केवल होरी से सुमन की तुलना की जा सकती है। वह नारी है इसीलिये उसके कष्ट उसका संघर्ष होरी से दूसरी तरह के हैं। प्रेमचन्द ने सुमन को एक साँचे में ढली हुई सुन्दर मूर्ति की तरह पाठक के सामने नहीं रख दिया है। वह एक लड़ने-मारनेवाली स्वाभिमानी नारी है जो अपने ही नहीं, दूसरों के प्रति भी अन्याय सहन नहीं कर सकती। — — ।"

कथावस्तु के संगठन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द को इसमें अपूर्व सफलता मिली है। इस सम्बन्ध में डा० रामरतन भटनागर लिखते हैं—'सेवासदन, प्रेमचन्द का पहिला सफल उपन्यास है। और कदाचित उसकी लोकप्रियता ने ही उन्हें उपन्यास-लेखन की ओर विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। इसमें हमें पहली बार प्रेमचन्दी भाषा और उसकी प्रसाद गुण-सम्पन्न सशक्त शैली का परिचय हुआ। साथ ही उपन्यास में नारी जीवन की असमर्थता का एक बड़ा ही समय चित्र उपस्थित होता है। सुमन की जीवन गाथा हिन्दू समाज के ऊपर सबसे बड़ा व्यंग है।"

प्रेमाश्रम का प्रकाशन काल १६२२ है। इस उपन्यास में कृषक वर्ग एवं उसकी समस्याओं पर मुख्य रूप से विचार किया गया। कृषकों की अज्ञानावस्था और असहायावस्था की दुःखभरी कहानी इसमें वर्णित है जिसमें उनको अपनी समस्याओं को लेकर सहना और आगे बढ़ना है। इस उपन्यास की समस्या भूमि-समस्या है। जमींदारों के शोषण एवं अत्याचारों के विरोध में किसान की वकालत करते हुए मायाशंकर कहता है—"भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा प्रजा की रक्षा करता है इसीलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप से ले इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करें। अगर किसी अन्यवर्ग या श्रेणी को भी इस मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों का अपना भोग पदार्थ बनाने की स्वच्छन्दता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलंक चिन्ह समझनी चाहिये। जमीन्दार को समझना चाहिये कि वह

पर हृदय धर्म और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भंडार था। देह पर मांस न था पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।"

उपन्यास का राजनीतिक पक्ष बड़ा ही सबल है जो जनता में राष्ट्रीयता की भावना भरने तथा वर्तमान शासन के प्रति अश्रद्धा और असन्तोष उत्पन्न करने में सर्वथा सफल है। प्रेमचन्द जी का यह दृष्टिकोण शुद्ध रूप से देश को राजनीतिक जीवन को प्रेरणा देती है जिस समय "रंगभूमि" में डा० गंगोली गवर्नर से यह कहते हुए पाये जाते हैं "आप पशुबल से मुझे चुप करना चाहते हैं इसीलिये की आप में धर्म और न्याय का बल नहीं है। आज मेरे दिल से यह विश्वास उड़ गया जो गत चालीस वर्षों से जमा हुआ था कि गवर्नमेंट हमारे ऊपर न्याय बल से शासन करना चाहती है। आज उस न्याय बल की कलई खुल गई। हमारी आँखों से यह पर्दा उठ गया और हम गवर्नमेंट को उसके नग्न-आवरणहीन रूप में देख रहे हैं। अब हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि केवल हमको पिस कर तेल निकालने के लिए, हमारा अस्तित्व मिटाने के लिये हमारी सभ्यता और हमारी मनुष्यता की हत्या करने के लिए हमको अनन्तकाल तक चक्की का बैल बनाये रखने के लिये हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।"

"रंगभूमि" एक वृहद उपन्यास होते हुए भी कला की दृष्टि से सफल है, स्वाभाविकता के विकास में कहीं भी बाधा नहीं पहुँचती। कथानक तत्व पर विचार करते हुए प० नन्ददुलारे वाजपेयी कहते हैं "छोटी घटनाओं को लेकर लम्बे-लम्बे अध्याय लिखे गये हैं जिससे कथावस्तु आवश्यकता से अधिक लम्बी हो गई है। समस्त मुख्य घटनाओं का लेकर प्रस्तुत आकार के आधे में सारा उपन्यास लिखा जा सकता था।"

रंगभूमि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री ऋषभचरण जैन लिखते हैं—"रंगभूमि मेरी राय में हिन्दी का नहीं हिन्दुस्तान का सबसे अच्छा उपन्यास है रंगभूमि में कहानी है काव्य है फिलासोफी है, मनोविज्ञान है और ढूँढने पर नीति, धर्म और सोशलिज्म का भी बहुत-सा मसाला मिल जायगा। "रंगभूमि" हमारी जिन्दगी का खाका है जिसके जोड़ की कल्पना थैकरे के "वैनिटी फेयर" में और मेरी कारेली के "बेराबेहा" में जरा-जरा मिल जाय वरना दुनिया में कहीं नहीं मिलेगी।"

है कि उन्होंने जो साहस किया, वह दु:साहस साबित नहीं हुआ। 'प्रेमाश्रम' एक अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यास के रूप में आज भी जीवित है।"

रंगभूमि—इसका प्रकाशन सन् १९२४-२५ माना गया है। सन् ३० के स्वतन्त्रता आन्दोलनके पूर्व यह उपन्यास लिखा गया था। कथानक विशद एवं उपन्यास वृहद् है। प्रेमचन्द जी का कोई उपन्यास इतना विशाल नहीं है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के पूर्व की समस्त राजनैतिक एवं समाज की समस्याओं का विश्लेषण इस उपन्यास के विशाल पट पर चित्रित किया गया है किन्तु *मुख्य समस्या औद्योगीकरण*, उसका परिणाम तथा भारतीय रियासतों की समस्या है। प्रस्तुत उपन्यास में गाँधीवादी विचारों की छाप सर्वत्र परिलक्षित होती है।

सूरदास इस उपन्यास का गौरवशाली चरित्र है। सूरदास की दृढ़ता, हृदय की पवित्रता एवं परोपकारिता एक स्थायी प्रभाव छोड़ती है। सूरदास के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द जी कहते लिखते हैं—"हाँ, *वह साधु न था, महात्मा न था, फरिश्ता न था, एक क्षुद्र, शक्तिहीन प्राणी था*, चिन्ताओं और बाधाओं से घिरा हुआ—जिसमें अवगुण भी थे गुण भी। गुण कम थे अवगुण बहुत, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुए थे। गुण केवल एक था। किन्तु ये सभी उस एक गुण के सम्पर्क से नमक की खान में जाकर नमक हो जानेवाली वस्तुओं के समान देव गुणों का रूप धारण कर लेते थे, क्रोध सत्क्रोध हो जाता था, लोभ सदनुराग, मोह, सदुत्साह के रूप में प्रगट होता था अहंकार आत्मभिमान के वश में। और यह गुण क्या था ? न्याय, प्रेम, सत्य भक्ति उपकार, दर्द या उसका जो नाम चाहे रख लीजिये, अन्यथा देखकर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिये असह्य थी। दूसरे स्थान पर पुन: सूरदास को रंगभूमि का खिलाड़ी प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है "वह खिलाड़ी जिसके माथे पर कभी मैल न आई, जिसने कभी हिम्मत न हारी, जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाये, जीता तो प्रसन्न चित्त रहा, हारा तो जीतनेवालों से ख्योरा नहीं रखा जीता तो हारने वालों पर तालियाँ नहीं बजाई, जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया कभी धाँधली नहीं की, कभी द्वन्दी पर छिप कर चोट नहीं की। भिखारी था, अपंग था, अंधा था दीन था कभी भरपेट दाना नहीं नसीब हुआ कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला,

गया है। कथा-संगठन एवं मन: स्थितियों तथा परिस्थितियों के चित्रण की दृष्टि से उपन्यास आकार में छोटा होते हुये भी विशिष्ट है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में "निर्मला प्रेमचंद के कथा साहित्य के विकास में एक मार्ग चिह्न है। यह पहला उपन्यास है जिसमें किसी सेवासदन या प्रेमाश्रम का निर्माण करके पाठक को झूठी सान्त्वना नहीं दी। कहानी अपने निर्मम तर्कसंगत परिणाम की तरफ अविराम गति से बढ़ती जाती है। उन्होंने कहानी लिखने में यथार्थवाद को पूरी तरह निबाहा है। यह क्रान्तिकारी यथार्थवाद नहीं है, क्योंकि निर्मला और मन्साराम में काफी निष्क्रियता है। सुमन की तरह वे अन्याय का प्रतिकार करने नहीं बढ़ते। फिर भी यथार्थवाद को लाने और पुष्ट करने में 'निर्मला' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह उपन्यास असहयोग-आन्दोलन की असफलता के बाद लिखा गया था और जाहिर करता है कि किस तरह हिन्दी लेखक कल्पित समाधानों से संतुष्ट न होकर यथार्थ जीवन का सामना करने के लिये आगे बढ़ रहे थे।"

कर्मभूमि की रचना सन् १९३०-३२ की है। कर्मभूमि का आधार-फलक बहुत ही विस्तृत हो गया है। इसमें अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को रखा गया है जो सामाजिक परिस्थितियों की उपज थी। कर्मभूमि का धरातल अधिक यथार्थवादी है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद जी राजनीतिक जीवन की समस्याओं का नया हल ढूंढते जान पड़ते हैं। स्वाधीनता आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन की व्यापकता पर विचार प्रगट किया गया है। राष्ट्रीय चेतना का जन जीवन पर स्पष्ट प्रभाव

वस्तु-विन्यास की दृष्टि से इसे कई आलोचकों ने शिथिल स्वीकार किया है किन्तु चरित्र चित्रण की दृष्टि से उपन्यास सफल है। उपन्यास में आयी हुई कुछ नारियों का चरित्र-चित्रण बड़ा ही सुन्दर है जो प्रेमचंद जी के नारी संबंधी दृष्टिकोण एवं भावनाओं का परिचायक है।

गोदान—गोदान का रचना काल १९३६ है शिल्प विधान, कलात्मक प्रौढ़ता एवं उद्देश्य की दृष्टि से प्रेमचंद जी का यह सर्वोत्तम उपन्यास है। अपनी विशिष्टता के कारण यह कृति विश्व-साहित्य के औपन्यासिक कृतियों में एक है। गोदान में भारतीय ग्राम्य जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया

प्रेमाश्रम—इसमें जीवन की आलौकिक चमत्कार की बातों की ओर संकेत है और साथ ही साथ सामाजिक एवं राजनीतिक समस्यायें भी चित्रित की गई हैं। पूर्व जीवन संबन्धी विचार एवं धारणायें तथा सामाजिक जीवन की प्रेम विवाह एवं राजनीतिक समस्याओं पर विचार किया गया है जिसमें साम्प्रदायिकता की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। मानवता इससे बड़ी है। एक स्थान पर चक्रधर कहता है। "मैं तो नीति को ही धर्म समझता हूँ और सम्प्रदायों की नीति एकसी है—बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से हिन्दू है।"

चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह रचना पूर्व उपन्यासों से प्रौढ़तर है।

गबन—एक यथार्थवादी कृति है जिसमें मध्यवर्गीय जीवन एवं समाज की तमाम सचाइयों को मूलरूप में व्यक्त किया है। दयानाथ के परिवार एवं परिस्थिति को देखकर कोई मध्यवित्त परिवार अपनी जीवन-झाँकी देख सकता है। यह घटना-चरित्र प्रधान उपन्यास है। गतिशील चरित्रों के सफल चित्रण के कारण घटनाओं एवं चरित्रों का विकास साथ-साथ चलता है। मूलरूप से आभूषण प्रियता की समस्या को लेते हुये प्रेमचंद जी उपन्यास में नारी जीवन की उन मूल समस्याओं को छोड़ नहीं सके हैं जिनका जीवन पूर्व उपन्यासों में वर्णित है, वह है वृद्ध विवाह, वैधव्य एवं वेश्या जीवन की समस्या।

प्रस्तुत उपन्यास में नारी जीवन का आदर्श एवं दृष्टिकोण बहुत ऊँचा है। जालपा, जग्गो, जोहरा और रतन सब की भावनायें विचार एवं जीवन दर्शन उज्जवल एवं उदात्त चरित्रों का है। सामाजिक विषमता भले ही हो किन्तु मूल जीवन ही उनका वास्तविक जीवन है।

देश प्रेम के लिये त्याग करने वाले व्यक्तियों के जीवन तथा व्यवहार में कितना अन्तर है इसको प्रेमचंद जी निर्भिकता पूर्वक देवीदीन के माध्यम से यथार्थ रूप में रखा है।

इस रचना के संबन्ध में विशद विवेचन के लिये पुस्तक की समीक्षा देखिये।

निर्मला एक छोटा सा उपन्यास है। जिसमें नारी जीवन की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक समस्या पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। दहेज प्रथा और वृद्ध-विवाह की सामाजिक कुप्रथाओं का कारुणिक चित्र उपस्थित किया

गया है। कथा-संगठन एवं मन' स्थितियों तथा परिस्थितियों के चित्रण की दृष्टि से उपन्यास आकार में छोटा होते हुये भी विशिष्ट है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में "निर्मला प्रेमचंद के कथा साहित्य के विकास में एक मार्ग चिह्न है। यह पहला उपन्यास है जिसमें किसी सेवासदन या प्रेमाश्रम का निर्माण करके पाठक को झूठी सान्त्वना नहीं दी। कहानी अपने निर्मल तर्क-संगत परिणाम की तरफ अविराम गति से बढ़ती जाती है। उन्होंने कहानी लिखने में यथार्थवाद को पूरी तरह निबाहा है। यह क्रान्तिकारी यथार्थवाद नहीं है, क्योंकि निर्मला और मन्साराम में काफी निष्क्रियता है। सुमन की तरह वे अन्याय का प्रतिकार करते नहीं बढ़ते। फिर भी यथार्थवाद को लाने और पुष्ट करने में 'निर्मला' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह उपन्यास असहयोग-आन्दोलन की असफलता के बाद लिखा गया था और जाहिर करता है कि किस तरह हिन्दी लेखक कल्पित समाधानों से संतुष्ट न होकर यथार्थ जीवन का सामना करने के लिये आगे बढ़ रहे थे।"

कर्मभूमि की रचना सन् १९३०-३२ की है। कर्मभूमि का आधारफलक बहुत ही विस्तृत हो गया है। इसमें अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को रखा गया है जो सामाजिक परिस्थितियों की उपज थी। कर्मभूमि का धरातल अधिक यथार्थवादी है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद जी राजनीतिक जीवन की समस्याओं का नया हल ढूंढते आन पड़ते हैं। स्वाधीनता आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन की व्यापकता पर विचार प्रगट किया गया है। राष्ट्रीय चेतना का जन जीवन पर स्पष्ट प्रभाव

वस्तु-विन्यास की दृष्टि से इसे कई आलोचकों ने शिथिल स्वीकार किया है किन्तु चरित्र चित्रण की दृष्टि से उपन्यास सफल है। उपन्यास में आयी हुई कुछ नारियों का चरित्र-चित्रण बड़ा ही सुन्दर है जो प्रेमचंद जी के नारी संबंधी दृष्टिकोण एवं भावनाओं का परिचायक है।

गोदान—गोदान का रचना काल १९३६ है शिल्प विधान, कलात्मक मौढ़ता एवं उद्देश्य की दृष्टि से प्रेमचंद जी का यह सर्वोत्तम उपन्यास है। अपनी विशिष्टता के कारण यह कृति विश्व-साहित्य के औपन्यासिक कृतियों में एक है। गोदान में भारतीय ग्राम्य जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया

बेटी सोना तथा रूपा और उसकी जीवन संगिनी धनिया। भाई थे वे अलग हो गये थे। जीवन में न कोई सुख है न शांति, आजीवन परिस्थितियों एवं सामाजिक मर्यादाओं के बीच संघर्ष करता है। वह अपना जीवन अप्रसन्नता में व्यतीत करता है। दरवाजे पर गऊ रखने, नित्य उसके दर्शन एवं सेवा करने की उसकी हार्दिक लालसा है किन्तु प्रकृति के क्रूरतम प्रहारों एवं दुर्भाग्य के झोंको में यह लालसा पूर्ण नहीं हो पाती अपितु यह लालसा ही उसका दम लेकर चैन लेती है।

होरी के जीवन के साथ ही राय साहब अमरपाल सिंह की कथा वर्णित है जो जमादार हैं जिनकी जमींदारी में होरा रहता है। जमींदारों के विलास प्रिय जीवन एवं उनकी जमींदारी में बसने वाले कृषकों के प्रति भावनाओं तथा व्यवहार का चित्रण किया गया है।

पूरे उपन्यास में दो कथायें चलती हैं—एक होरी की कथा और दूसरे जमींदार अमरपाल सिंह एवं उनके मित्रों की कथा जिनमें खन्ना, प्रो० मेहता और मालती मुख्य है। दोनों कथाओं का परस्पर संबंध है जिसमें नागरिक जीवन तथा ग्राम्य जीवन की विशेषताएँ प्रगट की गई है—इन दो कथाओं के आधार पर वस्तु संगठन की दृष्टि से इस उपन्यास की अत्यधिक चर्चा है और आलोचकों के मत स्थिर नहीं हैं।

गोदान के चरित्र बड़े ही उत्कृष्ट एवं सफल हैं। वर्गीय जीवन की विशेषताओं का दिखलाने के लिये वर्गीय चरित्रों की सृष्टि की गई है। इन चरित्रों की सबसे बड़ा विशेषता उनका यथार्थवादी रुप है।

होरी कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह कृषक वर्ग की विवशता एवं शोषण का प्रतीक है। एक सीधा-सादा सरल किसान जो सामाजिक मर्यादाओं में बँधा हुआ सामाजिक मूल्यों में विश्वास करता हुआ किस प्रकार निरन्तर परिस्थितियों के आगे विवश हो जाता है इसी जीवन को होरी के माध्यम से चित्रित किया गया है।

होरी के जीवन की विशेषता उसकी सामाजिक मर्यादा है। सामाजिक बंधना, विश्वासों और रूढ़ियों में विश्वास करता है। वह अपने परिवार को दुखी एवं विपन्न देख सकता है किन्तु दूसरों के आगे अपनी मर्यादा एवं विश्वासों का भपना नहीं चाहता। वह मानवता एवं मानवीय मूल्यों का प्रबल समर्थक है। होरी स्वयं मानवता का प्रतीक है उस में असीम त्याग,

गया है। कृषक जीवन की आर्थिक पराधीनता एवं सामाजिक शोषण की करुण गाथा का चित्रण ही इस उपन्यास का मूल उद्देश्य है।

इस उपन्यास में कृषक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र होरी है। होरी के जीवन के माध्यम से कृषक वर्ग की सम्पूर्ण विषमताओं तथा सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का मर्मस्पर्शी यथार्थ जीवन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय कृषक जीवन जीवन दर्शन एवं समस्याएँ एक जगह आकर होरी के जीवन में एकत्रित हो गयी है।

गाँवों के प्रति प्रेमचन्द जी की स्वाभाविक ममता थी। गाँवों का सौन्दर्य, उसकी प्रकृति एवं सोते जागते मूक चरित्रों को सर्व प्रथम प्रेमचन्द जी ने वाणी प्रदान की। गोदान में कृषक जीवन एवं ग्राम्य जीवन का पूरा चित्र साकार हो उठा है। ग्राम्य जीवन का ऐसा मार्मिक और संवेदनशील जीवन-चित्रण हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास में उपलब्ध नहीं है। कृषकों के कारुणिक जीवन पर यथार्थवादी दृष्टिकोण से विचार किया है। गोदान में कृषकों का करुण जीवन-चित्र देखिये—

"चलते फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, क्योंकि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों और सारी हरियाली मुरझा गयी हो। जेठ के दिन हैं अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है पर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहानों में ही तुलकर महाजनों एवं कारिन्दों को भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है वह भी दूसरों का हो है। भविष्य अंधकार की भाँति उनके सामने है। उनमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। सारी चेतनाएँ शिथिल हो गई हैं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आता है निगल जाते हैं उसी तरह जैसे इंजन कोयला निगल जाता है। उनके बैल चूनी चोकर के बगैर नाँद में मुँह नहीं डालते, मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिये, स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है, उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। (गोदान 'पृष्ठ' ४६१)

इन्हीं परिस्थितियों के बीच पल रहे होरी के जीवन की कहानी इस उपन्यास में वर्णित है। होरी का एक छोटा सा परिवार है, पुत्र गोबर और

बेटी सोना तथा रूपा और उसकी जीवन संगिनी धनिया। भाई ये से अलग हो गये थे। जीवन में न कोई सुख है न शांति, आजीवन परिस्थितियों एवं सामाजिक मर्यादाओं के बीच संघर्ष करता है। वह अपना जीवन ऋणग्रस्तता में व्यतीत करता है। दरवाजे पर गऊ रखने, नित्य उसके दर्शन एवं सेवा करने की उसकी हार्दिक लालसा है किन्तु प्रकृति के क्रूरतम प्रहारों एवं दुर्भाग्य के झोंके में यह लालसा पूरा नहीं हो पाती अपितु यह लालसा ही उसका दम तोड़कर चैन लेती है।

होरी के जीवन के साथ ही राय साहब अमरपाल सिंह की कथा वर्णित है जो जमींदार हैं जिनकी जमींदारी में होरा रहता है। जमींदारों के विलास प्रिय जीवन एवं उनकी जमींदारी में बसने वाले कृषकों के प्रति भावनाओं तथा व्यवहार का चित्रण किया गया है।

पूरे उपन्यास में दो कथायें चलती हैं—एक होरी की कथा और दूसरे जमींदार अमरपाल सिंह एवं उनके मित्रों की कथा जिनमें खन्ना, प्रो० मेहता और मालती मुख्य है। दोनों कथाओं का परस्पर संबंध हैं जिसमें नागरिक जीवन तथा ग्राम्य जीवन की विशेषताएँ प्रगट की गई है—इन दो कथाओं के आधार पर वस्तु संगठन की दृष्टि से इस उपन्यास की अत्यधिक चर्चा है और आलोचकों के मत स्थिर नहीं हैं।

गोदान के चरित्र बड़े ही उत्कृष्ट एवं सफल हैं। वर्गीय जीवन की विशेषताओं को दिखलाने के लिये वर्गीय चरित्रों की सृष्टि की गई है। इन चरित्रों की सबसे बड़ी विशेषता उनका यथार्थवादी रूप है।

होरा कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह कृषक वर्ग की विवशता एवं शोषण का प्रतीक है। एक सीधा-सादा सरल किसान जो सामाजिक मर्यादाओं में बँधा हुआ सामाजिक मूल्यों में विश्वास करता हुआ किस प्रकार निरन्तर परिस्थितियों के आगे विवश हो जाता है इसी जीवन को होरी से माध्यम से चित्रित किया गया है।

होरी के जीवन की विशेषता उसकी सामाजिक मर्यादा है। सामाजिक बंधनों विश्वासों और रूढ़ियों में विश्वास करता है। वह अपने परिवार को दुखी एवं विपन्न देख सकता है किन्तु दूसरों के आगे अपनी मर्यादा एवं विश्वासों का भंग करना नहीं चाहता। वह मानवता एवं मानवीय मूल्यों का प्रबल समर्थक है। होरी स्वयं मानवता का प्रतीक है उस में असीम त्याग,

प्रेम एवं ममता है। वह बाहर से टूटता है किन्तु भीतर से कभी हार नहीं मानता। जीवन से संघर्ष करने के लिये उसमें अदम्य उत्साह है—वह उत्साह ही उसके जीवन की प्रगतिशीलता का उदाहरण है। विवशता एवं असफलता ही उसके जीवन को सफलता है। होरी का जीवन भारतीय कृषक जीवन का गौरव है। जिसकी पवित्रता के आगे हृदय श्रद्धा एवं सहानुभूति से भर उठता है।

प्रेमचंद जी को पारिवारिक जीवन प्रिय था। परिवार की सार्थकता एवं उसकी प्रेमलता का चित्रण उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। उनका विश्वास था कि जीवन के संतुलन के लिये परिवार चाहिये, परिवार की मर्यादा चाहिये-और जीवन के सुख दुख में साथ देने वाली चिरसंगिनी चाहिये। होरी का भी अपना पारिवारिक जीवन है धनिया उसकी जीवनसंगिनी है। धनिया विपन्नता को मर्यादा में दबाकर नहीं रखना चाहती वह होरी से कई कदम आगे समाज को देखती है। मानव मन को परखने और जीवन को समझने की चेष्टा उनके मन में सदैव रहती है। अन्याय और वैषम्य के प्रति होरी को सदैव सचेत करती है। वह अपनी दरिद्रता एवं विपन्न जीवन को अच्छी तरह समझती है किन्तु हर जगह हाथ जोड़कर समर्पण कर विपन्नता को बढ़ाना नहीं चाहती है। जब होरी अपने अनाज पंचों का भेंट करने के लिये ले जाता है तो वह गरज कर कहती है—

"अच्छा, अब रहने दो। हो तो चुके बिरादरी की लाज। बच्चों के लिये भी कुछ छोड़ोगे कि सब बिरादरी के भाड़ में झोंक दोगे। मैं तुमसे हार जाती हूँ। मेरे भाग्य में तुम्हीं जैसे बुद्धू का संग लिखा था।" "मर मरकर हमने कमाया पहर रात-रात को सींचा अगोरा, इसीलिये कि पंच लोग मूँछों पर ताव देकर भोग लगावें और हमारे बच्चे दो दाने को तरसें। तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी अपनी बच्चियों के साथ सती हुई हूँ। सीधे टोकरी रख दो, नहीं आज सदा के लिये नाता टूट जायगा। कहे देती हूँ —।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि धनिया हिन्दू गृहस्थ की परिवार पवित्र नारी रूप में उत्कृष्ट उज्ज्वल चरित्र लेकर हमारे सम्मुख आती है।

इसके अलावा गोबर बदलते हुये समाज के नयी पीढ़ी का नवयुवक है। प्रो० मेहता भी गम्भीर विचारक *एवं भारतीय जीवन* के पोषक तथा के रूप में मालती नये नारी समाज की उन्मुक्त शिक्षित नवयुवती के रूप में आया है।

ग्रामीण-चरित्रों की विशेषताओं का सफल चित्रण इसमें मिलता है। गोदान का 'होरी' साहित्य का अविस्मरणीय अमर पात्र है।

गोदान में होरी के जीवन के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। अन्याय एवं वैषम्य की परिस्थितियों में जूझते हुये किसानों की दशा मानवता के ह्रासोन्मुख जीवन की कथा है। इसके अतिरिक्त इसमें कई एक अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। नागरिक जीवन की कथा को ग्राम्य-कथा से जोड़कर नागरिक जीवन के बदलते हुये नैतिक-मूल्य एवं वैचारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार से सामाजिक समस्याओं का भी प्रभाव पूर्ण अंकन हुआ है जिनका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर स्पष्ट था। ग्राम्य जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण ही उपन्यास की सफलता है। प्रेमचंद जी की कलात्मक अभि-व्यक्ति के शिखर के रूप में यह उनका सर्व श्रेष्ठ कृति है।

मंगल सूत्र प्रेमचंद जी का अंतिम और अपूर्ण उपन्यास है। इसमें साहित्य-साधक देव कुमार के पारिवारिक जीवन की कहानी चार अध्यायों में वर्णित है।

प्रेम एवं ममता है। वह बाहर से टूटता है किन्तु भीतर से कभी हार नहीं मानता। जीवन से संघर्ष करने के लिये उसमें अदम्य उत्साह है—पर उत्साह ही उसके जीवन की मर्मविरोधता का उदाहरण है। विवशता एवं असफलता ही उसके जीवन की सफलता है। होरी का जीवन भारतीय कृषक-जीवन का गौरव है। जिसकी पवित्रता के आगे हृदय श्रद्धा एवं सहानुभूति से भर उठता है।

प्रेमचंद जी को पारिवारिक जीवन प्रिय था। परिवार की सार्थकता एवं उसकी प्रेमकथा का चित्रण उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। उनका विचार था कि जीवन के संतुलन के लिये परिवार चाहिये, परिवार की मर्यादा चाहिये और जीवन के सुख दुख में साथ देने वाली चिरसंगिनी चाहिये। होरी का भी अपना पारिवारिक जीवन है धनिया उसकी जीवनसंगिनी है। धनिया विपन्नता का मर्यादा में दबाकर नहीं रखना चाहती वह होरी से कई कदम आगे समाज को देखती है। मानव मन को परखने और जीवन को पहचानने की चेष्टा उनके मन में सदैव रहती है। अन्याय और वैमनस्य के प्रति होरी को सदैव सचेत करती है। वह अपनी दरिद्रता एवं विपन्न जीवन को अच्छी तरह समझती है किन्तु हर जगह हाथ जोड़कर समर्पण कर विपन्नता को बढ़ाना नहीं चाहती है। जब होरी अपने अनाज पंचों को भेंट करने के लिये ले जाता है तो वह रोक कर कहती है—

"अच्छा, अब रहने दो। हो तो चुके बिरादरी की लाज। बच्चों के लिए भी कुछ छोड़ोगे कि सब बिरादरी के भाड़ में झोंक दोगे। मैं तुमसे हार जाती हूँ। मेरे भाग्य में तुम्हीं जैसे बुद्धू का संग लिखा था। ......मर मरकर हमने कमाया पहर रात-रात को जीवा अगोरा, इसीलिये कि पंच लोग मूँछों पर ताव देकर भाग लगावें और हमारे बच्चे दाने दाने को तरसें। तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी अपनी बच्चियों के साथ सती हुई हूँ। सीधे टोकरी रख दो, नहीं आज सदा के लिये नाता टूट जायगा। कहे देती हूँ...... ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि धनिया हिन्दू गृहस्थ की परिवार पवित्र नारी रूप में उत्कृष्ट उज्ज्वल चरित्र लेकर हमारे सम्मुख आती है।

इसके अलावा गोबर परखते हुये समाज के नयी पीढ़ी का नवयुवक है प्रो० मेहता भी गम्भीर विचारक एवं भारतीय जीवन के पोषक तथा के रूप मालती नये नारी समाज को उन्मुक्त शिक्षित नवयुवती के रूप में आता है।

वर्गीय-चरित्रों की विशेषताओं का सफल चित्रण इसमें मिलता है। गोदान का 'होरी' साहित्य का अविस्मरणीय अमर पात्र है।

गोदान में होरी के जीवन के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। अन्याय एवं वैषम्य की परिस्थितियों में जूझते हुये किसानों की दशा मानवता के ह्रासोन्मुख जीवन की कथा है। इसके अतिरिक्त इसमें कई एक अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। नागरिक जीवन की कथा को ग्राम्य-कथा से जोड़कर नागरिक जीवन के बदलते हुये नैतिक-मूल्य एवं वैचारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार से सामाजिक समस्याओं का भी प्रभाव पूर्ण अंकन हुआ है जिनका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर स्पष्ट था। ग्राम्य जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण ही उपन्यास की सफलता है। प्रेमचंद जी की कलात्मक अभिव्यक्ति के शिखर के रूप में यह उनकी सब श्रेष्ठ कृति है।

मंगल सूत्र प्रेमचंद जी का अंतिम और अपूर्ण उपन्यास है। इसमें साहित्य साधक देव कुमार के पारिवारिक जीवन का कहानी चार अध्यायों में वर्णित है।